आस्था के अन्वेषक
मुनि क्षमासागर

लेखिका
श्रीमती स्नेहलता सिंघई

प्रकाशक
धर्मोदय साहित्य प्रकाशन
सागर (म. प्र.)

कृति : आस्था के अन्वेषक : मुनि क्षमासागर

लेखिका : श्रीमती स्नेहलता सिंघई

संस्करण : द्वितीय, जून, 2013

मूल्य : 50/– (पुनः प्रकाशन हेतु)

आवृत्ति : 1100

पुण्यार्जक :
1. श्री चेतराम बड़कुल, शहपुरा
2. श्री पी. सी. सेठ–श्रीमती मंजू सेठ
   231, जयनगर, जबलपुर
3. स्व. निर्मल सेठ की स्मृति में
   श्रीमती कुसुम जैन, राजेश जैन, दिनेश जैन
4. श्रीमती अरुणा जैन, मुम्बई
5. श्री विमलचंद सिंघई
   अध्यक्ष प्रथम नगर पालिका, कटंगी
6. श्रीमती कमला जैन, अधारताल, जबलपुर
7. श्रीमती ताराबाई जैन, मढ़ियाजी, जबलपुर
8. श्री प्रमेश जैन, अजमेर
9. स्व. कोमलचन्द सिंघई, कटंगी की स्मृति में
   श्रीमती सुशीला सिंघई, कटंगी

प्राप्ति स्थान : विजय सिंघई
1536/5, नागपुर रोड
सिद्धनगर पुरवा, जबलपुर (म.प्र.)
9302832025, 8109967500

मुद्रक : विकास आफसेट, भोपाल

भूमिका

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने आज से 2100 वर्ष पूर्व मुनियों और सत्य वक्ताओं की महिमा बतलाते हुए लिखा था –

ये संति धार्मिका ग्रन्थाः समस्ते धरिणीतले।
आलोकं ते अपि कुर्वन्ति, मुनीनां सत्यवादिनाम्॥

आशय यह है कि संसार भर के धर्म ग्रन्थ सत्य वक्ता महात्माओं की महिमा की घोषणा करते हैं। प्रस्तुत कृति ऐसी ही कृति बन पड़ी है, जिसमें लेखिका ने मुनिवर क्षमासागरजी महाराज का महिमा गान किया है। मेरी दृष्टि में जो जन अपने निर्मल हृदय से श्रमणों का गुणगान करते रहते हैं, वे उन लोगों से बहुत ऊपर होते हैं, जो अपने क्षुद्र स्वार्थ के लिये कभी नेताओं के, कभी अधिकारियों के और कभी उद्योगपतियों के भजन गाते रहते हैं।

इस कृति में लगभग 54 वर्ष का एक धर्म युग समेटा गया है, जिसमें उनके गर्भकाल से लेकर वर्तमान परीषह–जित–व्यक्तित्व का आमूल चूल वर्णन किया गया है। जन्म, शिशु–अवस्था, बाल्यकाल, किशोरावस्था और युवावस्था के भुला दिये गये प्रसंग लेखिका ने गुमी हुई सुई की तरह खोजकर विचारों के धागे में पिरोये हैं। फिर उनके यौवन के प्रथम आकर्षण की सविस्तार जानकारी विस्मयकारी है।

युवक का नाम वीरेन्द्र था, उम्र लगभग इक्कीस वर्ष थी, ऐसी वय में दृष्टि जीवन संगिनी की तलाश में घूमनी चाहिये थी, किन्तु उस युवक की दृष्टि श्रमण शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज की ओर घूम गई, फलतः जिन क्षणों में बारात निकलनी चाहिये थी, उन पलों में बिनौली का प्रसंग बना। यह पृथक् बात है कि निस्पृही गुरु–शिष्य ने बिनौली को भी आवश्यक नहीं समझा। बस, युवक के चरण बढ़ गये वैराग्य पथ पर।

उनके मुनि जीवन के मार्मिक और अंतरंग दृश्यों और प्रसंगों को सूझबूझ के साथ प्रस्तुत किया गया है। हर चातुर्मास का विवरण भी विशेष रस प्रदान करता मिलता है। कृति छोटे–छोटे पैरों में तैयार है, जहाँ मार्मिक दृश्य तैयार किये गये हैं, वहाँ भी पाठक एक से अधिक बार अपनी नजर घुमायेंगे।

जब भी मेरे ध्यान में निस्पृह योगी, क्षमा की मूर्ति, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी दिगम्बर श्रमण पूज्य 108 श्री क्षमासागरजी महाराज का चेहरा बिम्बित होता है तो मुझे ठीक उनके गुणों की अनुगायिका विदुषी श्रीमती स्नेहलता सिंघई की छवि भी याद हो आती है, जिन्होंने अपने भीतर बिखरे हुये क्षमासागरजी के जीवन–चरित्र के सूत्र चार साल तक एकत्रित किये और यह जीवन वृत्त समाज के समक्ष प्रस्तुत करने का महान् संयोग प्राप्त किया। वे कवियित्री के रूप में जानी जाती थीं, अब इस कृति के माध्यम से एक स्थापित (श्रमण चरित्र लेखिका) का परिचय प्राप्त कर चुकी हैं। उन्होंने यह कार्य कर मुनि श्री की कीर्ति बढ़ाने का विनम्र प्रयास करना चाहा था किन्तु प्रभाव विपरीत ही हुआ, कीर्ति लेखनी की बढ़ी। मुनिवर की कीर्ति तो हिमालय–सा रूप धारण कर चुकी है जग में।

जहाँ तक कीर्ति की बात है वह भगवान् की हो या इंसान की अक्षय रहती है। आचार्य कुन्दकुन्द ने कीर्ति के विषय में बहुत अच्छा कथन किया है –

सर्वेभावा विनष्यन्ति भुवनत्रय वर्तिनाः।
अतुला केवला कीर्तिनरस्याहो न नश्यति॥

अर्थात् जगत् में समस्त वस्तुएँ नश्वर हैं, परन्तु एक अतुल कीर्ति ही नश्वर नहीं है। है वह अमर, सो अमरत्व दे जाती है। मेरा आशय यहाँ तीन कीर्तियों से है- मुनि क्षमासागरजी की कीर्ति, ग्रन्थ की कीर्ति और लेखिका की कीर्ति।

समूचा ग्रन्थ साहित्य के साथ–साथ लेखिका के अंतर्कक्ष में छुपी हुई भक्ति–भावना को उजागर करता है, अतः लेखिका गुणी जनों से सम्मान प्राप्त करेगी, इसमें कोई संदेह नहीं है।

यह ग्रन्थ मंदिरों, पुस्तकालयों के साथ–साथ घरों परिवारों में सदियों तक पूज्य मुनि क्षमासागरजी का उजास फैलाता रहेगा। वे संत ही ऐसे हैं।

जबलपुर **सुरेश जैन 'सरल'**

मंगल मनीषा

लेखन के क्षेत्र में ज्ञान की अत्यन्त सीमित पूँजी के बल पर स्नेहलता जी ने जब अपने आराध्य महामुनि क्षमासागरजी महाराज के इस 'अर्द्ध-कथानक' को पूर्ण करके आपके सामने प्रस्तुत करने का संकल्प किया था तब हमें यह आशा नहीं थी कि वे इस दुरूह कार्य में सफल हो पायेंगी। हमारे लेख उस समय उनके लिये यह लेखन सागर में गागर समेटने जैसा कठिन कार्य था। उस समय बचपन में सीखी हुई मानतुंग स्वामी की वे पंक्तियाँ ही शायद लेखिका को प्रेरित करती रही होंगी, जिनका तात्पर्य है – ''प्रभु, यह जानते हुए भी कि मैं अल्पज्ञ और विद्वत्जनों के लिये हँसी का पात्र हूँ, आपकी भक्ति मुझे इस स्तवन की रचना के लिये प्रेरित कर रही है।''

अपनी अनुपम साधना के दिव्य अवदान से दो शताब्दियों को धन्य करने वाले महाकवि और इस लघु पुस्तिका के चरित नायक मुनिश्री क्षमासागर महाराज के दीक्षा गुरु, विख्यात दिगम्बर आचार्य पूज्य श्री विद्यासागर महाराज का मंगल आशीर्वाद इस पुस्तक की सृजन यात्रा में प्रकाश पुंज की तरह लेखिका को पग-पग पर साहस देता रहा है। गुरु-शिष्य की यह गरिमामयी जोड़ी प्रातःस्मरणीय एवं त्रिकाल वन्दनीय है। दोनों संतों के पावन चरणों में हमारा सविनय वन्दन, सादर नमोऽस्तु।

भगवान् श्री राम का स्मरण करते हुए राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी एक कृति के प्रारम्भ में लिखा था – ''राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है, कोई कवि बन जाये सहज-सम्भाव्य है।'' राष्ट्रकवि की यह पंक्ति ही लेखिका के सृजन-संकल्प में प्रबल-प्रेरक और सबल-सम्बल रही है। स्नेहलता को इस प्रयास में जो सराहनीय सफलता प्राप्त हुई है, उसका श्रेय उनकी इसी अडिग आस्था को है। उनकी मान्यता है कि आराध्य की कथा के लिये कथाकार की सामर्थ्य लेखक के पाण्डित्य में नहीं, रचयिता की भक्ति में निहित होती है। इसका प्रमाण है कि इस पुस्तिका के हर पृष्ठ पर स्नेहलता की भक्ति-धारा के सुहावन छींटे आप महसूस करेंगे।

पूज्य मुनि श्री क्षमासागरजी अपने गुरु के प्रति पूर्णतः समर्पित और उनके कृपापात्र प्रिय शिष्य हैं। गुरु की चर्चा मात्र उन्हें भीतर-बाहर से द्रवित कर देती है। गुरु-भक्ति प्रेरित शिष्य के मन की भावनाएँ पारदर्शी बनकर तत्काल उनकी आँखों से बह निकलती है। वर्तमान में उस 'मौन-तपस्वी' की उपसर्ग-रुद्ध वाणी भले ही कुछ समय के लिये श्रवणीय न रह गई हो, पर उनकी आकृति पर वह सहज दर्शनीय बनकर पाठक को अपनी अर्थवत्ता में आप्लावित कर लेती है। ऐसे अवसर पर आराध्य के प्रति आराधक के मन की कोमलकान्त अनुभूतियाँ क्षमासागर महाराज की आशु-कविता पंक्तियों में चिड़ियों सी चहकती सुनाई देती हैं और फुदकती दिखाई देती हैं। क्षमासागर महाराज वर्तमान के निरीह और निराडम्बर दिगम्बर संतों की पंक्ति में अग्र-गण्य माने जाते हैं। अशुभ कर्मोदय-जन्य, भयंकर दैहिक और मानसिक पीड़ा को, समता पूर्वक, अपराजित मनसा सहन करके निश्शेष करते चलने की अद्‌भुत क्षमता उन्होंने अवाप्त कर ली है। उनकी निःकांक्षित और निरीह छवि दृष्टि में आते ही आचार्य पूज्यपाद महाराज की पंक्ति 'जीवोन्यः पुद्‌गलाश्चान्य' के सारे अर्थ पाठक के समक्ष मूर्तिमान होकर ज्वलंत रूप में प्रकट हो जाते हैं। देह और देही सदा-सर्वदा जुदे-जुदे हैं।

इस भाव-प्रवण रचना के लिये लेखिका को शुभसंशाएँ और बधाई।

नीरज जैन

सतना

मेरी अंतस् प्रेरणा

एक नन्हा–सा दीप हृदय मंदिर की देहरी पर कब जल गया? श्रद्धा के पुञ्ज उन देवता के चरणों में अर्पित हो गये पता ही न चला। उन मुनिवर की वीतरागता, वात्सल्यमयी वाणी और गुरु के प्रति समर्पण देख मन में बोध जागा, लगा कि जिस आभा ने मानस को शांति समता से आलोकित कर दिया। उस दीप की आभा जन–जन के तन–मन को आलोकित करे और पग बढ़ा दिये उस रोशनी की तलाश में।

मुनिवर से जैसे ही आशीर्वाद मिला धन्य हो गई मैं। मुनि श्री के गृहस्थ जीवन के पिता श्री जीवन सिंघई ने मुनिवर के जन्म से लेकर मुनिदीक्षा तक के सारे संस्मरण, निश्चित समय, स्थान के साथ मुझे बताये। उनकी स्मरण शक्ति देख मैं अवाक् रह गई।

उन सारे सूत्रों को गूँथने का कार्य मेरे लिये बहुत कठिन था। परन्तु एक रोशनी की किरण पाकर प्रयास करने लगी। सागर की गहराई को किसने जाना है? हिमालय की ऊँचाई को कौन नाप सकता है? मेरे इस दुष्कर कार्य करने में समाज के महान् लेखक श्री नीरज जी जैन ने अपना समय व सहयोग दिया तो संतों की जीवनी के महान रचनाकार श्री सुरेश सरल ने उसे संवारा एवं ब्र. संजय भैया ने उसे एक नया आकार दे दिया।

'आस्था के अन्वेषक- मुनि क्षमासागर' का लेखन मुनिवर के श्रेष्ठ जीवन के सामने बौना है। आचार्यश्री के प्रति मुनिश्री की श्रद्धा अगाध है। उनकी समर्पण भावना के छोटे से हिस्से को मात्र मैं सहेज पाई हूँ। यह लेखन जन–जन की आस्था को मजबूत करे।

पाठकगण मेरी साहित्यिक कमियों को न देखकर उन श्रेष्ठ साधक की अनुत्तर साधना से अपने जीवन को आलोकित करें, यही भावना है।

मेरा यह प्रथम प्रयास आपको कैसा लगा? संशोधन की दृष्टि से कृपया सूचित करें।

स्नेहलता सिंघई

लेखिका

क्षमासागर अष्टक

सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्, अन्तर्बहीरूपमखण्डमेकं।
रागादिकालुष्यविमुक्तचितं, सर्द्धधौरेयमनुत्तरन्तं॥ 1॥

जिनका व्यक्तित्व अन्तर्बाह्य अखण्डित एक रूप है, जिनका चित्त रागादि कलुषताओं से विमुक्त है, जो सद्धर्म की धुरा को धारण करने वाले अनुपम अनुत्तर हैं, उन क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

सम्पूर्णविद्यासद्धद्धहद्मनदीष्णं, ज्ञानप्रभादीद्धहनो यदीयं।
संसारसिन्धूत्तरणे तरीन्तं, सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 2॥

सम्पूर्ण विद्या रूपी नदी के जो पारंगत हैं, जिनका मन ज्ञानप्रभात से दीप्त है, जो संसार सिन्धु को पार करने के लिए नौका के समान हैं, उन क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

वीरस्य सद्वर्त्मनि संचरतं, लोकात्मकल्याणसुसाधयन्तं।
भक्त्या गुरौ पूरितमानसं तं,सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 3॥

महावीर द्वारा निर्दिष्ट सन्मार्ग पर जो चल रहे हैं, आत्मकल्याण के साथ लोककल्याण की भी सुन्दर साधना कर रहे हैं, जिनका मन गुरु की भक्ति से लबालब भरा हुआ है, उन क्षमासागर मुनिराज को मेरा प्रणाम है।

अध्यात्मक्षीरोदसमुत्थमथ्यं, ज्ञानामृतं वर्षकम्बुदन्तं।
स्फूर्ति हि प्राणेषु सुचारयन्त,सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 4॥

जो अध्यात्म रूपी क्षीरोनिधि के मंथन से उत्पन्न ज्ञानामृत की वृष्टि करने वाले मेघ हैं, जो प्राणों में स्फूर्ति का संचार करते हैं, उन क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

गाम्भीर्यमाधुर्य विशेषवाचा, भव्यान हि सभ्यान् खलु पावायान्त।
तेषामघौघं परिक्षालयन्तं, सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 5॥

जो गाम्भीर्य व माधुर्य गुण से युक्त वाणी के द्वारा सभा में स्थित भव्यों को पवित्र करते हुए उनके पाप समूह का प्रक्षालन करते हैं, उन क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

भक्तान् तु सन्मार्गमुपादिशन्तु, वात्सल्यभावेन विबोधयन्तं।

आकण्ठतृप्तिमनुभावयन्तं, सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 6॥

जो भक्तों को सन्मार्ग का उपदेश दे रहे हैं, वात्सल्य भाव से उनको सम्बोधित कर रहे हैं तथा आकण्ठ तृप्ति का अनुभव करा रहे हैं, उन क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

धर्माय बालान् प्रतिबोधयन्तं, मैत्रीसमूहं च विवर्द्धयन्तं।

दुस्साध्यसाधुव्रतमाचरन्तं, सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम्॥ 7॥

बालकों को धर्म के विषय में प्रतिबोधित करने वाले, मैत्रीसमूह नामक संस्था को वृद्धिंगत करने वाले, कठिनता से साध्य मुनिव्रत का आचरण करने वाले क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

रोगैस्सदा तीव्रपरीक्ष्यमाणं, क्षीणं तपोतप्तवपुः दधानं।

धैर्येण ज्ञानेन च तं तरन्तं, सिन्धुं क्षमायाः शिरसा नताहम् ॥8॥

रोग सदा तीव्रता से जिनकी परीक्षा लेते रहते हैं, उन तपस्या से तप्त क्षीणकाया को धारण करने वाले तथा धैर्य व ज्ञान से रोगों द्वारा ली गई परीक्षा को उत्तीर्ण करने वाले क्षमासागर मुनिराज को मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करती हूँ।

डॉ. कुसुम पटोरिया, नागपुर

आस्था के अन्वेषक

मुनि क्षमासागर

बुन्देलखण्ड की धरती जिस तरह फसलों के अर्घ चढ़ाती रही है, उसी तरह यहाँ के गृहस्थ मंदिरों में प्रभु के आगे नित्य-नित्य अर्घ्य चढ़ाकर अर्घ्यम् निर्वपामीति की प्रशस्त भावना के साथ अपने कर्त्तव्य पूर्ण करते रहे हैं। जिस तरह बुन्देलखण्ड में सागर प्रमुख नगर है, उसी तरह प्रान्त के सहस्रों श्रेष्ठी जनों के मध्य सिंघई परिवार प्रमुख रहा है, उसकी प्रमुखता तब और बढ़ गई जब उस महान् परिवार में परमपूज्य मुनि श्री 108 क्षमासागरजी महाराज का बालक के रूप में जन्म हुआ।

मुनि भले ही लाख घर पीछे एक होते रहे हों पर बुन्देलखण्ड में मुन्ना घर-घर होते रहे हैं। जिस घर में बालक जन्म लेता था, सीधे सज्जन गृहस्थ गण उसे मुन्ना कहकर ही अपने हृदय का दुलार जाहिर करते थे। यह अधिक पुरानी बात नहीं है, अभी 50 साल पहले तक शिशु को मुन्ना शब्द से सम्बोधन का चलन चरम पर था। ऐसे वातावरण में जब सिंघई परिवार में मुनि रत्न का जन्म हुआ तो बड़े बुजुर्गों से लेकर घर के छोटे-छोटे सदस्यों ने भी शिशु को जो प्रथम नाम दिया वह मुन्ना ही था। (बाद में भले ही नये-नये सम्बोधनों ने स्थान पाया किन्तु समय काल में तो महत्त्वपूर्ण और हृदय-हृदय को प्यारा लगने वाला शब्द यदि कोई था तो मुन्ना।

महाधनशाली व्यक्ति का बहुमूल्य पदार्थ माणिक होता है तो सरल स्वभावी श्रावकों का दुलारा शिशु (मुन्ना) होता है। पाठकगण यहाँ एक मुन्ना की कहानी पढ़ रहे हैं जो कालांतर में वर्तमान पर्याय की उस सर्वश्रेष्ठ स्थिति तक ले गया है, जिसे मुनि कहते हैं, जो किसी एक का ही नहीं, सबका होता है। सबके मनमंदिर का आराध्य और पूज्य। ऐसे पावन रूप को भूधरदासजी ने कहा है -

ते गुरु मेरे मन बसो, जे भव जलधि जहाज।
आप तिरें पर तारहीं, ऐसे श्री ऋषिराज ॥
वे गुरु चरन जहाँ धरें, जग में तीरथ जेह।
सो रज मम मस्तक चढ़ो, भूधर मांगे ऐह ॥

चलते-फिरते तीर्थ, करुणा और वात्सल्य की मूर्ति, हित-मित वाणी के उद्घोषक, गुरुदेव के चरणों में समर्पित जीवन, पत्थरों को पिघला देने वाली ममता, जिनके हृदय में वास करती हो, ऐसे साधक का जीवन दर्शन पाठकों के लिए, उनकी चर्या श्रावकों के लिए एक नई चेतना प्रदान करेगी।

पवित्र चर्या को शब्दों में बाँधना कठिन कार्य है, यह लेखन विद्वत्ता नहीं श्रद्धा पुञ्ज है। अतः इस लेखन को उचित नाम देना होगा।

यह न तो महाकाव्य है, न ही नाटक। इसे कहानी भी नहीं कह सकते। कहानी गढ़ी जाती है, यह अनगढ़ है, सत्य है, अनुभूत और सहज है। एक महामानव की सहज जीवन स्मृतियाँ समाहित की गई हैं, इसमें एक बालक माँ से संस्कार प्राप्त कर गुरु के मार्गदर्शन में उनका आशीर्वाद प्राप्त कर महामानव बन गया। वह महामानव यथाजात मुद्रा का धारी पूज्य क्षमासागरजी महाराज बन गया। हम देखे यह सब कैसे घटा? कैसे-कैसे संयोग मिलते रहे और आत्म कल्याण की भावना से भरे सजग प्रहरी को चेतन तीर्थ का रूप मिल गया।

जननी जिसे जान न पाई, जनक जिसे पहचान न पाये, सहोदर सहोदरा भी जिनकी अन्तर्भावना से अछूते रह गये। अंतरंग सखा भी जिनके मन को पढ़ न पाये, पर आचार्यश्री के अनूठे व्यक्तित्व ने उसे देखा, समझा, तराशा और बना दिया पूज्य क्षमासागर।

क्षितिज के उस पार झांकना, समुद्र की लहरों को गिनना, रत्नाकर से रत्न निकालना, नक्षत्रों की गणना करना कदाचित् सरल है, पर एक साधक के जीवनक्रम को व्यवस्थित करना, प्रस्तुत करना कठिन कार्य है। एक अबोध बालक यदि समुद्र का विस्तार बतलायेगा तो दोनों बाहुओं को फैला लेगा, वही बालकवत् प्रयास किया है, पयोनिधि को नापने का।

मैं प्रकृति हूँ, शान्त एवं उदासीन भाव से सृष्टि के क्रियाकलापों को देखना मेरी नियति है। मैथिलीशरण गुप्त की कल्पना में ''सहृदय वात्सल्यपूर्ण ममतामयी माँ के समान''। उन्हीं के शब्दों में -

सरस तरल जिन तुहिन कणों से हँसती हर्षित होती है।
प्रकृति हमारी आत्मीया है साथ सभी के रोती है॥
अनजानी भूलों पर भी वह अदय दण्ड भी देती है।
किन्तु बड़ों को भी बच्चों सा सदय भाव से सेती है॥

''और बड़ों को भी
बच्चों सा सदय भाव से सेती है''
बड़े-बूढ़े हों या छोटे,
अमीर हो या गरीब।
सभी मेरे अंक में स्थान पाते हैं,

कहने को तो मैं जड़ हूँ
पर कभी-कभी मैं चेतन हो जाती हूँ
जब मेरे आँचल में
किसी पथ दृष्टा का जन्म होता है
तो मैं खुशी से झूमने लगती हूँ,
गाने लगती हूँ।

उसके श्रेष्ठतम व्यक्तित्व को देखकर
गौरव से झूमने लगती हूँ
और उसकी पीड़ा देखकर
व्यथित भी हो जाती हूँ।

आज का दृश्य मुझे रोमांचित कर रहा है। नैनागिर के विशाल प्रांगण में वही गौरवशाली बेटा दीक्षित हो रहा है, जिसकी बात मैं पहले कर चुकी हूँ। कहा न मैंने! मैं प्रकृति हूँ। मैं सब कुछ देख रही हूँ, सब कुछ जान रही

हूँ। उसका वर्तमान तो सबके सामने है, उसका अतीत भी परत दर परत मेरे स्मृति पटल पर सुरक्षित है। मैं चाहती हूँ उस अतीत को सबके सामने खोल दूँ।

'वीरेन्द्र से क्षमासागर' बनने की यात्रा अनेक पड़ावों से गुजरी, अनेक उतार-चढ़ाव आये, कभी सुखद अनुभूतियों ने उसका स्वागत किया, अभिनंदन किया, कभी विषमताओं के अनुभवों से शिक्षा मिली। कहीं मिले समता और शांति के समतल मैदान तो कहीं मिले ऊबड़-खाबड़ कंकरीले रास्ते। जीवन में आने वाले अवरोध उसके मार्ग को रोक न सके, वह तो ओजस्वी निर्झर की भाँति बढ़ती गई, चलती रही। बहती रही अनवरत /लगातार पल-पल, क्षण-क्षण।

चलना ही उसकी साधना थी, अपने गन्तव्य तक पहुँचना उसका लक्ष्य था। सागर की तलाश कर रही थी सो पहुँच गई सागर के पास, रत्नाकर के पास। सागर जो विद्या और ज्ञान का खजाना था, वात्सल्य से उस निर्झर को अपने हृदय में स्थान दे दिया।

धन्य हो गया वह निर्झर, धन्य हो गया उसका व्यक्तित्व, धन्य हो गया उसका साधुत्व।

उस दर्पण के अतीत को देखने के लिए मेरे साथ सागर चलना होगा, आइए सागर चलें, जो वीरों की जन्म भूमि है, भारत देश के मध्य प्रान्त में बसे बुन्देलखण्ड का एक अंग है, विशाल तालाब के तटों पर बसी वह सागर नगरी आसपास बसे कस्बों और गाँवों का प्रतिनिधित्व करती है।

नगरी की एक ओर सुन्दर पहाड़ी पर बना गौर विश्वविद्यालय, नगर की दूसरी ओर बना भाग्योदय तीर्थ, पूज्य गणेशप्रसाद वर्णी का प्रेरणा पुञ्ज मोराजी, उदासीन आश्रम। ये सभी सागर की कीर्ति को दिग-दिगंत तक फैलाने वाले सोपान हैं।

भारत को योगियों की जन्मभूमि कहते हैं तो सागर को रत्नों का जन्मदाता कहते हैं, वह सागर महासागर संज्ञा को प्राप्त हो गया। जब सागर के नामवर श्रेष्ठी जीवनकुमार सिंघई जी और उनकी धर्म पत्नी आशादेवी जी ने एक रत्न को जन्म दिया।

20 सितम्बर, 1957, कुंवार का महीना। अस्पताल के प्रांगण में आज कुछ अधिक चहल-पहल दिखाई दे रही थी, प्रतिष्ठित परिवारों के नर-नारी चहल-कदमी कर रहे थे। कुछ लोग परेशान से दिख रहे थे, प्रतीक्षा कर रहे थे शुभ समाचार सुनने की।

मौसम का मिजाज कुछ निराला था। कहीं-कहीं आसमान स्वच्छ दिखाई दे रहा था, कहीं बदली के घूंघट से सूर्य झांक रहा था। वह भी नवागंतुक को देखने उत्साहित था।

एकाएक कांसे की थाली का स्वर सुनाई देने लगा। सभी ने देखा- दादी बड़े जोश और उत्साह से कांसे की थाली से अपने पोते के जन्म का शंखनाद कर रही है। थाली का स्वर कह रहा था! सुनो! सुनो! सुनो.......

आशा देवी को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है, नाथूरामजी सिंघई के घर पोता हुआ है। जीवन सिंघई को तीसरी संतान का सुख मिला है, वह भी प्यारा सा बेटा। बहिन संतोष का एक और भाई आ गया है और अरुण (अन्नू) बड़े भैया बन गये हैं।

समाचार फैलते देर न लगी। गुदड़ी के लाल को देखने आ गये पड़ोसी, सम्बन्धी और प्रियजन।

बधाई हो भाभी जी! आपको पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई है।

बधाई हो दादा जी! आपका नाती जुगजुग जिये।

बधाई हो दादी जी! अब आप तीन पोता-पोतियों की दादी बन गई हैं। वास्तव में आज दादी बेहद प्रसन्न थी, उनकी बहू अस्वस्थ रहती थी, आज नाती को देखकर वे चिन्ता मुक्त हो गई थीं। आशा देवी भी अपनी पीड़ा भूल गईं थीं, बालक को देखकर। नौ मास की तपस्या का फल पाया था आशा देवी ने।

दादी ने चूम लिया बालक को, पड़ोसन ने कहा बालक कमजोर है, दादी को पड़ोसन की बात अच्छी न लगी। तपाक से बोली - बालक कमजोर है तो क्या हुआ? बड़ा भाग्यशाली है मेरा बेटा। शुभ घड़ी में जन्म लिया है, मेरे मुन्ने ने। इसकी ऐसी देख-भाल करूँगी कि दो-चार माह में ही गोल-मटोल

हो जायेगा।

सुनकर चुप हो गई पड़ोसन। बड़े जतन से दादी ने दो सफेद पट्टियाँ बहू और नाती के माथे पर बाँध दीं और आवश्यक निर्देश देकर चली गईं अपने घर। घर के कार्य भी तो सम्पन्न करना है। सम्बन्धियों के प्रांगणों में बाजे वालों को भिजवाना है, नाती के जन्म का शगुन मनाने, रस्म निभाने।

माँ का ध्यान बालक की ओर गया, नवजात शिशु अपने अर्धोन्मीलित नेत्रों से उजाले को देख रहा था, जैसे नये वातावरण से परिचय प्राप्त कर रहा हो। माँ देखने लगी ममता भरी आँखों से प्यारे से बालक को।

रंग गेंहुआँ है,चेहरे पर आकर्षण है, कितना सलोना है! नजर हटाने का मन ही नहीं होता। ऐसी क्या विशेषता है इसमें? क्या पूर्व जन्म का अनुराग है? लगता है कोई पुण्यशाली जीव है, तभी तो जब यह गर्भ में आया था, तब मैं कभी-कभी अच्छे स्वप्न देखती थी, भाव भी प्रशस्त रहते थे।

कुछ निर्णय न कर पाईं सो अपने निर्णय को भविष्य के हवाले छोड़ दिया और खो गईं अपने अतीत में। याद करने लगीं उन पलों की, जब उन्होंने नये जीवन में प्रवेश किया था। वे बहू बनकर आईं थीं सिंघई परिवार में। जैतहरी के श्रावक श्रीमान् बाबूलाल और श्रीमती सुन्दरबाई की बेटी आशा सरल और कुशल थीं।

नाथूरामजी के पुत्र जीवन सिंघई के साथ उनका विवाह हुआ था, चंपा सिंगैन की इकलौती बहू बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। सासू माँ ने बेटे-बहू की आरती उतारकर आशीर्वाद दिया था 'दूधो नहाओ पूतो फलो'।

कुछ ही दिन बाद द्रोणगिर क्षेत्र की वंदना करने सपरिवार गये। सुबह सभी ने क्षेत्र की वंदना की और गाँव के जिनालय भी गये। आशा देवी को ज्ञात हुआ, यह भव्य जिनालय उन्हीं के परिवार द्वारा बनवाया गया है, नाथूरामजी के बड़े भाई सिंघई कुन्दनलालजी ने मंदिरजी बनवाकर जिनबिम्ब प्रतिष्ठा करवाई थी और नाथूरामजी ने धर्मशाला का निर्माण करवाया था।

सिंघई परिवार की उदारता और धर्म प्रियता की चर्चा पूर्व में ही वे सुन चुकी थीं, उससे अधिक श्रेष्ठ पाया। धन्य कह उठीं अपने भाग्य को। हँसी-

खुशी सभी घर आ गये।

जिस प्रकार आचार्य शान्तिसागर श्रमण परम्परा के उद्घोषक थे, उसी प्रकार ज्ञान गंगा को जन सामान्य तक पहुँचाने का श्रेय वर्णीजी को जाता है। जगह-जगह पाठशाला, वाचनालय, गुरुकुल और आश्रमों के माध्यम से उन्होंने ज्ञान को दोनों हाथों से लुटाया, सभी को ज्ञानामृत का पान कराया और धर्म का वास्तविक रूप सहजता और सरलता को अपने आचरण में उतारा। वे सच्चे मार्गदर्शक और पथ दृष्टा बने।

देश के कोने-कोने में वर्णीजी का आचरण चर्चा का विषय था, उनका सागर आगमन होता है, सागरवासी गद्‌गद् होकर उनका अभिनंदन करते हैं। वर्णीजी में उन्हें अपने आराध्य के दर्शन होते।

सिंघई परिवार का समर्पण वर्णीजी के प्रति बहुत था, वर्णीजी के उपदेश सुनकर यह परिवार अपनी चंचला लक्ष्मी का उपयोग करने में अग्रणी रहता। मोराजी का पाषाण निर्मित मानस्तम्भ इसी परिवार का सुकृत्य है। ज्ञान की परम्परा आगे बढ़े सो सरस्वती भवन का लोकार्पण भी वर्णीजी के सान्निध्य में हो गया। नेमिनाथ जिनालय का निर्माण भी इनकी उदार भावना का प्रतिफल था। '**सादा जीवन उच्च विचार**' वाले परिवार को पाकर वे अपने आपको भाग्यशाली समझती थीं।

अतिथि संविभाग व्रत का पालन भी यहाँ होता था, जो भी साधक आते बड़ी विनय और नवधाभक्ति से आहार सम्पन्न होते।

समय पंख लगाकर उड़ रहा था। आशाजी ने प्रथम संतान के रूप में एक कन्या को जन्म दिया। नामकरण हुआ 'संतोष'।

दादी की चाहत कुछ और थी, उनका मानना था बेटी पराया धन होती है, सयानी होते ही पराये वृक्ष में अपना नीड़ बसा लेती है। घर में रौनक बेटे से होती है और वही सम्पत्ति का अधिकारी होता है। वे जानती थी पुण्य और समय आने पर ही कार्य सम्पन्न होते हैं।

करीब चार साल बाद दादी की भावना पूर्ण हुई, घर में एक बालक का जन्म हुआ नाम रखा 'अरुण'। संतोष अब दीदी बन गई थी, वह अपने

छोटे-छोटे हाथों से छोटे भाई की देखभाल करने लगी। आशादेवी का स्वास्थ्य कुछ नरम-गरम रहता था। सासू माँ चिंतित रहती थीं और बहू का सहयोग भी करती थीं। संतोष भी जितना बनता माँ का सहयोग करती थी। पूरा परिवार श्रावक के षट् आवश्यकों के पालन में संलग्न रहता था।

अरुण तीन साल का हो गया, उसे प्यार से सभी अन्नू कहकर पुकारते थे। माघ का महीना प्रारम्भ होने वाला था। आशादेवी निद्रा में लीन थीं, सुबह ब्रह्म मुहूर्त में स्वप्न लोक में विचरण करने लगीं। वे सिंघई जी के साथ मुनिराज का पड़गाहन कर रही हैं, आहार भी सम्पन्न हो रहे हैं। नींद खुली, बड़ा अच्छा लगा। स्वप्न सिंघईजी को सुना दिया।

सिंघईजी हँसकर बोले - सुबह का स्वप्न है मुनिराज के दर्शन हुये हैं, अच्छा फल मिलने वाला है।

आशादेवी की चेष्टाओं से सासू माँ समझ गईं, घर में पुनः नये मेहमान का आगमन होने वाला है। सभी ने देखा उनकी कृशकाया में स्फूर्ति आ गई है, चेहरे पर प्रशस्त भाव बने रहते हैं। काम करते-करते समाधिभावना, मेरी-भावना, बारहभावना गुनगुनाने की आवाज आती रहती है।

अभिषेक पूजन के लिए वे यथासमय पहुँच जातीं, यूँ तो वृद्ध महिलाओं के बीच वे प्रतिदिन स्वाध्याय करती थीं, पर अब उनके स्वाध्याय का आकर्षण कुछ और ही था। वाणी में मधुरता बढ़ गई थी और विवेचना गहरी होने लगी। घर का वातावरण बदलने लगा, पद्मपुराण का वाचन रात्रि में होता था, आशादेवी बड़े ध्यान से सुनतीं, विभिन्न प्रसंगों पर प्रश्न पूछतीं। कभी सासू माँ, कभी ससुर जी और कभी सिंघईजी से।

ठंड के दिन थे, शाम को सिगड़ी में आग जलाकर सभी बैठ जाते, वहीं बच्चों की सिकाई हो जाती और होती पुरानी चर्चायें। कभी यात्रा के संस्मरण, मुनि आहार की चर्चा और होली, दीवाली के प्रसंग।

एक दिन आशादेवी ने पूछ लिया सासू माँ से - माँ! भगवान् आदि प्रभु की प्रतिमा बड़ी मनोज्ञ है, ऐसा लगता है देखते ही रहें, यह बहुत प्राचीन लगती है?

बहू की जिज्ञासा सुनकर सासू माँ मुस्कुरा दीं और बोली हाँ, यह प्रतिमा बहुत प्राचीन तो नहीं, करीब 50 साल पहले की है। उस समय आवागमन के साधन सीमित थे, तीर्थयात्रा बैल गाड़ियों से हुआ करती थी।

हम सभी देवरानी-जिठानी अपने ससुरजी (कारेलालजी) के साथ सिद्धक्षेत्र गिरनारजी गये थे, बड़ा आनंद आया था उस यात्रा में। जहाँ नदी मिलती वहाँ सभी का स्नान हो जाता और जहाँ मंदिर मिलता वहाँ अभिषेक पूजन और भोजन क्रिया सम्पन्न हो जाती। जहाँ 10-12 बैल गाड़ियाँ रुकतीं, मेला लग जाता।

लौटते समय जयपुर रुके, ससुरजी की भावना थी मूर्ति की नगरी से एक भव्य मूर्ति यात्रा के उपलक्ष्य में ले जाना चाहिये। ससुरजी के विचार का हम तीनों बहुओं और बेटों ने समर्थन किया, सो अष्ट धातुओं से बनी यह प्रतिमा हमारी यात्रा की यादगार शोभा बन गई। लगता था भगवान् आदिनाथ की बारात ही जा रही हो, जिस गाँव या शहर से आदि प्रभु निकलते वहीं आरती होती और अभिनंदन-वंदन होता।

सागर वासियों ने भी भव्य अगवानी की और बुधुव्या जैन मंदिर में, भव्य समारोह के साथ प्राण प्रतिष्ठा हो गई। हमारे ससुरजी ने भी शोभा यात्रा हेतु बारह तोला सोना और इक्कीस किलो चाँदी का विमान प्रदान कर दिया।

सिलैरा ग्राम में भी हमारी जमींदारी थी, वहाँ भी सार्वजनिक गौशाला के लिए हमारे परिवार ने खेती और जमीन प्रदान की है।

आदि प्रभु की पुण्य कथा से रोमांचित हो गईं आशादेवी। दोनों बच्चों को भी खूब आनंद आया, साथ में गर्भस्थ बालक के हृदय की तरंगें माँ के चेहरे पर प्रतिबिम्बित हो रहीं थीं। लगता था वह शिशु भी प्रशस्त प्रक्रिया व्यक्त कर रहा है।

सासू माँ ने कहा - आशा! हमारे परिवार की दान परम्परा और आहार दान की भावना निरंतर बनाये रखना। बच्चों को भी संस्कार देना।

मुझसे आपको शिकायत न होगी माँ। मैं आपकी कुल परम्परा का निर्वाह करती रहूँगी। बहू ने अपनी सासू माँ को आश्वस्त कर दिया।

आशादेवी जानतीं थीं उनकी सासू माँ चम्पा सिंगैन के नाम से जानी जाती हैं, वे शास्त्र सभा की रुचिवान श्रोता थीं। गले में बड़ी मिठास है, उनके आध्यात्मिक भजन सभी को बहुत अच्छे लगते थे। उन भजनों को वे काम करते-करते गुनगुनाती रहतीं थी, कुछ भजनों को तो कंठस्थ कर लिया था।

आशादेवी कभी-कभी शुभ स्वप्न देखतीं, अक्सर सुंदर सरोवर देखा करतीं, कभी देखतीं उड़ते पक्षी और कभी देखतीं जिनालयों का अभिषेक पूजन।

बालक वीरेन्द्र की दादी चम्पा सिंगैन

कभी पूरा स्वप्न याद रहता, कभी स्वप्न का कुछ अंश सभी को सुनाती पर एक दिन का स्वप्न तो उनको पूरा याद है, वे कुण्डलपुर पहुँच गई हैं बड़े बाबा के समवसरण में। लगता था प्रभु के सर्वांग से दिव्यध्वनि निःसृत हो रही है नमन करने झुकीं, सहसा बालक के रोने की आवाज सुनाई दी, उनकी तंद्रा टूट गई। थोड़ी देर वे असमंजस में रहीं कि वे अभी हैं कहाँ ?

अन्नू जोर-जोर से रो रहा था, यथार्थता का भान हो गया, समझ गईं कि वे अपने घर में हैं बड़े बाबा के दर्शन तो स्वप्न में किये थे। कितना मनोहारी दृश्य था, काश! यह व्यवधान न आता तो कितना अच्छा होता।

प्रातः सारा स्वप्न सासू माँ और सिंघईजी को सुना दिया और इच्छा व्यक्त की कि स्वप्न दर्शन से तृप्ति नहीं मिली, प्रत्यक्ष बड़े बाबा के दर्शन की भावना है।

कुण्डलपुर बहुत दूर नहीं था। सभी सदस्य तीर्थ वंदना को उत्साहित रहते थे सो दो दिन बाद ही पहुँच गये सभी कुण्डलपुर।

माँ सूर्योदय के पूर्व ही जाग उठीं, नहा-धोकर अष्ट द्रव्य लेकर पहुँच गई बड़े बाबा के दरबार में। कुण्डलपुर की हरियाली और शिखरों पर पड़ती धूप में उनका रोम-रोम पुलकित हो गया, प्रभु की वीतराग मुद्रा को अपलक निहारने लगीं। सहज ही भाव व्यक्त हो गये -

पावन मेरे नयन भये तुम दरश तें।
पावन पाणि भये तुम चरणन परस तें।
पावन मन है गयो तिहारे ध्यान तें।
पावन रसना मानी तुम गुणगान तें।।

सिंघईजी ने बड़े बाबा का अभिषेक किया, सभी ने गंधोदक मस्तक पर लगाया।

शान्तिनाथ विधान करने के भाव थे सो विधान प्रारम्भ हो गया, विधान सभी पढ़ रहे थे पर सास बहु के मधुर कण्ठ से प्रस्फुटित भारती सुनकर वहाँ उपस्थित सैंकड़ों नर-नारी झूम उठे, बच्चे तालियाँ बजाने लगे।

माँ के हाव-भाव देखकर लगता था कि गर्भस्थ शिशु भी इस भक्ति गंगा से संस्कारित हो रहा है।

रात्रि में सभी ने बड़े बाबा की आरती की और फिर आ गये अपने घर।

घर लौटे तो धर्माराधना के लिए अष्टाह्निक पर्व आने वाला है, मंदिर जी में नन्दीश्वर विधान होना है, हम सभी उसमें शामिल होंगे, ऐसा सासू माँ का विचार था सो आशादेवी द्रव्य का थाल सजाने लगीं।

आठ दिनों तक सामूहिक पूजन में आनन्द आता रहा, बड़ी भक्ति भावना से अर्घ्य समर्पित किये, नन्दीश्वर द्वीप के जिनबिम्बों को।

रक्षाबंधन भी आ गया। 700 मुनिराजों के समता भाव को याद कर श्रद्धा सुमन अर्पित कर दिये। साथ ही विष्णुकुमार मुनि महाराज के वात्सल्य भाव को अपने हृदय में अंकित कर लिया।

अच्छा समय पता नहीं चलता। पर्युषण पर्व सामने है, समय पूरा हो चुका है। सादों का दस्तूर दसलक्षण पर्व के पहले ही कर लेना चाहिये। सासू माँ ने विचार कर बुला लिया रिश्तेदारों और पड़ोसियों को। चौक पूरकर बैठा दिया आशादेवी को। सादे खिलाकर गोद भर दी। बहू ने पैर छू लिये माँ के।

माँ ने आशीर्वाद दिया और कहने लगी, 10 दिन निकल जायें तो अच्छा है ताकि पर्व के दिनों में अभिषेक पूजन से वंचित न रहें।

दादी की वह भावना भी पूर्ण हो गई। क्षमा वाणी भी सम्पन्न हो गई। दादी ने कहा था – बड़ा पुण्यशाली जीव है जो सभी के धार्मिक आयोजनों में सहयोगी बनता है। कुछ दिनों बाद आ गया सुसमय।

20 सितम्बर, 1957 का वह दिन। जिस दिन आशादेवी ने पुण्यात्मा को जन्म दिया जो कुल शिरोमणि बनने वाला है।

सहसा आवाज आई माँ! माँ ! हम भी आ गये छोटे भैया को देखने। बच्चों की आवाज ने माँ को अतीत के स्वप्नों से वर्तमान में खड़ा कर दिया। बालक के कपड़े भी गीले हो गये थे, बड़े जतन से बालक के कपड़े बदलकर संतोष बिटिया की गोद में रख दिया शिशु को। अन्नू भी बड़े प्यार से बालक के माथे को सहला रहा था।

लग्न कुंडली

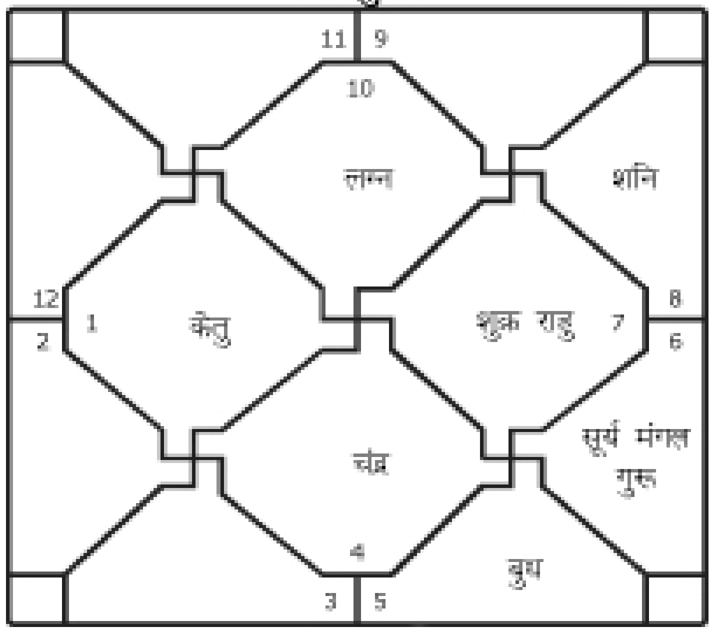

बालक की कुण्डली नामी पण्डित से लिखवाई गई, पण्डितजी को खूब दक्षिणा मिली, उन्होंने बताया – बालक होनहार, कुशाग्रबुद्धि और चतुर्मुखी प्रतिभा का धनी होगा।

सवा महीने बाद चौक का बृहद् आयोजन किया गया। सिंघई भवन सजाया गया, सभी रिश्तेदार और व्यवहारियों को बुलाया गया, पंगत की गई, खूब बाजे बजे। महिलाओं ने मंगल गीत गाये। बालक को बुआ ने काजल लगाया, झूला झुलाया, उन्हें चाँदी की थाली नेंग में मिल गई। वे खुश हो गईं।

नाना–नानी, मामा–मामी, मौसा–मौसी सभी उपहार में वस्त्र–आभूषण, सोना–चाँदी लाये थे, खूब सजा था मुन्ना। छोटे–छोटे पैरों में महावर लगाया था। संतोष और अन्नू पलना झुला रहे थे छोटे से राजकुमार को। दोनों शाला जाते समय और वहाँ से आकर सबसे पहले छोटे सरकार से मिलते। पूरा परिवार खूब खुश था।

मुन्ना कमजोर था सो दादी का ध्यान उस पर अधिक रहता था। जैसे ही मुन्ना रोता दादी उसकी नजर उतार देतीं, पेट की सिकाई कर देतीं और थपकी देकर मधुर आवाज से लोरी गाने लगतीं।

चंदन का पालना रेशम की डोर ....।

मीठे-मीठे बोल अपने लालन को सुनाऊँगी।

रोज गा-गा लोरी प्यारे बेटे को सुलाऊँगी।

दादी की मीठी आवाज सुनकर मुन्ना सो जाता। यूँ तो घर के हर सदस्य से उसका परिचय हो गया था, पर संतोष और अन्नू को देखकर वह किलकारी मारने लगता था। अब वह बैठने लगा है।

बेटा एक वर्ष का होने वाला है, प्रथम जन्म दिन आने के पूर्व ही मुण्डन संस्कार हो जाना चाहिये, ऐसी बुन्देलखण्ड में मान्यता है। दादी ने दादाजी को सलाह दी कि शीघ्र ही किसी क्षेत्र पर जाकर मुन्ना का मुण्डन करवा लें।

दादाजी ने अपनी कुल परम्परा के अनुसार महावीरजी जाने की स्वीकृति प्रदान कर दी। तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं।

तांगे पर जैसे ही मुन्ना बैठा, घोड़े को बड़ी उत्सुकता से देखने लगा। कभी तांगे वाले की टिक-टिक पर किलकारी भरता, कभी भैया के पास जाता, कभी बहन की गोद में बैठ जाता। हँसी-खुशी पहुँच गये श्री महावीरजी।

शाम का समय था सो आरती सजाकर सभी ने टीले वाले बाबा की आरती की सभी को देखकर मुन्ना ने भी माथा टेक दिया। महावीर भगवान् की जय....। टीले वाले बाबा की जय....। जयकारों के बीच मुन्ना भी दय-दय-दय कह रहा था। ताली बजाकर अपनी भक्ति भावना व्यक्त कर रहा था।

मुन्ना का प्रथम स्वर प्रस्फुटित हुआ था वह भी जय। कितना प्यारा है, संस्कारों को कितनी जल्दी ग्रहण कर लेता है। माँ सोचकर गद्‌गद् हो रही थी।

सुबह सभी शान्तिनगर की वंदना करने गये, मुन्ना ने भी वंदना की और ताली बजाकर जय-जय शब्द का उच्चारण किया। वहाँ से लौटकर आश्रम में रुके, वहाँ की संचालिका दानवीर कृष्णा बाई जी सिंघई परिवार से

पूर्व परिचित थीं, उन सभी को देखकर प्रसन्न हो गईं। कुशल क्षेम पूछी और भोजन कराने हेतु भावना व्यक्त की। बातों-बातों में पता लगा मुन्ना का मुण्डन करवाना है सो सारी व्यवस्थायें बनाने में सहयोग कर दिया बाई जी ने।

वृक्ष तले चौक पूरा गया माँ की गोद में मुन्ना को बिठाया गया, मुण्डन प्रारम्भ हो गया। सभी सोचते थे - मुन्ना मुण्डन करवाने में रोयेगा क्योंकि अधिकांश बच्चे मुण्डन करवाने में रोते हैं, पर मुन्ना मुण्डन करवाते समय रोया नहीं बल्कि बड़ी उत्सुकता से देखता रहा कभी अपने केशों को, कभी आटे की लोई लिये दादी को और कभी अपने भाई-बहन को।

बाईजी ने कहा - क्या नाम है मुन्ने का?

हम लोग मुन्ना कहते हैं, आप ही कीजिये इसका नामकरण। दादाजी ने कहा। बाईजी ने कुछ सोचा फिर बोली - 'वीरेन्द्र' नाम अच्छा है। आज से इसे वीरेन्द्र नाम से पुकारना। सभी ने सहमति प्रदान कर दी।

कोई नहीं जानता था कि एक श्राविका के मुख से नामकरण प्राप्त करने वाला वीरेन्द्र भविष्य में महाव्रतों को अंगीकार कर लेगा।

मुन्ना, वीरेन्द्र बनकर आ गया सागर।

वीरेन्द्र सम्बोधन नया-नया था, कभी मुन्ना तो कभी वीरेन्द्र घर के लाड़ प्यार में बढ़ते-बढ़ते तीन वर्ष के हो गये, पकड़ा दी तीन चके की काठ की गाड़ी। जिसके सहारे मुन्ना दौड़ने लगा घर के कोने-कोने तक। अब बोलने भी लगा है छोटे-छोटे वाक्य।

दादी की पाठशाला में तीनों बच्चे रोज शाम को णमोकार मन्त्र, मेरी भावना सीखने लगे। मुन्ना तोतली भाषा में भाई बहिन का अनुकरण करता। दादी की कहानियाँ, परी कथायें मुन्ना को बहुत अच्छी लगतीं। बड़ी तन्मयता से सुनता और रोज शाम होते ही दादी की गोद में आकर बैठ जाता।

माँ के साथ कभी-कभी मंदिर भी जाता दोनों हाथ जोड़कर नमन करता, दोनों आँखों को बंदकर मन ही मन णमोकार मंत्र पढ़ने का अभिनय करता। मंदिर के श्रावक-गण मुन्ना की ध्यान मुद्रा को पूजन स्वाध्याय करते-करते देख लेते और प्रसन्न हो लेते।

चार वर्ष का मुन्ना अब तो मीठी-मीठी बातें भी करने लगा है और मित्रों के साथ खेलने भी लगा है। माँ के सारे कार्यों में क्यों/कैसे/कहाँ नये-नये सवाल पूछने लगा है। कभी-कभी माँ हँसकर समाधान कर देती थी, कभी काम की व्यस्तता में कह देती - जाओ मुन्ना कक्काजी के पास, वे ही तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर देंगे, तुम्हें पढ़ायेंगे भी।

टॉफी-बिस्कुट भी मिल जाती, पर मुन्ना अकेले नहीं खाता था, पूछने पर कह देता था, भैया और दीदी के साथ खाऊँगा।

जब भी मुन्ना घर लौटता, बहिन भाई उसके जेब टटोलते। जरूर कोई अच्छी चीज लाया होगा। टॉफी, बिस्किट, मिठाई-नमकीन आदि। वह अपने छोटे-छोटे हाथों से दे देता, चेहरे से ऐसा लगता जैसे बड़ा उपहार दे रहा है।

दीदी बड़े प्रेम से अपनी गोद में बिठा लेती, फिर तीनों भाई बहिन मिलकर खाते और एक दूसरे को खिलाते।

''पूत के लक्षण पालने में दिखाई देते हैं'' माँ जैसे ही बिस्तर छोड़ती, मुन्ना भी उठ जाता। माँ कहती - बेटा ठण्ड है सो जा, अभी से उठकर क्या करेगा? पर बेटा कहाँ मानने वाला था?

एक दिन देखा माँ सुबह से रसोई बनाने लगी है।

माँ क्या कर रही हो सुबह से ?

बेटा चौका लगा रही हूँ। वर्णीजी आये हैं, पड़गाहन करूँगी। मुझे छूना मत! मैं सोले में हूँ। तू कक्काजी के पास सो जा। मुन्ना सोया नहीं। देखता रहा दूर से माँ का काम।

उसने देखा वर्णीजी का पड़गाहन। आहार देने और लेने का तरीका। बड़ा रस आ रहा था यह सब देखने में। आहार सम्पन्न हो गये। वर्णीजी देख रहे थे बालक की जिज्ञासु निगाहों को। पढ़ रहे थे बालक के भोले-भाले गंभीर चेहरे को। देख रहे थे उसके उज्ज्वल भविष्य को।

पिच्छी देने बुलाया माँ ने। बालक प्रसन्न चित्त होकर आया, और पकड़ा दी पिच्छी। चरण स्पर्श कर लिए।

वर्णी जी ने खूब आशीर्वाद दिया बालक को। वात्सल्य से हाथ फेर दिया सिर पर। हाथ पकड़ लिया और बोले - बड़ा होनहार बालक है बहुत प्रगति करेगा और आपके परिवार का नाम बढ़ायेगा।

परिवार जन प्रसन्न हो गये मुन्ना की तारीफ सुनकर। मुन्ना भी बड़ा खुश दिखाई दे रहा था। सभी के साथ वर्णीजी को भेजने चला गया मोराजी।

वहाँ से आकर वर्णीजी जैसा सादा भोजन (प्रसाद) के रूप में पाया कितना स्वादिष्ट भोजन है? कितनी मिठास है? मुन्ना ने श्वेत वस्त्रधारी वर्णी जी के प्रथम संस्कार पा लिए सहजता, सादगी और हित-मित वाणी के।

वर्णीजी के बारे में दिन भर पूछता रहा नये-नये सवाल। मुन्ना के चेहरे पर उस दिन माँ ने प्रसन्नता देखी।

विहार हो गया वर्णीजी का। सम्मेदशिखर की वंदना के भाव थे और वे ईसरी के शान्त वातावरण में सल्लेखना धारण करना चाहते थे। सागर वासियों ने अपने प्यारे संत को अंतिम विदाई दी।

एक दिन कक्काजी ने आशा देवी से कहा- सागर में चेचक फैल रही है, बच्चों के स्वास्थ्य का ध्यान रखना।

माँ ने बच्चों को हिदायत दी - तुम लोग घर में रहना, यहाँ-वहाँ नहीं जाना और मुन्ना छोटा है उसको लेकर कहीं नहीं जाना।

अनेक सावधानियों के बावजूद एक के बाद एक तीनों बच्चे आ गये बीमारी की चपेट में। बुखार बहुत तेजी से रहता। वैद्यराजजी की दवाइयों से आराम न लगा। दिखने लगे बच्चों के चेहरे और सारे शरीर में छोटे-बड़े दाने।

दादी प्रतिदिन अभिषेक का पवित्र गंधोदक लाकर बच्चों को लगाती थी। दादा नीम की ताजी पत्तियाँ और रंग-बिरंगे फूलों के गुलदस्ते रोज बच्चों के कमरे में रख देते।

आशादेवी से बच्चों की पीड़ा देखी न जाती पर मजबूर थीं। बच्चों के कराहने की आवाज सुनकर वे णमोकार मन्त्र सुनाना शुरू कर देतीं और सिर पर हाथ फेरने लगतीं। मुन्ना वैसे ही कमजोर था अब और अधिक कमजोर हो गया था। माँ सोचती-कितना मासूम है और सहनशील भी। धर्म के प्रति लगाव

भी है जैसे ही मैं णमोकार मन्त्र का पाठ करती हूँ सुनकर शान्त हो जाता है और साथ में मन्त्रोच्चारण भी करने लगता है। परेशान नहीं करता, चुपचाप लेटा रहता है। कष्ट सहन करने की क्षमता है इसमें।

जब तक बच्चे स्वस्थ्य नहीं होंगे माँ ने घी का त्याग कर दिया। मुन्ना की श्रद्धा, समता, आशादेवी के त्याग और दादा-दादी की सेवा सम्हाल से स्वास्थ्य लाभ मिलने लगा बच्चों को।

बहुत दिनों के बाद पुनः घर में चहल-पहल शुरू हो गई। एक दिन माँ ने मुन्ना से कहा - हम तुम्हारे पसंद की चीज तुम्हें देंगे लेकिन पहले तुम्हें भगवान् जैसा बैठना होगा।

मुन्ना ने सोचा-क्या नुकसान है, भगवान् जैसा बैठने में। मंदिर में भगवान् को रोज देखता था सो बैठ गया पालथी लगाकर।

अरे तुम तो आँखें खोलकर बैठे हो। भगवान् तो हमेशा आँखें बंद किये रहते हैं माँ ने कहा।

मुन्ना ने झट से आँखें बंद कर लीं और कुछ क्षणों तक ध्यान मुद्रा में बैठा रहा माँ देखती रहीं बेटे की मुद्रा को। गले से लगा लिया बालक को। उनको क्या पता था कि बचपन के ये संस्कार बेटे को श्रेष्ठ साधक बना देंगे।

माँ ने बेटे के श्रेष्ठ अभिनय पर उसे बहुत सारी मन पसंद चीजें दीं। अब तो मुन्ना कभी-कभी आसन लगाकर उस मुद्रा का आनंद लेता रहता था।

खुशी लम्बे समय तक कहाँ रहती है? ईसरी से समाचार मिला कि सन् 1961 में पञ्चपरमेष्ठी की आराधना करते हुये वर्णीजी समाधिस्थ हो गये हैं। वज्राघात हो गया, सागरवासी अनाथ से हो गये। सड़कों पर सन्नाटा छा गया, उनके चहेते हितकारी वर्णीजी सभी को छोड़कर चले गये।

सिंघई परिवार में मातम सा छा गया। सभी सदस्य बिलख रहे थे इस घटना से। नाथूरामजी के बड़े भाई कुन्दनलालजी को ऐसा सदमा लगा कि उनका अन्न-जल ही छूट गया। वर्णीजी को पितृवत् मानते थे। कितने दिन शरीर ठहरता, करीब छह माह बाद वे स्वर्गवासी हो गये।

वर्णीजी की समाधि से नाथूरामजी पहले से ही व्यथित थे। बड़े भ्राता

के विछोह ने और वर्णी के वियोग ने उन्हें खाट पकड़ने पर मजबूर कर दिया। अब न उन्हें भोजन अच्छा लगता न परिवार। बस चौबीसों घण्टे कभी बड़े भाई का स्मरण करते कभी वर्णीजी की चर्चा करते। दोनों आत्मीय जनों के साथ बिताये जीवन के अमूल्य क्षणों का स्मरण कर आँसू बहाते रहते।

घर का माहौल अब मुन्ना को अच्छा न लगता था , लम्बे समय से घर में उदासी का वातावरण बना हुआ था। मुन्ना सोचता बब्बाजी खाना भी नहीं खाते, मुझे कहीं घुमाने भी नहीं ले जाते, कुछ कहते हैं और रोने लगते हैं। आखिर मुन्ना ने माँ से पूछ ही लिया - माँ बब्बाजी क्यों रोते हैं माँ ने बालक की जिज्ञासा को समाधान करने की दृष्टि से याद दिलाया।

पर की साल अपने घर एक संत आये थे याद है? उन्हें वर्णीजी कहते थे। उन्होंने अपने यहाँ आहार लिया था, तब तुम चौका के पास बैठे-बैठे देख रहे थे। आया याद .....?

मुन्ना को क्षण भर के लिए वह दृश्य कौंध गया। मुन्ना को दिखा - एक वृद्ध संत तखत पर बैठे हैं और मेरा हाथ पकड़कर कुछ कह रहे हैं किन्तु वार्ता की याद नहीं है।

वे दृश्य में खोये रहे माँ समझ गईं कि उसे याद आ गया है अतः आगे बोली - याद आ गया भैया? मुन्ना ने स्वीकृति में सिर हिलाया माँ ने बतलाया - वे ईसरी में थे उनका निधन हो गया है। बब्बाजी उन्हें बहुत चाहते थे इसीलिए उनकी याद में रोते रहते हैं।

मुन्ना के मन में प्रश्न उठा-निधन किसे कहते हैं? ये लोग कहते हैं वर्णीजी की समाधि हो गई। समाधि किसे कहते हैं? कुछ पूछता तब तक माँ चली गईं। उन दोनों शब्दों का रहस्य मुन्ना के मन में घूमता रहा।

बब्बाजी अधिक अस्वस्थ रहने लगे, दवाइयों का असर भी नहीं हो रहा था। अधिकांश समय णमोकार मन्त्र का पाठ चलता था। मुन्ना भी अधिक समय उसमें सहभागी बनता था। एक दिन बड़े भैया को सुझाव दिया मुन्ना ने।

जब कोई बीमार होता है उसके सिरहाने नीम की पत्तियाँ और फूल रख देते हैं। तुम्हे याद है भैया? हम तीनों बीमार थे तो बब्बाजी रोज फूल लाते

थे। चलो हम भी कहीं से फूल पत्तियाँ और नीम लायेंगे और बब्बाजी के पास रख देंगे, जिससे वे ठीक हो जायेंगे।

छोटे वैद्यराज की सलाह भाई बहिन को अच्छी लगी बोले चलो चलते हैं, पड़ोस में सोनी दादा की बगिया में। दादा की स्वीकृति लेकर ले आये अपने नन्हें–नन्हें हाथों में शुभकामना के गुलदस्ते। गुणकारी नीम।

पूरा कमरा बच्चों के सुकृत्य से सुवासित हो गया। सभी बच्चों की स्मरण शक्ति पर मन ही मन मुस्का दिये। बब्बाजी भी खुश हो गये और मुन्ना को छाती से लगा लिया। देने लगे असीम आशीष। खूब आगे बढ़ो, खूब नाम कमाओ।

तीनों बच्चे बारी–बारी बब्बाजी के पैर दबाते। बारहभावना, मेरीभावना समाधिपाठ सुनते हुए सन् 1962 में बब्बाजी स्वर्गवासी हो गये। मुन्ना ने देखा बब्बाजी को चटाई पर लिटा दिया है। घर के सभी लोग रो रहे हैं, बच्चे भी कुछ बोलते नहीं है। ये लोग बब्बाजी को उठाकर कहाँ ले जा रहे हैं? कुछ समझ में नहीं आता। किससे पूछे?

बड़ी देर बाद साहस जुटा पाया। बुआजी से बोला – बुआजी! बब्बाजी कहाँ गये हैं? लौटकर कब आयेंगे?

बुआजी ने कहा बब्बाजी का निधन हो गया है, जिसका निधन हो जाता है वह कभी लौटकर नहीं आता। सुनकर उदास हो गया मुन्ना।

सोचने लगा – बब्बाजी अब कभी नहीं मिलेंगे ? बब्बाजी का निधन हो गया है? माँ ने भी बताया था वर्णीजी का भी निधन हो गया है अब आया समझ में। क्या इसी प्रकार सभी का निधन होता है? सभी को जाना पड़ता है? इन प्रश्नों से मुन्ना की उदासी देखकर माँ ने बेटे को अपनी गोद में लिटा लिया और वात्सल्य का हाथ फेरा। बालक सो गया गहरी नींद में।

समय एक ऐसा मरहम है, जो बड़े–बड़े घावों को भर देता है, धीरे–धीरे घर का माहौल सामान्य होने लगा। दादी जानती थी संसार क्षणभंगुर है, सभी को जाना है, संसार असार है। जो कभी स्वाध्याय में मन स्थिर करने का प्रयास करतीं, तो कभी बच्चों के साथ अपना मन बहलातीं।

गर्मी बहुत तेज पड़ रही थी, माँ रसोई में व्यस्त थी। मुन्ना सीढ़ी से आवाज लगा रहा था–माँ माँ! कक्का आये हैं। माँ समझ गईं कक्का (राजेन्द्र पटोरिया जो वर्तमान में नागपुर में निवासरत हैं) उनकी सासू माँ के भतीजे हैं। प्रत्येक वर्ष गर्मियों में सागर आते हैं। वे उनके देवर और मुन्ना के कक्का हैं। मुन्ना से उन्हें बहुत स्नेह है। बेटा भी उन्हें बहुत चाहता है। माँ ने कहा – मुन्ना! कक्का को भोजन करने ले आओ।

कक्का की अंगुली पकड़कर आ गये मुन्ना भोजनशाला में।

आशादेवी ने देवर से कुशल क्षेम पूछी और थाली लगाने लगीं। माँ ने देखा – अलमारी से डिब्बे निकालकर मुन्ना, मीठा और नमकीन कक्का की थाली में परोस रहा है। बालक की भावना और आत्मीयता से जो परोसा गया, न चाहते हुये भी ग्रहण कर लिया कक्का ने।

भोजन के बाद मीठी–मीठी बातें करता रहा मुन्ना।

सिंघई जी की गाँव में जमींदारी थी, वहाँ से बड़े स्वादिष्ट आम आते थे, घर और पास पड़ोस में उनका उपयोग होता था। घर की तीसरी मंजिल में पाल लगाया जाता था, पाल में आम पकाये जाते थे।

शाम को मुन्ना ने सूचना दी। कक्का! पाल में बहुत बड़े–बड़े आम रखे हैं मैं भी भैया दीदी के साथ छत पर सोऊँगा, आप अच्छी–अच्छी कहानियाँ सुनाना।

कक्का समझ गये मुन्ना की भावना। रात में कहानी सुनते–सुनते सो गये सभी।

सुबह मुन्ना सबसे पहले उठ गया और उसने कक्का को जगाकर कहा – कक्का उठो! बहुत सारे आम पक गये हैं। चलो हम सभी खायेंगे।

सभी ने मिलकर स्वादिष्ट आमों का मजा लिया और गुठली पाल के नीचे छिपा दीं।

पाल के नीचे छिपी गुठलियों को देखकर सिंघईजी और आशादेवी हँस रहे थे। मुन्ना की नटखट हरकतों पर और सभी के साथ मिल बैठ कर खाने

की आदत पर।

गर्मियों में रिश्तेदारों के बच्चे आ जाते थे। उनके साथ टीपरेस खेलने में बड़ा आनंद आता था मुन्ने को। सभी बच्चों को एक चादर के नीचे छिपाकर बार-बार दाम दिलवाता था मुन्ना। पूरे दिन लुका-छिपी का खेल होता था और दोपहर में होती थी पंगत। जिसमे बड़े स्नेह से सभी को मीठा नमकीन अपने हाथ से खिलाता था मुन्ना।

सिंघई जी के मकान में सबसे नीचे कमरे में गाय बंधी रहती थी, गाय को दुहने बरेदी (ग्वाला) आता था, मुन्ना माँ के साथ जाकर गाय दुहने की प्रक्रिया देखा करता था।

गाय का प्यारा-सा बछड़ा था, मुन्ना उसको बहुत चाहता था, उसके साथ उछल-कूद करने में उसे बड़ा मजा आता था, गाय बछड़े को रोज रोटी खिलाने आ जाता था मुन्ना। बछड़ा भी मुन्ना की पदचाप से परिचित हो गया था जैसे ही सीढ़ी पर मुन्ना आता वह माँ-माँ शब्द से पुकारने लगता। कहने को तो वह मूक पशु था, पर मुन्ना के सहलाने में उसे आत्मीयता का बोध होता था उसकी भाषा भी मुन्ना समझने लगा था। माँ से कहता है कि बड़े होकर मैं गाय दोहने का कार्य स्वयं प्रारम्भ करूँगा और बछड़े को भी बहुत सारा दूध पिलाऊँगा। उसकी गाय के प्रति वात्सल्यमयी सोच को देखकर माँ की आँखें भीग गईं।

मुन्ना की नटखट हरकतें देखकर माँ ने मुन्ने से कहा देख बेटा - अब तू पाँच वर्ष का होने वाला है, अब मैं तेरा नाम शाला में लिखवाऊँगी जैसे ही रात्रि में सिंघईजी घर आए।

आशा देवी ने कहा - मुन्ना पाँच वर्ष का हो गया है, शाला में प्रवेश दिला दीजिये।

कल ही शाला ले जाकर नाम दर्ज करवा दूँगा। सिंघईजी ने जवाब दिया।

एक जुलाई को सुन्दर बस्ता मुन्ना के कंधे पर था। रंग-बिरंगा छाता, सुन्दर ड्रेस पहनकर पहुँच गये मुन्ना स्कूल।

प्रधान अध्यापक ने बड़े स्नेह से पूछा - तुम्हारा नाम क्या है?

वीरेन्द्र सिंघई।

गिनती सुनाओ ?

गिनती सुनाना प्रारम्भ कर दिया, साफ शुद्ध स्वर में उच्चारण कर रहे थे, अध्यापकजी ने कहा शाबास। नाम दर्ज कर लिया पहली कक्षा में।

दूसरे दिन जैसे ही दस बजे। कक्काजी ने कहा - चलो मुन्ना स्कूल ?

मुन्ना का रोना शुरू हो गया, पूछने पर पता लगा, उसे स्कूल में अच्छा नहीं लगता।

माँ ने बड़े स्नेह से समझाया देखो मुन्ना! तुम्हें अच्छा बालक बनना हो तो स्कूल जाना पड़ेगा। मुन्ना ने सहमति में सिर हिला दिया, पर अगले दिन फिर वही हाल।

स्कूल न जाने पर कभी-कभी पिताजी की डाँट भी खाना पड़ती थी मुन्ना को।

माँ ने संतोष से कहा - संतोष! मुन्ना तुम्हारी बात मानता है, तुम्ही उसको शाला ले जा सकती हो।

संतोष ने दूसरे दिन कुछ टॉफी, बिस्किट लिये, मुन्ना को समझाया और ले गई स्कूल। मुन्ना के साथ उसकी क्लास में बैठ गई। दो चार दिन यही उपक्रम चला। संतोष ने देखा मुन्ना के मित्र बन गये, उसे पढ़ाई भी समझ में आने लगी, गुरुजी के प्रश्नों के उत्तर भी तपाक से देने लगा, गुरुजी की शाबासी से उत्साहित होने लगा मुन्ना। माँ की सूझबूझ से मुन्ना बन गया होनहार छात्र।

रम गया, मन लगने लगा पढ़ाई में।

अब तो समय से पूर्व ही तैयार हो जाता मुन्ना।

पढ़ाई में खूब मन लगाने लगा और शाला से आते ही होमवर्क करने बैठ जाता। माँ कहती - बेटा! पढ़ते-पढ़ते आये हो और फिर बैठ गये पढ़ने ? थोड़ा खेल लो। मुन्ना हँसकर कहता - माँ! जब मेरा होमवर्क पूरा हो जायेगा तभी खेलने में मन लगता है।

माँ देखती बेटा होमवर्क करने के बाद अपना बस्ता यथास्थान रखता है टिफिन साफ करके रखता है, यूनिफार्म भी तह करके रखता है, कहने की जरूरत ही नहीं पड़ती। परीक्षा सम्पन्न हो गई।

परीक्षा परिणाम आया कक्षा में सर्वोच्च स्थान पर था, घर में प्रशंसा-पात्र बन गया मुन्ना।

प्रथम से दूसरी, तीसरी, चौथी सर्वोत्तम अंकों से पास कर मुन्ना पहुँच गया पाँचवी क्लास में।

वीरेन्द्र में नेतृत्व क्षमता अद्भुत थी जिससे बात करता उसे अपना बना लेता। कठिन से कठिन गणित मिनटों में हल कर लेता और सरल शैली में अपने सहपाठियों को समझा देता था, अनुशासन और विनय की झलक पल-पल दिखाई देती थी।

बालसभा में वीरेन्द्र की कहानियाँ, चुटकुले और कवितायें सभी का मन मोह लेतीं, जैसे ही बोलने खड़ा होता सभी शांत होकर सुनते और तालियों से उसकी प्रशंसा करते।

बालक वीरेन्द्र

एक दिन माँ ने बेटे से कहा दादी माँ के पैर दबाया करो, तुम्हें अच्छी-अच्छी बातें सुनने को मिलेंगी। बेटे को माँ की यह बात भा गई और दादी के पैर दबाते-दबाते मेरी भावना, बारह भावना कंठस्थ हो गई थीं। माँ से बातों-बातों में धर्म शिक्षा का पहला दूसरा भाग पूरी तरह समझ में आ गया था। घर के सभी सदस्य वीरेन्द्र के सद्गुणों के कारण बहुत दुलार देते थे। पाँचवी की बोर्ड परीक्षा में भी शाला का गौरव बढ़ाया था वीरेन्द्र ने।

प्रमाण पत्र लेकर मुन्ना जैसे ही घर आया, माँ के पैर छू लिये, माँ ने माथा चूम लिया और कहने लगी - मुन्ना! पढ़ाई में तो तुम कुशल हो। मुझे टाइम नहीं मिलता, दादी की शास्त्र की आलमारी जमाना है तुम जमा देना, हम देखेंगे घर का काम तुम कितना अच्छा कर लेते हो?

मुन्ना ने कह दिया - माँ आज शाम को आलमारी जमा दूँगा। माँ ने देखा - शाम को मुन्ना के हाथ में कैंची, टेप और कवर हैं, वह समझ गईं कि मुन्ना के हर कार्य करने का तरीका अलग और व्यवस्थित होता है।

सभी ग्रन्थों में उसने कवर चढ़ाये, चिट लगाकर ग्रन्थ का नाम और क्रमांक लिखा और बड़ी विनय से सबसे ऊपर के खण्ड में विराजमान कर दिये।

नीचे के खण्ड में एक तरफ स्वाध्याय की लघु पुस्तिकायें, दूसरी तरफ पूजन पाठ की किताबें जमा दीं। बीचों-बीच रख दी रहल, पूजन के बर्तन, आरती और जाप की डिबिया।

माँ और दादी ने आकर देखा वे आलमारी देखकर अवाक् रह गईं - छोटा-सा बालक इतना व्यवस्थित काम कर दिखायेगा, उन्हें उम्मीद न थी। बड़े दुलार से पीठ थपथपा दी बालक की। माँ मन ही मन मुस्करा रही थी और कह रही थी। बेटा! जैसा तुमने ग्रन्थों को व्यवस्थित रूप दिया है वैसे ही तुम अपने जीवन को व्यस्थित रखोगे ऐसा मुझे विश्वास है।

माँ की प्रशंसा सुनकर प्रसन्न हो गया मुन्ना।

वह कभी-कभी दादी से पूछकर आलमारी से छोटी-छोटी किताबें लेकर पढ़ता और विनयपूर्वक व्यवस्थित आलमारी में रख देता। अब तो उसे

वह शास्त्र की आलमारी अपनी आलमारी लगने लगी हर हफ्ते वह सारे शास्त्र और पुस्तकें निकालकर आलमारी की सफाई करता और व्यवस्थित करता, दादी माँ भी मुन्ना के इस सुकृत्य को देखकर दुलार करती और दस पैसे उसके हाथों में रख देती। दादी के प्रोत्साहन से मुन्ना नित्य नये कार्यों को कुशलता से करने लगा। पूत के लक्षण पालने में दिखाई देते हैं – मुन्ना के नियोजित वर्तमान में उन्हें अनुकरणीय भविष्य की झाँकी दिखने लगी।

मिडिल स्कूल में प्रवेश लेने के दो माह बाद ही शिक्षक दिवस आ गया। 5 सितम्बर के कार्यक्रम का संचालन और सारी व्यवस्थाएँ वीरेन्द्र को सौंपी गईं।

वीरेन्द्र ने मित्रों की सहमति लेकर कार्यक्रम की रूपरेखा बनाई, कम खर्च में कार्यक्रम को भव्यता प्रदान करनी है, ऐसा सोचकर सर्वप्रथम लिस्ट तैयार की। उपहार सामग्री खरीदी, प्रसाद वितरण की व्यवस्था बना ली।

शिक्षक दिवस के दिन समय से पूर्व पहुँच गये, कारण कार्यक्रम का संचालन भी वीरेन्द्र को करना था। कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ।

वीरेन्द्र ने शिक्षकों को नमन कर उनके चरणों में अपनी भावना व्यक्त की–

गुरुर्ब्रह्म गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरा:।
गुरुर्साक्षात् परमब्रह्म, तस्मै श्री गुरवे नम:॥

वीरेन्द्र ने एकलव्य की गुरुभक्ति का उदाहरण दिया और कहा– माता-पिता हमें जन्म देते हैं, गुरु हमें लौकिक शिक्षा और संस्कार देकर जीवन जीना सिखाते हैं। उन गुरुओं के प्रति हमारा समर्पण होगा, तभी हम अपना विकास कर सकते हैं।

उसके पश्चात् सभी शिक्षकों को तिलक लगाकर श्रीफल और उपहार प्रदान किये।

वीरेन्द्र की प्रस्तुति में अनोखा आकर्षण था, शिक्षक वाह-वाह कह उठे तो छात्रवर्ग ने करतल ध्वनि से वीरेन्द्र की प्रस्तुति की अनुमोदना की।

शाला के सारे कार्यक्रम, चाहे 15 अगस्त हो या 26 जनवरी। बालसभा

हो या सांस्कृतिक कार्यक्रम। वीरेन्द्र की सहभागिता के बिना अधूरे लगते।

स्कूल में बच्चों को चित्रकला सिखाई जाती थी। वीरेन्द्र भी पेन्सिल से छोटे-छोटे चित्र बनाने लगे, कभी सूरज तो कभी चन्दा। कभी नदियाँ तो कभी सागर और सागर के ऊपर उड़ते पक्षी। प्रकृति में रंग भरना उन्हें बहुत अच्छा लगने लगा।

सिंघईजी ने जब उन चित्रों को देखा तो देखते ही रह गये। सोचने लगे यह छोटा-सा बाल कलाकार आगे जाकर बहुत बड़ा चित्रकार बनेगा। बड़ी प्रसन्नता से रंगबिरंगे कलर और ब्रश का डिब्बा पकड़ा दिया बेटे को।

पिताजी के इस उपहार से वीरेन्द्र की खुशी का ठिकाना न था, लग गये चित्रकारी करने। अब उनके चित्रों में सावन की हरियाली होती, सूरज की रोशनी दिखती, चिड़ियाँ चहचहातीं और चन्द्रमा की चाँदनी होती। मानव मन की तरंगें भी दिखने लगी चित्रों में।

रोज नये-नये चित्र बनाता और प्रशंसा पाता। वह चित्रकला का चितेरा चिड़ियों की भावभंगिमा पढ़ने में इतना तन्मय हो गया उसे पता ही न चला की आठवीं की परीक्षा बोर्ड है।

टाइम-टेबल आ गया था, अब क्या होगा? समय कम बचा है रख दिये रंग और ब्रश एक तरफ, लग गया अध्ययन में। थोड़े समय में पूरा कोर्स कैसे हो सकता था? जितना बना उतना पढ़ा, जितना पढ़ा उतना परीक्षा कॉपी में लिख दिया। परीक्षा परिणाम क्या होगा उसे मालूम था।

अंकसूची लेकर घर आया देखा-बड़े भैया (अन्नू)सामने खड़े हैं जिनका उसे डर था, अब क्या करें ?

भैया ने अंकसूची देखी– पास तो हो गया था पर 75% अंक मिले थे, भाई की दृष्टि में नम्बर बहुत कम थे। वे परीक्षा परिणाम से संतुष्ट नहीं थे। गुस्से में बोले – वीरेन्द्र मैं कुछ दिनों से देख रहा हूँ तुम्हारा मन पढ़ाई में नहीं लगता। चित्रकारी और मित्रों में तुम्हारी दिलचस्पी अधिक है, ऐसा रिजल्ट रहा तो भविष्य क्या होगा ?

वीरेन्द्र ने नजरें झुका लीं सोचने लगे – भैया ठीक ही तो कह रहे हैं। वास्तव में मैंने लापरवाही की है, तभी तो परीक्षा परिणाम अच्छा नहीं आया। आँखों में पश्चाताप के आँसू बह रहे थे। कक्काजी ये सब देख रहे थे।

भैया वहाँ से जा चुके थे। कक्काजी ने प्रेम से सिर पर हाथ फेर कर कहा – बेटा जो हो चुका सो हो चुका। निराश होने की आवश्यकता नहीं है। अब तुम मन लगाकर अध्ययन करना और आगामी कक्षा में कुछ कर दिखाना।

बेटे ने मन ही मन संकल्प कर लिया, मैं पढ़ाई मन लगाकर करूँगा और दूसरे शौकों को पढ़ाई के बाद ही करूँगा या कम समय दूँगा।

वीरेन्द्र ने अपनी दिनचर्या व्यवस्थित कर ली, सुबह पाँच बजे उठकर सबसे पहले ईश वन्दना जाप होती थी फिर अध्ययन। 8 से 9 बजे तक मंदिर में पूजन उसके बाद सब्जी लाना और माँ का सहयोग करना। 11 से 5 स्कूल। वहाँ से आकर अन्थऊ। शाम को टहलना, मंदिर जाना और वहाँ से आकर अध्ययन करना। कभी माँ कभी दादी के पैर दबाना।

वीरेन्द्र ने हाई स्कूल की पढ़ाई शुरू कर दी थी। एक दिन घर आने पर देखा कि – दादी को पक्षाघात हो गया है, चलना–फिरना बंद हो गया है वो अपनी दैनिक क्रियाओं के लिये पराश्रित हो गईं हैं।

घर में दादी को देखने रिश्तेदार आने लगे, माँ के ऊपर काम का बोझ बढ़ गया था, दीदी भी कितना काम करेगी? ऐसा सोचकर शौचादि क्रियाएँ करवाने लगे। एक माह नहीं, दो माह नहीं, पक्षाघात की लम्बी बीमारी में पूरे समर्पण भाव और प्रसन्नता से दादी की सेवा करने लगे। सफाई करते समय ग्लानि का भाव नहीं आता था, मानो उनके भीतर निर्विचिकित्सा अंग का अंकुरण हो चुका था, सेवा के साथ ही परिणामों की सम्हाल भी करते जाते थे।

एक दिन दादी ज्यादा अस्वस्थ थीं, वीरेन्द्र ने णमोकार मंत्र, समाधि भावना, वैराग्यभावना सुनाना प्रारम्भ किया, साथ में सम्बोधन भी दिया, धर्म आराधना के साथ वे स्वर्गवासी हो गईं। घर दादी के बिना सूना हो गया, माँ जब डाँटती थी दादी पुचकार लेती थीं, अच्छा काम करने पर प्रोत्साहन देती थीं और समय–समय पर संस्कार भी।

घर परिवार में सभी उदास थे, सभी बैठने वाले आते थे तो माँ रोने लगती थी वीरेन्द्र को यह अच्छा न लगता था, सोचते थे जिसका जन्म हुआ है उसका मरण निश्चित है, कुछ भी साथ में नहीं जाता फिर आर्त–रौद्रध्यान करने से क्या लाभ होगा? कर्म बंध ही होना है, जो हम करते आये हैं हम उसे क्यों करें ? कुछ नया और अच्छा करें, जिससे हमारे परिणाम निर्मल बनें।

रात्रि 8 से 9 बजे तक लोगों का आना–जाना रहता था सो उतने समय वीरेन्द्र बारहभावना आदि का पाठ शुरू कर देते, आने वाले भी उसमें शामिल हो जाते और एक नया पाठ, नई परम्परा सीख कर चले जाते।

नवम्बर का महीना था, बाजार में मटर नये–नये आना शुरू हुये थे वीरेन्द्र ने देखा– मटर महंगा है, पर नयी सब्जी अच्छी लगती है सो 500 ग्राम मटर लिये और पहुँच गये फल वाले के पास। फल और सब्जी वालों के साथ उनका व्यवहार अलग होता था, कभी मोलभाव नहीं करते थे। सोचते थे– पूरे दिन ठंड और गर्मी सहन करते हैं, तब कुछ पैसे कमा पाते हैं, सो अपना थैला बढ़ा देते थे और पैसा दे देते थे। मित्र ने देखा – केले वाले ने वीरेन्द्र को एक रुपये में बारह केले दिये हैं और उसे आठ केले दिये। उसने फल वाले से शिकायत की। क्यों भाई? क्या बात है? मुझे तुमने कम केले दिये हैं और वीरेन्द्र के थैले में बारह केले डाले हैं। उसने कहा – भैया, यही तो बात है। वीरेन्द्र भैया रोज आते हैं फल लेते हैं कभी मोलभाव नहीं करते, तो हमारा भी फर्ज बनता है कि हम भी इन्हें उचित मूल्य पर फल दें। विरले ही होते हैं ऐसे ग्राहक।

मित्र समझ गया विरले इंसान की इंसानियत। जिसके आचरण से एक सामान्य फल वाले ने भी संस्कार पा लिये थे। घर आकर वीरेन्द्र ने मटर के दाने निकालकर रसोई में माँ को दे दिये और अपना अध्ययन करने लगे।

माँ ने थाली लगा दी और आवाज दी, वीरेन्द्र आ गये। वह मटर देख रहे थे, कुछ सोच रहे थे। माँ ने कहा – भोजन नहीं करना क्या?

वीरेन्द्र ने कहा – क्या सारे मटर मुझे परोस दिये माँ ? अपने लिये नहीं बचाये? जरा गंजी तो दिखाओ माँ ?

वीरेन्द्र को पता था माँ अच्छी और नई चीज अपने लिये नहीं बचाती

सभी को खिला देती है वीरेन्द्र ने अपनी थाली के आधे मटर माँ की थाली में रख दिये।

माँ हँसने लगी अपने दुलारे की इस आदत पर। कितना ध्यान रखता है माँ का। माँ के सोने का, माँ के उठने का, खाने और पीने का।

बचपन से ही दान और सेवा की भावनायें उनके मन में सँवर चुकी थीं जैसे ही भिखारी को देखते घर से कंबल, कपड़े और माँ से माँगकर भोजन उसे दे देते, माँ भी बेटे की आदत से परिचित थी सो रोज बचा हुआ भोजन रख देती थी।

वीरेन्द्र सोचते कि दान देना तो हमारा कर्तव्य है पर मात्र बचा भोजन ही लोग भिखारी को क्यों देते हैं? अपने ताजे भोजन से भी देना चाहिये वही देना सार्थक होता है। वही सच्चा दान है।

एक दिन माँ भोजन बनाकर मंदिर गई थी, उसी समय भिखारी निकला वीरेन्द्र ने ताजी रोटी, सब्जी, मीठा, नमकीन निकाला और बड़े प्रेम से खिला दिया। ऐसा भोजन तो उसने अपने जीवन में पहली बार पाया था, वह भी बड़े प्रेम और सम्मान से। बड़ी संतुष्टि मिली, दुआयें देकर चला गया भिखारी।

माँ ने मंदिर से आकर जैसे ही डिब्बा खोला समझ गई अपने लाल की करतूत। वीरेन्द्र ने देखा माँ का ऊपरी गुस्सा कितना क्षणिक होता है और आन्तरिक वात्सल्य कितना स्थायी होता है, मुस्काने लगा बेटा।

माँ समझ गई दान की परिभाषा। माँ को मालूम था उनका बेटा श्रम में पीछे नहीं हटता, दान के अवसर भी नहीं छोड़ता इतना ही नहीं; नित्य देवदर्शन का लाभ भी ले लेता है। कम समय में भी सारे आवश्यक कार्य कर लेता है।

माँ ने देखा घर में भैया जी शास्त्र स्वाध्याय भी करने लगे हैं। यहाँ तक तो ठीक है पर एक दिन ठंड के दिनों में वीरेन्द्र चटाई पर सो रहे हैं। माँ ने डाँट कर कहा – मुन्ना! तूने चटाई पर सोना कब से शुरू कर दिया है, वैसे ही तू कमजोर है, सर्दी हो जायेगी फिर क्या करेगा? हँसकर टाल दिया बेटे ने।

माँ जानती थी मुन्ना जो सोच लेता है, करके रहता है मानता नहीं है सो जैसे ही बेटे की नींद लगती दो तीन चादर ओढ़ा देती, जब तक माँ बेटे को चादर न ओढ़ा देती तब तक सोती नहीं थी।

गढ़ाकोटा में गमी हो गई थी, कक्काजी ने कहा – वीरेन्द्र तुम चले

जाना गढ़ाकोटा।

वीरेन्द्र गढ़ाकोटा पहुँच गये पर वहाँ कुछ नहीं खाया पिया। सभी ने कहा तो कह दिया मैं मृत्युभोज नहीं करता। तब सभी को मालूम हुआ कि वीरेन्द्र मृत्युभोज का त्याग कर चुके हैं।

घर में खुशी का माहौल दिख रहा था, दीदी का सम्बन्ध तय हो गया है राजिम में।

सगाई करने जाना था, कक्काजी ने कहा – वीरेन्द्र! तैयारी कर लो तुम्हें भी राजिम चलना है। बड़ों की बात टालने की आदत नहीं थी, सो चले गये राजिम।

वहाँ से आकर बहिन को चिढ़ाना शुरू कर दिया, वहाँ के रिवाज ऐसे हैं, वहाँ का माहौल ऐसा है, इस प्रकार भाई बहिन ठिठोली करते। माँ ने कहा – भैया! हँसी में काम चलने वाला नहीं है, शादी के लिये तैयारी करना है समय कम है, मेरी तबियत ठीक नहीं रहती। कक्का जी भी थक जाते हैं, तुम्हें ही सारे काम देखना है।

दीदी और भैया के साथ वीरेन्द्र

सोचने लगे – माँ ठीक ही तो कह रही है शादी के कार्ड, खरीदी, जनवासे की व्यवस्था, रसोई की व्यवस्था आदि सभी तो करना है। मैं छोटा भी हूँ मेरा फर्ज बनता है।

अपने हाथ में स्कूटर लेकर और बड़े भैया से पूछकर जुट गये व्यवस्थाओं में। अपने पसंद की साड़ियाँ खरीद दीं। रिश्तेदारों के यहाँ कार्ड भेज दिये और बारातियों के रुकने से लेकर नाश्ता, चाय, भोजन की सारी तैयारी कर लीं।

एक बहिन थी, दोनों भाइयों ने भारी हँसी खुशी से व्यवस्थायें बनाईं। सभी ने उन व्यवस्थाओं की सराहना की।

धूमधाम से शादी सम्पन्न हो गई, बिदाई की बेला आ गई। मन भरा हुआ था सोच रहे थे – मेरी सारी उलझनों का समाधान करने वाली, मित्रवत व्यवहार करने वाली दीदी आज चली जायेगी। आँखों से अश्रुधारा बह रही थी दीदी के पास जाने का साहस नहीं था। बहिन से अति स्नेह था उससे बिछुड़ने की बात ही उसके कदम रोक रही थी। लोगों के समझाने पर बहिन को विदा देने पहुँचे, पैर छुये और अश्रुजल की बूँदें समर्पित कर दीं। वे अश्रुजल सद्भावना के पुष्प थे जो बहिन अपने आंचल में लेकर ससुराल जा रही थी। इतना स्नेह करते थे बहिन को कि जब भी वो माँ के यहाँ से ससुराल जाती, तीन-तीन दिन तक बहिन की यादें लेकर रोते रहते, खाना भी नहीं खाया जाता, बस! पहुँच जाते भगवान् के सामने और पूजा की इस पंक्ति को बार-बार दुहराते रहते –

''जग में जिसको निज कहता हूँ वह छोड़ मुझे चल देता है।''

जैसे इन पंक्तियों के माध्यम से भगवान् के सामने अपनी अंतर्व्यथा कह रहे हों।

बेटी के जाने से माँ भी अकेली पड़ गई है, ऊपर से शारीरिक कमजोरी। एक दिन माँ बोली – दीवाली आने वाली है मेरी हिम्मत नहीं है कैसे इतने बड़े घर की सफाई और पुताई होगी?

कह दिया बेटे ने – माँ! आपको सफाई की चिन्ता नहीं करना है, मैं अवकाश के दिन सारी पुताई करवा लूँगा।

माँ आश्वस्त हो गईं, वे जानती थीं मुन्ना की कार्यक्षमता को। छुट्टी के दिन बुला लिया मजदूरों को। घर के पुराने बैग, अटैची, कम्बल बिस्तर दे दिये गरीबों को। करुणा परोपकार की भावना जो थी।

माँ देख रही थी बेटे का सफाई करवाने का तरीका। सारे कार्यों में छने जल का प्रयोग किया था। सफाई करते समय मकड़ी आदि की विराधना न हो

इसका भी ध्यान रखा था। सारे कमरे जगमगा रहे थे।

काम पूर्ण हो चुका था, दोनों मजदूरों को भरपेट भोजन कराया, उचित मजदूरी दी। साथ में दिया बहुत सारा सामान जो उनको बहुत उपयोगी था। आज उन्हें काम करने में अनोखा सुख मिला था और मिली थी जीवदया की शिक्षा, बड़प्पन की मिठास और वीरेन्द्र भैया की करुणा। ऐसी करुणा और वात्सल्य वह भी अमीरों में? पहली बार उन्होंने देखी थी।

दीवाली भी आ गई, सुबह जल्दी उठकर लाडू चढ़ाया और महावीर पूजन की।

रात्रि में भी पूजन होना थी सो माँ के साथ तैयारियाँ करवाने लगे। माँ ने चौक पूरा, थाली में दीपक सजाये भगवान् महावीर की फोटो पाटे पर रखी और आवाज दी बेटे को, बेटा! लक्ष्मी जी की फोटो भी ले आना। बेटे ने माँ के समीप आकर कहा– हम देव-शास्त्र-गुरु के उपासक हैं। तीर्थंकर महावीर के निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य में लाडू चढ़ाते हैं और अमावस्या के दिन गोधूलि बेला में गौतम स्वामी को केवलज्ञान की प्राप्ति हुई थी सो हम केवलज्ञान लक्ष्मी की पूजन, दीपकों को प्रज्ज्वलित कर खुशी मनाते हैं। हमें भी केवलज्ञान लक्ष्मी की प्राप्ति हो ऐसी भावना भाते हैं। लक्ष्मी तो पुण्य की सहचरी है, सो देव-शास्त्र-गुरु के उपासक के पास स्वयं आ जाती है।

वीरेन्द्र एक दार्शनिक की भाँति अपने विचार व्यक्त कर रहा था और माँ मन ही मन मुस्कुराकर बेटे की बातों से सहमत हो रही थी।

माँ ने देखा – बेटे ने महावीर स्वामी की फोटो के साथ पाटे पर माँ जिनवाणी को रहल पर विराजमान किया और पूजन के समय बड़ी भक्ति भावना से सुन्दर लय में महावीराष्टक स्तोत्र का पाठ प्रारम्भ किया। कक्काजी ने दीप जलाये और आरती की।

घर के आँगन में फुलझड़ी, फटाके चल रहे थे, सभी पड़ोसी मित्र दीवाली का जश्न मना रहे थे, सभी ने वीरेन्द्र को भी फटाके चलाने का अनुरोध किया पर वीरेन्द्र ने मना कर दिया। उनको याद आ गये वे लोग, जिनकी कुटिया में आज के दिन भी अंधेरा था, चूल्हा भी न जला था, न ही घर के छप्पर पर

धुँआ दिख रहा था। हाथ में मिठाई का डिब्बा और राशन लेकर चल पड़े एक दीप जलाने, जो आशाओं का उजाला लेकर उनके मन को रोशन करने आया था।

वे सभी दीन-हीन इंतजार ही कर रहे थे भैया का। जो हर दीवाली में उनके घर राशन पानी और मीठा लेकर आते हैं और उनको खुशियाँ दे जाते हैं। आशा का दीप जलाकर सही मायने में दीवाली मनाते थे वीरेन्द्र! जो दूसरों को प्रकाशित करे, वही तो दीपावली है।

वीरेन्द्र में अभिनय क्षमता का अभ्युदय हो गया था, नाटकों की मुख्य भूमिका का निर्वहन, चेहरे के भावों में भी दिखाई देता था। दर्शक भूल जाते थे कि वे नाटक देख रहे हैं या सत्य घटना।

धीरे-धीरे वीरेन्द्र के मार्गदर्शन में नाटकों का मंचन होने लगा, उनके नाटक सामाजिक चेतना का सूत्रधार होते थे, नैतिकता का संदेश मिलता था दर्शकों को। मुंशी प्रेमचंद जैसी भावों की अभिव्यक्ति मिलती। चतुर्मुखी प्रतिभा के धनी वीरेन्द्र सभी के चहेते बन गये थे।

दसवीं की परीक्षा पास है। माँ की कराहने की आवाज सुनाई दी। तबीयत ठीक नहीं है, सो माँ को सहारा देकर लिटा दिया पलंग पर और करने लगे चौके की सफाई। सारे बर्तन साफ कर व्यवस्थित रख दिये, छना-पानी पोतनी में डालकर चूल्हा पोत दिया चौका साफ कर दिया। काम करते-करते प्रदीप के गीत गुनगुनाते जाते थे -

कभी-पिंजरे के पंछी रे, तेरा दरद न जाने कोय,

कभी-मुखड़ा देख ले प्राणी, जरा दर्पण में और कभी -

कोई लाख करे चतुराई, करम का लेख मिटे न रे भाई।

सोचने लगे - माँ का उपकार तो सात जन्म तक नहीं चुका सकता, कितनी अच्छी और सरल है मेरी माँ। स्वयं तकलीफ उठाकर बालक को सूखे बिछौने में सुलाती है। जब तक मैं घर नहीं लौटता रात्रि में माँ इन्तजार करती रहती है। बिना देखे मेरी पदचाप पहचान लेती है। ऐसी माँ को पाकर धन्य हो गया हूँ।

उधर माँ, लेटे-लेटे बेटे की सहृदयता के बारे में सोच रही है- कितना

ध्यान रखता है मेरा? बिना कहे ही चेहरे को पढ़ लेता है, मेरी शारीरिक पीड़ा और मन की अशांति को जान लेता है। तुरन्त अपनी सूझबूझ और सेवा से मुझे खुश रखने का प्रयास करता है। घर बाहर की सारी जवाबदारियाँ अकेले ही सम्हालता रहता है, चुपचाप और प्रसन्नचित्त होकर। इसके कार्य असाधारण क्षमता का परिचय देते हैं। कहीं मेरा बेटा मुझसे दूर न चला जाये। जल्दी ही अरुण की शादी के बाद बाँध दूँगी इसे भी बंधनों में।

स्कूल जाने का समय हो चुका है। चौके का काम निपटाकर माँ को बता दिया कि माँ आपको यह दवाई लेना है, स्टूल पर दूध पानी रखा है, आप पी लेना और आराम करना। पाँच बजे आकर मैं शाम का काम निपटा लूँगा। आप चिंता न करना। स्वस्थ होना जरूरी है, काम धाम तो लगे ही रहते हैं।

हाईस्कूल का परीक्षा-परिणाम देखकर अरुण भैया खुश हो गये। चन्द्रप्रकाश वीरेन्द्र के मित्र थे दोनों ने विचार किया, कुछ नया बनाना चाहिये सो दोनों मित्रों ने इलेक्ट्रॉनिक चिड़िया की रचना शुरू की। बार-बार की कोशिश से उन्हें सफलता मिल गई, बन गई चिड़िया। एक्सपेरीमेंट हो गया।

मान गये वीरेन्द्र! तुम्हारी सूझबूझ की दाद देनी पड़ेगी चन्द्रप्रकाश ने कहा। ऐसा नहीं है, साथ तो पूरा तुमने ही दिया है। वीरेन्द्र ने कहा।

चन्द्रप्रकाश बोले - वीरेन्द्र, तुम्हारे अंदर योग्यता है, पैसे की कमी नहीं है। हम दोनों भोपाल चलें, इंजीनियरिंग कालेज में दाखिला ले लें।

घर का मोह छोड़ दो तो हमारा भविष्य उज्ज्वल हो जायेगा। वीरेन्द्र ने कहा - मित्र! विचार तो तुम्हारा बहुत अच्छा है, मेरी भी भोपाल जाने की भावना है, पर पिताजी की अनुमति लेना आवश्यक है और माँ से पूछे बिना मैं क्या कह सकता हूँ ?

चन्द्रप्रकाश ने कहा - चलो, हम पूछ लेते हैं।

कक्काजी से बात करने की हिम्मत कैसे जुटायें सो चिड़िया (इलेक्ट्रॉनिक-बर्ड) दिखाने के बहाने पहुँच गये दोनों मित्र कक्काजी के पास।

कक्काजी ने दोनों बालकों की सूझबूझ की सराहना की। भूमिका बनाते हुये चन्द्रप्रकाश ने कहा - कक्का जी! मैं भोपाल में इंजीनियरिंग कॉलेज

में एडमीशन ले रहा हूँ, सोचता हूँ वीरेन्द्र भी मेरे साथ भोपाल चले। दोनों साथ में रहेंगे तो अच्छा लगेगा। वीरेन्द्र का परीक्षा परिणाम भी बहुत अच्छा रहा है। कक्काजी थोड़ी देर सोचकर बोले – चन्द्रप्रकाश! विचार तो तुम्हारा सही है पर बेटा! मेरी दो आँखें हैं, मैं उन्हें अपने से अलग नहीं कर सकता। माँ भी वीरेन्द्र के बिना कैसे रह पायेगी? आँखें नम हो गई कक्काजी की।

चन्द्रप्रकाश निरुत्तर हो गया पिता की संवेदना के सामने कुछ भी न कह सका। उसने निश्चय कर लिया था भोपाल जाने का सो मित्र से विदाई लेकर चल पड़ा अपने लक्ष्य की ओर।

वीरेन्द्र ने विश्वविद्यालय सागर में प्रवेश ले लिया। लौकिक शिक्षण के साथ वीरेन्द्र को सत् साहित्य पढ़ने का शौक था। मुंशी प्रेमचंद्र की कहानियाँ बड़े तन्मयता से पढ़ते थे, विनोबा भावे और महात्मा गाँधी के विचार उनको बहुत अच्छे लगते थे। महात्मा गाँधी की आत्मकथा कई बार पढ़ी और जाना कि गाँधी जी ने एक समीक्षक की भाँति अपनी आलोचना लिखी है अतः उन्होंने भी दैनिक डायरी लिखना शुरू कर दिया। डायरी में दिनभर के क्रियाकलापों का लेखा जोखा होता। आत्मावलोकन होता। अच्छे कार्य पर प्रसन्नता होती और गलत कार्य को सुधारने का भाव होता। विधिवत् अगले दिन के कार्यों की रूपरेखा बनाई जाती।

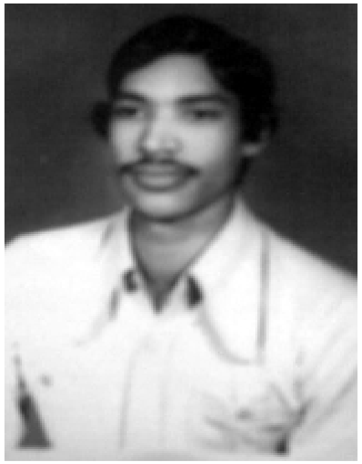

युवा वीरेन्द्र जी

परीक्षा पास में आ गई। माँ देखती है कि वीरेन्द्र अधिक रात तक जागता है करीब दस घंटे पढ़ाई करता है, मन हल्का करने के लिये बैंजो में नई-नई धुनें निकालता है। माँ भी मधुर धुनों का आनन्द लेती रहती थी। माँ ने कहा – बेटा! सो जाओ, रात बहुत बीत चुकी है, थक गये होंगे, बाँकी पढ़ाई सुबह कर लेना। वीरेन्द्र ने कहा – माँ! सुबह बहुत से काम होते हैं, सुबह का ध्यान, मंदिर में पूजन अभिषेक, सब्जी लेने जाना और आपको सहयोग करना।

माँ ने कहा – बेटा जब तक परीक्षा है, तब तक मंदिर व पूजन में कम समय लगाया करो, तुम्हें मंदिर में दो घंटे लगते हैं।

वीरेन्द्र ने कहा – मैं मंदिर के समय में कटौती नहीं कर सकता क्योंकि मंदिर से ही मुझे ऐसी ऊर्जा मिलती है जो प्रश्न पत्र के हल करने में निरन्तरता बनाये रखती है। जब तक समय रहता है, सही हल लिखता चला जाता हूँ।

देव-शास्त्र-गुरु के प्रति बेटे की लगन देखकर माँ प्रसन्न हो गई। उसने देखा बेटा अपने एक-एक पल का सदुपयोग करता है या यूँ कहें एक समय में दो कार्य एक साथ करने की क्षमता रखता है और समय की गति के साथ-साथ अनवरत चलता है।

मंदिर में आज चहल-पहल है। पता चला क्षुल्लक सन्मतिसागरजी महाराज पधारे हैं। पहुँच गये गुरु चरणों में। महाराजजी से रोज तत्त्व-चर्चा होती। वीरेन्द्र को अपनी जिज्ञासाओं का समाधान मिलता।

पंचपरावर्तन का स्वरूप सुनकर चिन्तन करने लगे। जीवन अमूल्य है, मानव जीवन पाकर यदि आत्महित नहीं किया तो मनुष्य भव पाने का क्या फायदा हुआ ? आत्महित मुनि मुद्रा से ही हो सकेगा। हे भगवान्! मैं भी कभी यथाजात मुद्रा को धारण कर पाऊँगा?

अगले दिन आहार देने की भावना थी, सो उस चौके में गये, जहाँ महाराजजी का पड़गाहन हुआ था। बहुत सारे लोग आहार देने खड़े थे। एक सज्जन ने वीरेन्द्र से पूछा – तुम्हारा सप्तव्यसन का त्याग है? वीरेन्द्र ने धीरे से उत्तर दिया – जिस दिन आप मुनि बनकर आहार लोगे, उस दिन मैं आपको बता दूँगा कि मेरा किस-किस चीज का त्याग है। वे सज्जन निरुत्तर हो गये।

उनको अपनी भूल का अनुभव हो गया कि जो प्रश्न साधु को करना चाहिये, वह एक श्रावक क्यों कर बैठा?

आहार के पश्चात् वीरेन्द्र पहुँच गये महाराज के साथ मंदिर। महाराज जी से चर्चा हुई। वे बहुत प्रभावित हुये वीरेन्द्र की योग्यता से। बोले – वीरेन्द्र! तुम्हारे पास ज्ञान बहुत है, उस ज्ञान को सभी में बाँटो, ज्ञानदान सभी दानों में श्रेष्ठ है। पाठशाला के माध्यम से तुम बच्चों को नैतिक संस्कार दे सकते हो।

वीरेन्द्र ने कहा – महाराजजी, हमें आता कुछ नहीं है आपका आशीर्वाद है तो मैं पाठशाला चलाने तैयार हूँ।

वीरेन्द्र ने पाठशाला की रूपरेखा बना ली। अगले दिन पाठशाला आरम्भ हो गई। वीरेन्द्र भैया की पढ़ाई का ढंग निराला था। आवाज में ऐसा आकर्षण था कि पढ़ने वालों की संख्या बढ़ने लगी। बहिनें, मातायें और वृद्ध भी आने लगे सीखने। कभी गीत भी सुनने मिलते और कभी कहानियों के माध्यम से नये शिक्षाप्रद संकेत मिलते। जिनागम के सूत्र भी कंठस्थ कर वीरेन्द्र भैया को सुनाते। अपने भैया की स्नेहमयी वाणी को सुनने और जीवन के सूत्रों को सीखने की लालसा लिये सभी समय से पहले ही आ जाते थे।

संख्या बढ़ने पर पढ़ने वालों की उम्र और योग्यता के आधार पर कक्षाओं का विभाजन कर दिया गया। समाज के शिक्षित भाई बहिनों को एक-एक विषय पढ़ाने हेतु नियुक्त कर दिया। जिनमें ब्र. संतोष भैया एवं बहिन मंजू ने भी सहयोग किया। वीरेन्द्र को बच्चों को पढ़ाना बहुत अच्छा लगता था उनका मानना था कि बच्चों की सहजता और सरलता से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं।

वीरेन्द्र ने एक साथ कई मंदिरों में अलग-अलग पाठशालायें प्रारम्भ की थी, जिसमें सभी लोग स्वेच्छा से अपना समय देते थे। पढ़ाने का काम अवैतनिक था।

एक भाई जो पाठशाला की एक कक्षा पढ़ाते थे उनकी कक्षा में बहुत शोरगुल होता था बच्चे उनकी बात मानते ही न थे। उनको बहुत मेहनत करना पड़ती थी।

घर में आवश्यक काम आने से वे एक दिन नहीं आये वीरेन्द्र भैया ने उस क्लास के बच्चों को अपनी कक्षा में बुला लिया और पढ़ाने लगे। उन्होंने देखा बच्चे बड़ी शांति से अध्ययन कर रहे हैं। आश्चर्यचकित हो भैया ने पूछा – बच्चो! आज तो आप लोग बड़ी शांति से पढ़ाई कर रहे हैं, जबकि अपनी कक्षा में तुम लोग शांत नहीं रहते? अपने शिक्षक की बात नहीं मानते? क्या कारण है? एक बालक ने उठकर जवाब दिया – हम नहीं मानते उनकी बात, वे रात में पाठशाला आने से पहले होटल में नमकीन व मीठा खाते हैं।

वीरेन्द्र भैया ने बच्चों को अनुशासन और विनय की शिक्षा दी।

एक दिन बिजली ने आँख मिचौली कर दी। बच्चों ने अंधेरे का खूब फायदा उठाया। एक दो बालकों ने शरारतों से परेशान कर दिया तब उस दिन वीरेन्द्र ने कुछ न कहा। अगले दिन जैसे ही पाठशाला प्रारम्भ हुई, वीरेन्द्र ने पूछा? सच बताना कल किसने पाठशाला में शरारत की थी? आज पढ़ाई तब चालू होगी जब मुझे सच्चाई का पता चल जायेगा।

कक्षा में सन्नाटा छा गया। सभी बच्चे एक दूसरे का मुँह देख रहे थे तभी दो बालक उठे और कहने लगे, भैया जी हमने की थी। वीरेन्द्र ने उनको अपने पास बुलाया। अब हमें सजा मिलेगी – ऐसा सोचकर डरते-डरते भैया के पास गये। भैया ने उन्हें सजा के बदले सत्य बोलने के लिये शाबासी दी। पीठ थपथपा दी और पुरस्कार भी दिया फिर बोले – शाबास आज तुम लोगों ने सत्य बोलने का साहस किया। बच्चो! दण्ड के भय से झूठ का सहारा कभी नहीं लेना, हमेशा सच का सम्मान करना चाहिये। उस दिन वीरेन्द्र भैया की बात से प्रभावित हो सभी बच्चों ने सत्य बोलने का नियम ले लिया।

गर्मी की छुट्टियाँ आ गईं। दीदी अपने बच्चों के साथ गर्मी बिताने सागर आ गई। उनका बड़ा बेटा राजेश पाँच वर्ष का हो गया था, उससे वीरेन्द्र को बहुत लगाव था तभी तो हर वर्ष जन्म दिन पर मामा, राजेश को शुभकामना के साथ एक सौ रुपये का मनीआर्डर भी भेजते थे। जन्मदिन के दो दिन पूर्व ही राजेश मामा के बधाई पत्र का इंतजार करने लगता था। उसे मालूम था मामा उसका जन्मदिन कभी नहीं भूलते।

वीरेन्द्र ने एक दिन दीदी से कहा– मैं राजेश का एडमीशन सागर में करवाना चाहता हूँ, यहाँ वह लौकिक शिक्षण के साथ संस्कार भी प्राप्त करेगा।

दीदी ने कहा – मुझे कोई ऐतराज नहीं है। मुझे मालूम है कि राजेश की देखभाल तुम मुझसे बेहतर करोगे। उसके जन्म के समय मैं अस्वस्थ थी, तब तुम्हीं ने एक माँ की भाँति उसका ध्यान रखा था। कभी ग्लानि नहीं की। राजेश भी तुम्हें बहुत चाहता है। पर एक बात है, घर की सारी जवाबदारी तुम्हारे ऊपर है। माँ को भी सहयोग करना होता है। राजेश को भी समय देना पड़ेगा फिर तुम अपनी पढ़ाई कैसे करोगे ?

वीरेन्द्र ने कहा – आप चिन्ता मत करो, सब हो जायेगा।

वीरेन्द्र कभी अपनी परवाह नहीं करते थे, बस दूसरों का भला हो यही सोचते थे। मेरे माध्यम से सभी को लाभ मिले, मौकों की तलाश करते रहते थे। दीदी की स्वीकृति मिल गई। राजेश का एडमीशन करा दिया।

राजेश को सुबह अपने साथ उठा लेते, णमोकर मंत्र का पाठ करवा कर पढ़ने बिठा देते और स्वयं अध्ययन करने बैठ जाते। उसके नास्ता, भोजन की चिन्ता वीरेन्द्र को रहती थी। फिर हाथ में बस्ता थमा कर स्कूल छोड़ आते। राजेश को मामा के साथ रहने में बहुत अच्छा लगता था। सोने से पहले कहानियाँ सुनने मिलती और अच्छे भजन। राजेश के साथ बतियाने में वीरेन्द्र का बचपन लौट आता था। राजेश को कभी माँ की याद नहीं आई। ममता देने वाले मामाजी जो साथ में हैं।

राजेश शाम को वीरेन्द्र के आने का इंतजार करता। मामा के मित्रों के साथ चकराघाट में नौका विहार करना उसे अच्छा लगता था। उनके क्रिया कलाप बड़े ध्यान से देखा करता। वीरेन्द्र तालाब के किनारे बैठे, लहरों की उथल पुथल देखते। डूबते सूरज की किरणें, तालाब की लहरों पर अठखेलियाँ करती बड़ी भली लगती थीं। प्रकृति के इन्द्रधनुषी रंगों को कैमरे में उतार लेते, सोचने लगते– भोर का सूरज यौवन की दहलीज पारकर अस्ताचल की ओर जाने वाला है, ऐसा ही तो हमारा जीवन है। बचपन खेलकूद मे बीत जाता है,

युवावस्था विषय भोग में बीत जाती है और बुढ़ापा पराश्रय में बीतता है, मानव जीवन यूँ ही चला जाता है। जीवन में कुछ ऐसा करें, जिससे नर तन का सदुपयोग हो जाये।

घर आने पर कक्काजी ने आदेश दिया वीरेन्द्र तुम्हें अरुण के सम्बन्ध के लिये लड़की देखने जाना है। वे मना कर नहीं सकते थे, सो मन न होते हुये सभी के साथ चले गये। सम्बन्ध तय हो गया शादी के सारे काम माँ और कक्काजी कैसे कर पायेंगे? मैं घर में सबसे छोटा हूँ तो काम तो करना ही है। भाभी के आने से घर में रौनक आ जायेगी, माँ की जवाबदारियाँ बँट जायेंगी। मैं भी निश्चिन्त हो जाऊँगा। मन के उत्साह ने कवि मन को लेखनी प्रदान कर दी।

तब एक–एक शब्द निर्झर की भाँति हृदय से निकल पड़ा। भाभी के अभिनंदन के लिये, गृहलक्ष्मी के स्वागत के लिये। देवर ने अनुराग की कलम से लिखा था–**सरिता तुम सागर से मिलने, बूंद बनी और निकल पड़ी।**

अभिनंदन पत्र की प्रस्तुति और भावों की खूब सराहना हुई तभी वीरेन्द्र ने शोरगुल सुना – सभी लोग बारी–बारी से एक व्यक्ति को डाँट रहे थे, जिसने चालीस लीटर दूध की व्यवस्था की थी पर वह दूध फट गया था उसकी कोई गलती न थी फिर भी चुपचाप सबकी डाँट सुन रहा था वीरेन्द्र को उसके ऊपर बहुत करुणा आई, पास आकर उन्होंने सभी को समझाया – एक व्यक्ति को दोषी मत ठहराओ, जो हो चुका उसे जाने दो, दूध की व्यवस्था पुनः बना लो। वीरेन्द्र के सुझाव से माहौल शांत हो गया। उस व्यक्ति को बड़ी राहत मिली उसने मन ही मन दूल्हे के भाई को बहुत–बहुत धन्यवाद दिया। धूमधाम के साथ शादी सम्पन्न हो गई।

घर में नवीन लक्ष्मी आ गई। सभी के पैर छुये। देवर के पैर छूने ज्योंहि भाभी आगे बढ़ीं, मना कर दिया वीरेन्द्र ने। वे भाभी में ममतामयी माँ की कल्पना कर रहे थे।

किसी भी देवर और भाभी के मध्य अनावश्यक हँसी मजाक वीरेन्द्र को पसन्द न थी। आने वाले मेहमान, जाते समय भाभी को पैसा देकर जाते तो वीरेन्द्र को चिढ़ाने का मौका मिल जाता – कह देते भाभी आप तो इस घर के

बाल बच्चों में शामिल हो, तभी तो सभी लोग पैसा देते हैं।

भाभी हँसकर जवाब देती – भैया – बस कुछ दिन की ही बात है, फिर तो हमारी देवरानी भी बाल बच्चों में शामिल हो जायेगी।

देवर भाभी की हल्की नोंक–झोंक माँ की प्रसन्नता का कारण बन जाती थी। भाभी सीधी और सरल हैं, माँ का सहयोग करती हैं, यह देखकर वीरेन्द्र माँ की ओर से निश्चिन्त हो गये। एम. टेक. करना है, मेहनत करनी होगी। उत्साह से जुट गये अध्ययन में।

मित्रों ने कहा – बहुत अच्छी फिल्म लगी है। वीरेन्द्र पहुँच गये मित्रों के साथ। टिकिट लेने के लिये कतार में लगना पड़ा। आगे चन्द्रप्रकाश थे, पीछे कुछ दूरी पर वीरेन्द्र और अन्य मित्र थे। टिकिट के चक्कर में चन्द्रप्रकाश से किसी की बहस हो गई। वीरेन्द्र के कानों में आवाज आई, बोले – चन्द्रप्रकाश क्या बात है? मैं आऊँ क्या ?

चन्द्रप्रकाश वीरेन्द्र के स्वभाव से परिचित थे। उनको मालूम था कि वीरेन्द्र स्वाभिमानी है, गलत बात को स्वीकार नहीं करता। सच बताने में झगड़ा बढ़ जायेगा सो कह दिया – कोई बात नहीं है, हमें टिकिट मिल गई है।

फिल्म की कथावस्तु, निर्देशन और प्रस्तुति की चर्चा करते–करते जयपुर जाने का प्रोग्राम बन गया। कक्काजी से अनुमति लेकर पहुँच गये गुलाबी नगर। सभी दर्शनीय स्थलों को देखने के बाद लगा, भाभी और राजेश के लिए कुछ ले जाना चाहिये। राजेश को कपड़े ले लिये और भाभी को सुन्दर साड़ी।

उपहार का बड़ा महत्त्व होता है। उपहार में जुड़ी होती है देने वाले की भावना। भाभी को साड़ी बहुत पसन्द आई।

मित्र जानते थे वीरेन्द्र कलम चला सकता है पर कुदाली नहीं चला सकता पर उनका यह भ्रम दूर हो गया जब शाहगढ़ में एन.एस.एस. केम्प में वीरेन्द्र की कर्मठता देखने का मौका मिला।

वीरेन्द्र के नेत्तृत्व में शाहगढ़ में देश सेवा और समाज सेवा करने का मौका मिला, सभी ने देखा वीरेन्द्र अपने हाथों में कुदाली फावड़ा लिये श्रमदान

कर रहा है, माथे से पसीने की बूँदें गिर रही हैं, वे जल कण भारत माँ के चरणों का प्रक्षालन कर रहे थे। मित्रों ने हाथ पकड़ लिये वीरेन्द्र के।

वीरेन्द्र की कार सेवा से सहपाठियों में जोश और उत्साह जागा सभी जुट गये राष्ट्रसेवा में! समाज सेवा में!

शाहगढ़ तो शाहगढ़। आसपास के नगरों और गाँवों में एन.एस.एस. की उपलब्धियों की चर्चा बहुत दिनों तक चली उस चर्चा के नायक थे वीरेन्द्र।

फागुन मास आया, देखा सड़कों पर युवकों की टोलियाँ रंगबिरंगी पिचकारियाँ लिये गुलाल और अवीर उड़ा रही हैं। राजेश को खरीद दी सुन्दर पिचकारी रंग। उसी समय भाभी मंदिर जा रहीं थीं सो विनोद में पिचकारी चला दी भाभी के ऊपर। देवर के रंगों का प्रभाव भाभी के हृदय को रोमांचित कर गया। उस रंग में छिपा था देवर का निच्छल प्रेम। वह प्रेम जो लक्ष्मण के मन में सीता के प्रति था। देवर भाभी की वह होली यादगार होली बन गई।

कॉलेज से आने पर पता चला तरुण, सुन्दर, बालयति साधक आचार्य महाराज अपने, छोटे–छोटे शिष्यों के साथ बुन्देलखण्ड में प्रवेश करने वाले हैं। उनका नाम आचार्य विद्यासागर है। आचार्य ज्ञानसागर उनके गुरु हैं। कर्नाटक के सदलगा ग्राम ने उन्हें जन्म देने का सौभाग्य पाया है। अपने गुरु की समाधि उन्हीं के निर्यापकत्व में सम्पन्न हुई है। इन साधकों की चर्चाओं से पूरा बुंदेलखण्ड गूँज उठा। गली हो या चौराहा, मंदिर हो या सभागृह। जहाँ देखो वहाँ इस अनोखे संघ की चर्चा जन–जन को रोमांचित कर रही थी। सभी ऐसे मुनियों के दर्शन करना चाहते थे।

सागर भला उस पुण्यकथा से कैसे वंचित रहता? क्योंकि बुन्देलखण्ड का हर समाचार सागर के (आज तक) के प्रसारण का मुख्य अंश होता। वीरेन्द्र उस संघ की चर्चा से इतने प्रभावित थे कि कब मौका मिले और इन अनूठे साधकों के दर्शन हों।

कक्काजी ने बताया – आचार्यश्री सतना, कटनी होते हुये कुम्हारी के रास्ते से कुण्डलपुर पहुँचने वाले हैं। जहाँ से आचार्य श्री निकलते, धन्य हो जाती वह भूमि। श्रमणों की चरण रज से पतझड़ में भी बसंत महकने लगता।

चारों ओर से लोग बाल ब्रह्मचारी संघ के दर्शन करने कुण्डलपुर पहुँचने लगे। मेला लग गया बड़े बाबा के दरबार में। लगता था मानो भगवान् महावीर का समवसरण ही कुण्डलपुर आ गया है।

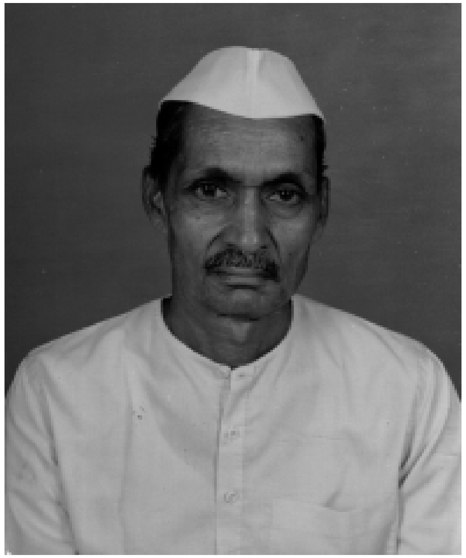

सिंघई श्री जीवनकुमारजी : वीरेन्द्र के पिताजी

सागर वासियों ने एक समिति का गठन किया। उसके अध्यक्ष जीवन सिंघई बनाये गये। सभी पहुँच गये कुण्डलपुर। सिंघई जी के मन में मुनियों को आहार देने की भावना थी, भावना से भगवान् मिलते हैं, सिंघईजी ने आम खरीद लिये। श्रुतपंचमी के पावन पर्व पर आचार्यश्री का पड़गाहन किया। नवधाभक्ति पूर्वक रोटी, आम रस और चावल के आहार कराये। जल्दी में इतनी ही व्यवस्था हो पाई थी। आचार्यश्री की आहारचर्या देखकर लगा, साधकों को बस साधना के लिये निर्दोष आहार की आवश्यकता होती है, विभिन्न व्यञ्जनों से उन्हें क्या प्रयोजन?

आहारोपरान्त सभी ने आचार्यश्री से सागर आने हेतु निवेदन किया। आचार्यश्री ने हँसकर कह दिया देख लेंगे। आशीर्वाद लेकर सागर के सभी लोग लौट आये सागर। पिताजी से आचार्यश्री के संघ की चर्चा सुनकर विभोर हो गये वीरेन्द्र। अंजुली बाँध मन ही मन नमोऽस्तु कर लिया श्री चरणों में। कब

रविवार आये और मैं कुण्डलपुर जाकर आचार्यश्री के दर्शन करूँ। रविवार की प्रतीक्षा करने लगे।

एक दिन कुण्डलपुर पहुँचे। आचार्य श्री सामायिक पर बैठ चुके थे। अंदर जाना मना था। मन उतावला हो रहा था दर्शन करने को, सो खिड़की से झाँककर देखा। देखते ही रह गये, अपलक निहार रहे थे वीतराग मुद्रा को। दिगम्बर देह की आभा कितनी आकर्षक है। ध्यान की मुद्रा में ऐसे लग रहे हैं जैसे तीर्थंकर की प्रतिमा हो।

कितने भाग्यशाली हैं इनके माता-पिता?

कितने अच्छे होंगे इनके गुरु?

युवावस्था में इतनी प्रगाढ़ साधना?

सैंकड़ों प्रश्न उत्तर पाने मचल रहे थे मानस पर। सोचने लगे जब तक इनकी सामायिक होती है, तब तक बड़े बाबा के दर्शन करके लौट आऊँगा। गर्भगृह में बड़े बाबा के दर्शन कर बड़ी शांति मिली। कितना साम्य है बड़े बाबा की प्रतिमा और आचार्यश्री में। लगता है बड़े बाबा जैसा बनने, उन जैसा सुख पाने श्रमण वेश धारण किया है। बड़े बाबा की भक्ति-अर्चना कर पुनः आ गये वहाँ जहाँ आचार्य श्री विराजमान थे।

देखा अभी भी भीड़ बहुत है सो दूर से ही नमोऽस्तु कर आशीर्वाद पा लिया। अब ऐसे मौके पर आऊँगा जब दर्शन के साथ परिचय भी हो, बातचीत करने का समय मिले।

श्री वीरेन्द्र जी जब मुनि क्षमासागरजी हो गये, तब उन्होंने अपनी कृति आत्मान्वेषी में वह अनुभव इस तरह व्यक्त किया-

''उन्हें पहली बार देखा था, छोटे से कमरे में वे बैठे थे, इतना बड़ा व्यक्तित्व इतने छोटे से कमरे में समा गया, इस बात ने मुझे चकित ही किया। उनके ठीक पीछे खुली हुई एक बड़ी खिड़की और उससे झाँकता आकाश। उस दिन पहली बार बहुत अच्छा लगा। खिड़की से आती रोशनी और उनकी निरावरत देह से निरंतर झरती प्रभा ने अनायास एक ऐसा आभामण्डल बना दिया था जो उनके मुख पर बिखरी मुस्कान की तरह सहज प्रभावक था।

क्षण भर के लिये मैं उस वीतराग देह के आकर्षण में खो गया और बाहर ही ठिठका रह गया। थोड़ी देर बाद लगा कि भीतर जाना चाहिये। देखना तो भीतर से ही संभव है बाहर से पूरा देखना नहीं हो पाता, पर भीतर पहुँचना आसान नहीं था। यह सोचकर कि कभी संभव हुआ तो एकाकी होकर आऊँगा। मैं वापस लौट आया। कह तो यही रहा हूँ कि उस दिन वापस लौट आया, अब तो यही चाहता हूँ कि जीवन भर उन श्री चरणों में बना रहूँ। वहाँ से कभी अलग न होऊँ। मुझे पहली बार उनके दर्शन करके वीतरागता के जीवन्त सौन्दर्य का अहसास हुआ, फिर तो मंदिर में विराजे श्री भगवान् भी जीवित लगने लगे, यही मेरे प्रथम दर्शन की उपलब्धि है।''

आचार्य श्री के दर्शन मात्र से वीरेन्द्र में काफी बदलाव आ गया। रहते सागर में थे, पर मन में तो आचार्य श्री की मूरत बस गई थी। पढ़ते-लिखते, सोते-उठते, खाते-पीते देखते रहते थे आचार्यश्री की हँसमुख छवि।

रात्रि में सोने के पूर्व पुनः चिन्तन में पड़ गये - रत्नगर्भा कही जाने वाली वसुन्धरा में, विद्यालय के अध्ययन के समय बहुत कुछ देखने मिला है। धरती के गर्भ में अनेक अनगढ़ पाषाण खण्ड पड़े हैं क्या वे किसी शिल्पी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। सच यदि समय पर शिल्पी मिल जाये तो उनमें मूल्यवान आकृति तराशी जा सकती है।

चिन्तन आगे बढ़ा - मैं भी तो अनगढ़ पाषाण हूँ। मुझे भी शिल्पी की प्रतीक्षा है। फिर मुस्काये बुदबुदाये - मुझे शिल्पी मिल गया जो बड़े बाबा के समीप बैठा है।

कुण्डलपुर से आने के बाद बेटा गुमसुम रहने लगा है। माँ समझ गई थी बेटे के अंदर आये परिवर्तन को। भोजन करवाते समय माँ ने कहा - वीरेन्द्र तुम चाचा बनने वाले हो।

वीरेन्द्र के चेहरे पर कोई प्रतिक्रिया न हुई, बेटे ने कुछ न कहा। माँ स्तब्ध रह गई। घर गृहस्थी की चर्चा बेटे को रास नहीं आती, मन कहता है, बेटे को आँचल से बाँध लूँ। वाह री नियति! जितना मैं बेटे के करीब जाती हूँ। लगता है, वह उतना ही मुझसे दूर होता जाता है। वीरेन्द्र के पैरों में जल्दी ही घर-संसार की बेड़ी डाल दूँगी। देखती हूँ कितने दूर जायेगा लाड़ला माँ से।

एक दिन सिंघईजी से आशादेवी ने कहा - अब आप वीरेन्द्र के बारे में सोचिये, उसकी उदासीन वृत्ति देखकर मुझे डर लगने लगा है। सिंघईजी ने जवाब दिया - तुम ठीक कहती हो मैं भी यही सोच रहा हूँ। उसकी पढ़ाई पूरी हो जाये। बेटा होनहार है, हम क्यों बाधक बने उसके अध्ययन में। आशादेवी ने कहा - पढ़ाई होती रहेगी। आप तो योग्य लड़की की खोज शुरू कर दीजिये। निगाह में सम्बन्ध रहेगा तो अच्छा रहेगा।

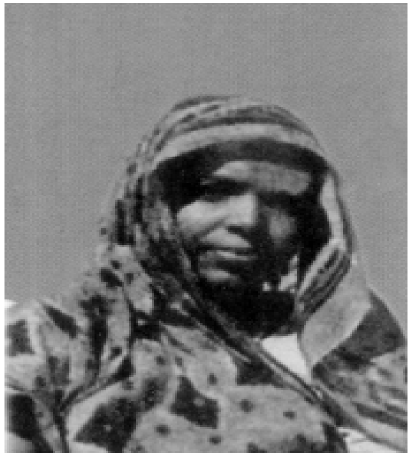

वीरेन्द्र की माँ

सिंघईजी को आशा देवी की सलाह अच्छी लगी। कहने लगे - मैं ध्यान रखूँगा, दो चार लोगों ने कुण्डली भी माँगी है, चर्चा कर लूँगा।

आपसी बातचीत से संतुष्ट हो गई माँ। फिर खो गई कल्पना में कैसी होगी छोटी बहू? कैसी धूमधाम से होगी शादी ?

कॉलेज से टूर जाना था। वीरेन्द्र को डिपार्टमेन्ट से ओंकारेश्वर जाने का मौका मिला। वहाँ पहुँचकर मित्रों के साथ नौका विहार का आनंद लिया साथ में मिला तीर्थ-वंदना का लाभ। सिद्धवरकूट की वंदना खूब भक्ति भावना से की।

भोजन करते समय भोजनशाला की अशुद्धियाँ देखकर निर्णय ले लिया मैं अशुद्ध भोजन नहीं करूँगा जो माँ ने नाश्ता रखा है, उसी में काम चला लूँगा, साथ में फलों का उपयोग कर लूँगा, किसी से कुछ बताऊँगा नहीं।

शानू आफताब अली इनके घनिष्ट मित्र थे उन्हें पता लग गया कि वीरेन्द्र मेस में खाना नहीं खाते, वे चिन्तित हो गये, सोचने लगे फल और नाश्ते मैं कैसे काम चलेगा? वीरेन्द्र से उसको बहुत लगाव था सो वीरेन्द्र के साथ जहाँ भी जाते मित्र के भोजन व्यवस्था बनने बहुत दूर-दूर जाकर पता लगाते, जैन परिवार कहाँ रहते हैं? जैन परिवार वालों से अनुरोध करते, वीरेन्द्र की भोजन व्यवस्था बनाने के लिये और साथ में ले जाकर मित्र के नियम में सहभागी बनते।

साम्प्रदायिक सद्भाव का पाठ उसे वीरेन्द्र से ही सीखने मिला था वरना कहाँ वह .... और कहाँ वीरेन्द्र! फिर भी दोनों अंतरंग सखा थे।

मित्रों के साथ रहते हुये भी मन आचार्यश्री में खोया रहता था। एक बार वीरेन्द्र ने कुण्डलपुर पहुँचकर देखा- आज आचार्यश्री कक्ष में अकेले हैं। अच्छा अवसर है, ऐसा सोचकर विनय पूर्वक कक्ष में प्रवेश किया। आचार्य श्री के चरणों में नमन किया, आशीर्वाद पाने के बाद सोचा - कैसे बात शुरू की जाये। फिर बोले - आचार्य श्री! मैं विज्ञान का विद्यार्थी हूँ।

तुम विज्ञान के विद्यार्थी हो, मैं वीतराग विज्ञान का अध्ययन कर रहा हूँ। बोलो क्या चाहते हो?

आचार्य श्री के प्रश्न का उत्तर न सूझ रहा था, सोचने लगे मैं समझता था ये व्रत नियम लेने की बात करेंगे पर ये तो पूछ रहे हैं क्या चाहते हो? मैं क्या माँगू? क्या उत्तर दूँ इन्हें?

वीरेन्द्र ने संकेत में उत्तर दिया - आचार्यश्री आप इस पात्र को जो देना चाहते हो, वही दे दीजिये। मेरे पास झोली नहीं है।

वीरेन्द्र के उत्तर से, भाषा शैली और विनय से, आचार्य श्री को उनकी योग्यता का अनुभव हो गया। यह बालक होनहार है, समझ गये अनुभवी शिल्पी। स्नेहपूर्वक अधरों पर मुस्कान लाकर बोले। वे क्या बोले, प्रभु जाने। वीरेन्द्र जी ने क्या कहा? प्रभु जाने! इस लेखनी को लगा कि कुछ वार्ताएँ बिना शब्द के भी होती हैं। यदि उन्हें शब्द दें तो शायद वे इस तरह ही लिखी जावेंगी -मैं निर्ग्रन्थ श्रमण हूँ। तुम अध्यात्म और श्रमण वर्णमाला के अक्षर सीखना

चाहते हो, तो मैं सिखा सकता हूँ। वह ज्ञान रिश्तों की भीड़ से दूर, संसार के मायाजाल से अलग होने का संदेश देता है। मेरे पथ के पथिक बनना चाहते हो?

वीरेन्द्र ने कह दिया हाँ गुरुदेव! मैं आपके पथ का पथिक बनना चाहता हूँ। मौन समाप्त हुआ तो गुरुदेव के शब्द कानों में आये अभी घर जाओ अध्ययन मन लगाकर करो।

आचार्य श्री की मौन-वार्ता मस्तिष्क में गूँज रही थी एक-एक शब्द रहस्यमय था। काश मुझे इनकी शरण मिल जाये?

कितनी सरलता है इनकी वाणी में ?

कितना ओज है इनके शब्दों में ?

बिल्कुल भगवान् से लगते हैं। इन्हीं को तो मैं खोज रहा था। चिर परिचित लगते हैं। आँखें ऐसी लगती हैं, जैसे सरल-जीवन जीने की चाह रखने वालों को अभय प्रदान कर रही हों।

धन्य हो जायेगा मेरा जीवन।

चिन्तन के अथाह सागर में डुबकी लगाने लगे वीरेन्द्र। पता ही न चला, दिवाकर अस्ताचल की ओर पहुँच रहा है। कहने को तो शाम का अँधेरा हो चुका था पर वीरेन्द्र के मानस को एक दिवाकर प्रकाशित कर चुका था।

कंधे पर किसी का स्पर्श पाकर वीरेन्द्र की तंद्रा टूटी। देखा कक्काजी खड़े हैं - चलो वीरेन्द्र! बहुत देर हो गई है, हमें घर चलना है।

वीरेन्द्र के मन में आया कह दें , आप जाइये कक्काजी। पर आज्ञाकारी पुत्र कुछ न कह पाया। सोचने लगा - आप जो कह रहे हैं अब मुझे वही तो करना है आप कहते हैं घर चलो, बहुत देर हो गई है। मैं भी महसूस कर रहा हूँ बहुत देर हो गई है। मुझे अपने घर जाना है। अपना घर, अपने ही अंदर है जो!

मुझे अनूठी शरण मिल गई है, ऐसा सोचकर और आचार्यश्री की चरण रज लेकर पिता की आज्ञा पालन की।

सिद्धक्षेत्र सोनागिरजी में आचार्य विमलसागरजी ससंघ विराजमान थे। ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान्। कक्काजी से अनुमति लेकर पहुँच गये सोनागिर

जी। सभी मंदिरों की वंदना की, भाव सहित पूजा अर्चना की।

आचार्य विमलसागरजी से आशीर्वाद मिला। चर्चा की। बहुत सारे प्रश्नों के समाधान मिले। घर आकर कक्काजी से श्रमण चर्या की चर्चा की। पिता पुत्र करने लगे, आचार्यश्री की श्रेष्ठ चर्या पर विचार। माँ भी सुन रही थी वार्ता और मन ही मन पुत्र की बुद्धिमत्ता पर गर्व कर रही थी।

परीक्षा पास में है। मेहनत अधिक करना पड़ेगी, ऐसा सोचकर वीरेन्द्र ने अपना दैनिक चक्र परिवर्तन कर दिया, नींद के समय में कटौती कर ली। उनका मानना था - प्रमाद हमारे विकास में बाधक है, हमें प्रमाद छोड़ना है।

माँ ने देखा, वीरेन्द्र का व्यवहार पहले जैसा नहीं है वह घर के कार्यों में पहले जैसी सहभागिता नहीं रखता। तीर्थवंदना और साधु समागम की भावना बनी रहती है। बहाना ढूँढ़ता रहता है कुण्डलपुर जाने का। जब वीरेन्द्र एम.टेक. (फाइनल) में थे तब मोराजी में पण्डित पन्नालालजी अध्यापक थे। ज्ञान के भण्डार थे। बहुत दूर-दूर से ज्ञान पिपासु उनसे ज्ञान प्राप्त करने आते थे। वीरेन्द्र भी समय निकालकर पण्डितजी से जैनधर्म पढ़ते रहते थे। जहाँ वीरेन्द्र के मन में पण्डितजी के प्रति समर्पण था वहीं पण्डितजी का वरद-हस्त वीरेन्द्र के ऊपर रहता था। मोराजी में अनेक धार्मिक, सांस्कृतिक कार्यक्रम होते थे, संचालन संयोजन का कार्य वीरेन्द्र के ऊपर रहता था। पण्डितजी जानते थे - वीरेन्द्र के संचालन से कार्यक्रम में भव्यता आती है।

प्रतिवर्ष वर्णीजी की जयन्ती मोराजी में मनाई जाती थी। वीरेन्द्र वर्णीजी को अपना आदर्श मानते थे। उनका कहना था यदि हम विकास करना चाहते हैं तो वर्णीजी के सिद्धान्त अपनाने होंगे। उनका हमारे ऊपर बहुत बड़ा उपकार है, उनके ज्ञान का प्रकाश फैलाने के लिये हमें शिविरों का आयोजन करना होगा।

सभी सहमत थे वीरेन्द्र भैया के विचारों से। सो मोहल्ले-मोहल्ले शिविर लगने लगे। वीरेन्द्र भैया का तरीका सभी को अच्छा लगने लगा। सभी ने भैया के निर्देशन में पाठशालायें प्रारम्भ कर लीं। वीरेन्द्र को मालूम था - विद्वानों की संगति से जो ज्ञानकोश मैंने संचय किया है, उसको निरन्तर बाँटना चाहिये तभी माँ सरस्वती का भण्डार सुरक्षित रह सकता है। प्रेम और ज्ञान

जितना बाँटों उतना ही बढ़ता और फलता फूलता है। शिविरों के माध्यम से व पाठशाला के अध्यापन से, बाँटते गये, लुटाते गये। सागर की हर गली, हर घर में वीरेन्द्र के गुणों की सुगन्ध महकने लगी।

सागर के सभी मंदिरों के कार्यक्रमों में संचालन हेतु वीरेन्द्र को ससम्मान आमंत्रित किया जाने लगा। धार्मिक आयोजनों में वे अपने पहिनावे की मर्यादा का ध्यान रखते थे। सफेद धोती कुर्ता, जाकिट और टोपी में उनका व्यक्तित्व बड़ा भला लगता था, जो हजारों की भीड़ में उनकी पहचान करा देता था। समय से कार्यक्रम प्रारम्भ करना, नियोजित समय में अभिषेक-पूजन और बोलियाँ करवाना और सुनिश्चित समय पर कार्यक्रम समाप्त करना। गौराबाई मंदिर में पर्युषण की समापन बेला पर वीरेन्द्र की वाक्पटुता की सभी ने सदा की तरह सराहना की।

महिलाओं में चर्चा होने लगी - ये लड़का कौन है?

जवाब मिला - जीवन सिंघई का छोटा बेटा है। बहुत धर्मज्ञ है।

शादी हो गई क्या ?

अभी नहीं, पर होना है। तब एक महिला बोली मेरी बेटी बहुत योग्य, पढ़ी लिखी और धर्मज्ञ है, मैं ऐसे ही योग्य लड़के की तलाश कर रही हूँ।

पहुँच गई अगले दिन, पिताजी के निकट। पिताजी ने कहा - अभी बेटे की पढ़ाई बाकी है, पढ़ाई होने के बाद शादी करूँगा। वह तो करना ही है।

वीरेन्द्र के कानों में इन चर्चाओं की भनक पहुँच गई। वे सोचने लगे, मैं अपने करने योग्य कार्य, पढ़ाई पूरी करने पर ही करूँगा। पिताजी सोचते हैं बेटे का गठबंधन करूँ और मैं सोचता हूँ ये सांसारिक बंधन तो अनादि से हैं अब संयम रूपी बंधन से अपने को बाँधूं।

एक बार वीरेन्द्र भोपाल गये, कुछ दिन वहाँ रुके, उन्होंने देखा - यहाँ लोग बातों-बातों में गाली का प्रयोग करते हैं, सोचने लगे गाली दिये बिना भी ये अपना कार्य कर सकते हैं, सज्जन सदा अच्छे वचनों का व्यवहार करते हैं। हमारी वाणी और विचार ही चरित्र निर्माण में सहायक है।

भोपाल के दर्शनीय स्थलों को देखकर लौट आये सागर। एक दिन

मित्रों के साथ बैठे थे, बातों ही बातों में अनायास गाली निकल गई, मित्र अवाक् रह गये। सोचने लगे – जिस वीरेन्द्र की संगति ने हमें संयमित व्यवहार करना सिखाया है, आज उसी वीरेन्द्र की भाषा में गाली ने कैसे प्रवेश कर लिया? सभी ने निर्णय लिया – हम वीरेन्द्र से बात नहीं करेंगे, तब वीरेन्द्र को अपनी गलती का एहसास होगा।

अगले दिन वीरेन्द्र ने देखा – मित्र उससे बात नहीं करते क्या कारण है? मैं मानता हूँ मेरी गलती है, मेरे मुँह से न चाहते हुये भी गाली निकल आई। छोटी सी बुराई के कारण मेरी मित्रता में खटास आ गई, आज से मैं गाली और अपशब्दों का त्याग करता हूँ। मित्रों ने देखा – वीरेन्द्र को अपनी गलती का एहसास हो गया है। वह पश्चाताप भी कर रहा है सभी ने वीरेन्द्र को गले लगा लिया। सच्चे मित्र वही कहलाते हैं जो मित्र को सही राह दिखाये, उन्होंने तो सिर्फ एक बार ही वीरेन्द्र को, उसकी कमी को सुधारने का प्रयास किया था पर वीरेन्द्र ने कई बार अपने मित्रों को सही राह दिखाई थी या यूँ कहें वे वीरेन्द्र को एक आदर्श मित्र मानकर सम्मान देते थे।

वीरेन्द्र को अच्छी-अच्छी किताबें पढ़ने का बड़ा शौक था, किताबें पढ़ने के साथ उनको गुनना और अच्छाई को अंगीकार करना उनके बारे में अपनी राय लिखना।

एक बार 'अनुत्तर योगी – तीर्थंकर महावीर' का अध्ययन किया, मनन-चिंतन किया, वे महावीर के जीवन दर्शन से बहुत प्रभावित हुये। बैठ गये कलम और कागज लेकर। अपने विचार लिख भेजे लेखक के पास। वीरेन्द्र के विचार क्या थे एक समीक्षक की समीक्षा थी सो सन्मति पुस्तिका में वीरेन्द्र के अभिमत को छापा गया जिसकी सभी पाठकों ने सराहना की। वीरेन्द्र की कलम ने दिल जीत लिया सभी का।

लेखन में वीरेन्द्र की सक्रियता बढ़ती गई। कालेज की स्मारिका निकलना थी, सम्पादक मण्डल ने वीरेन्द्र के मार्गदर्शन में स्मारिका को श्रेष्ठ रूप दिया। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, समाचार पत्रों में उनके लेखों और कविताओं को मुख्य पृष्ठ पर स्थान मिलने लगा और पाठकों को मिलने लग नया संदेश, नई ऊर्जा।

वीरेन्द्र का रुझान अब आचार्यश्री की समीपता पाने का होने लगा था, रविवार आने की प्रतीक्षा होती वीरेन्द्र को। बड़ा सुखद लगता था आचार्यश्री का सान्निध्य। आचार्यश्री भी वीरेन्द्र को देख मुस्कानों से भर जाते, मानों कह रहे हों – शीघ्रता करो वत्स! वीरेन्द्र भी समझ लेते थे गुरु का मौन संकेत। गुरु की भाषा नयनों के द्वार से शिष्य के हृदय में प्रवेश कर जाती। विचारों का मौन आदान-प्रदान चलता रहता। अवसर मिलते ही वह मौन वार्तालाप में बदल जाता। भावों का संप्रेषण ऐसा होता है कि बिना बोले ही बहुत कुछ समझ में आ जाता है। वीरेन्द्र समझ गये – आचार्यश्री कुशल शिल्पी हैं, जो अनगढ़ पाषाण से मूर्ति बना सकते हैं।

कभी-कभी आहारचर्या के समय पहुँच जाते, नवधाभक्ति से आहार कराते। शोधन क्रिया ऐसी करते जैसे जन्म-जन्मान्तरों से आहार देने में निष्णात हों। वैय्यावृत्ति करते-करते उनके अंतस् को छू लेते। वीरेन्द्र का कर स्पर्श आचार्यश्री को चिर-परिचित सा लगने लगा था। ऐलक योगसागरजी, क्षुल्लक समयसागरजी भी भ्रातवत् स्नेह देने लगे वीरेन्द्र को।

वीरेन्द्र को पता चला आचार्यश्री का विहार हो गया है, वे सिद्धक्षेत्र नैनागिर जी पहुँच गये हैं। वहाँ चतुर्थ काल में भगवान् पार्श्वनाथ का समवसरण आया था, प्रभु की दिव्यध्वनि यहाँ के कण-कण में समाहित है। हरी भरी पहाड़ियाँ, ऊँचे-ऊँचे मंदिर और संसार की भीड़ से दूर यह पावन स्थान, साधकों को साधना का हेतु बन जाता है। साधक शिलाखण्डों को आसन बनाकर ध्यानस्थ हो जाते हैं।

वे पहुँच गये नैनागिर। सन् 1978 का चातुर्मास गुरु-शिष्य की प्रगाढ़ता को बढ़ाता चला गया। आचार्यश्री जानने लगे कि वीरेन्द्र की अंग्रेजी भाषा पर अच्छी पकड़ है सो वीरेन्द्र से अंग्रेजी भाषा के बारे में समझते रहते। नियमित पठन पाठन होता। वीरेन्द्र को आचार्य श्री की समीपता अच्छी लगती। विचारों का आदान-प्रदान होता रहता।

एक दिन आचार्य श्री ने कहा – वीरेन्द्र! प्रवचनसार की प्रस्तावना हिन्दी में करो। काम बहुत बड़ा है और कठिन भी।

वीरेन्द्र ने सविनय उत्तर दिया – आचार्यश्री! आपका आशीर्वाद और कुशल मार्गदर्शन तो बड़े-बड़े कार्यों को सहज ही सम्पन्न करा सकता है। वीरेन्द्र के उत्तर से आश्वस्त हो गये आचार्यश्री, क्योंकि वे वीरेन्द्र की प्रज्ञा और कार्यक्षमता से भलीभाँति परिचित हो चुके थे। श्री एन. उपाध्ये की भूमिका मँगाई। वीरेन्द्र और जिनेन्द्र जैन (लाटरी वालों) ने उसका हिन्दी अनुवाद किया। प्रतिदिन लिखने के पूर्व आचार्यश्री की चरण वंदना करते, जितना लिख जाता उतना आचार्यश्री को सुनाते, दिखाते और आचार्य श्री के सान्निध्य से मन ही मन प्रसन्न होते।

वीरेन्द्र की लगन और कर्तव्यनिष्ठा से आचार्यश्री बड़े प्रसन्न थे। पिताजी भी मन ही मन गौरव का अनुभव कर रहे थे, उनका बेटा इतने श्रेष्ठ आचार्यश्री की कृपादृष्टि प्राप्त कर रहा है, पर उनको यह अनुमान न था कि वह कृपादृष्टि उनसे उनके बेटे को छीन लेगी।

प्रस्तावना लिखने की अवधि में आचार्यश्री, शिष्य की बार-बार परीक्षा लेते जाते थे। हर बार वीरेन्द्र की अंकसूची वरीयता क्रम में योग्यता को दर्शाती जाती थी। वीरेन्द्र के अनुशासित जीवन और विनय गुण से आचार्यश्री बहुत प्रभावित थे।

करीब 126 पृष्ठ की विशाल प्रस्तावना जिन हाथों से सम्पन्न हो रही थी, उन हाथों में आचार्यश्री को माँ सरस्वती की प्रभावना का गुरुतर भार सम्हालने की अद्‌भुत क्षमता दिखाई दे रही थी। उन हाथों में जीवदया पालन करने की पिच्छी दिखाई दे रही थी। उन हाथों में श्रामण्य की उच्च क्षमता दिखाई दे रही थी। कहने को तो वे अनुवाद कर रहे थे, किन्तु अनुवाद के बहाने अपना भविष्य लिख रहे थे। ऐसा उज्ज्वल भविष्य जो जन-जन की आस्था का केन्द्र बनेगा। जो जन-जन के मन को सुखकारी होगा, जो जन-जन का आदर्श होगा।

प्रस्तावना का कार्य पूर्ण करके प्रसन्नता पूर्वक पहुँच गये आचार्यश्री के निकट। आचार्यश्री मौन थे। आशीर्वाद दिया स्मित मुद्रा में। उनकी मौन आँखें मानों बोल रहीं थीं, वीरेन्द्र! अब संसार के नातों को छोड़कर धर्म की

शरण में आ जाओ। बहुत परीक्षा दे चुके हो। वत्स! तुम श्रमण संस्कृति के सूर्य बनोगे ऐसा हमें विश्वास है। हमारा आशीर्वाद सदा तुम्हारे साथ रहेगा।

वीरेन्द्र ने भी नयनों के द्वारा मौन उत्तर दे दिया – गुरुवर! बहुत हो चुका यह जीवन, संसार के सारे नाते-रिश्ते झूठे हैं, मैं आपकी शरण अंगीकार करना चाहता हूँ। मुझे मालूम है, माँ मेरे बिना दुखी होंगी। कक्काजी व्याकुल होंगे, राजेश भी मेरी प्रतीक्षा करते-करते सो जायेगा। अनादिकाल से इस जीव ने जितनी बार रिश्तों के ताने-बाने बुने उतनी ही बार क्रूर काल ने उनको नष्ट किया। अब तो मुझे सच्चे गुरु की शरण मिल गई है। इनकी शरण में शाश्वत सुख का ताना-बाना बुनूँगा जो कभी न टूटे, जो कभी न छूटे।

आचार्यश्री के कक्ष में सन्नाटा था, पर गुरु-शिष्य में मौन संवाद चल रहा था। आचार्यश्री समझ चुके थे वीरेन्द्र के अंतर्द्वन्द की हर लहर को। वीरेन्द्र की छटपटाहट और बेचैनी को। सो समाधान कर दिया। कहने लगे – वीरेन्द्र परीक्षायें निकट हैं पूरे मनोयोग से अध्ययन करो, बस एक लक्ष्य बनाओ, उच्च स्थान पाना है।

आचार्यश्री के आदेश का पालन किया वीरेन्द्र ने। आशीर्वाद लेकर लीन हो गये अध्ययन में। कहने को तो वीरेन्द्र अध्ययन कर रहे थे, लेकिन यथार्थ तो यह था कि वे आत्म अध्ययन की पाठशाला पढ़ रहे थे। तभी तो उन्हें पढ़ते समय, आचार्यश्री का दिगम्बर रूप दिखाई देता था। किताब के हर पृष्ठ पर आशीष देती स्मित मुद्रा दिखाई देती थी। तन-मन जो रंग गया था उनके बहुआयामी व्यक्तित्व में।

एम. टेक. की पढ़ाई होने में आखिरी सेमिस्टर था, छात्रों के साथ उदयपुर जाना था। माँ ने नाश्ता तैयार कर दिया। पहुँच गये झीलों की नगरी उदयपुर। भोजन करने बैठे। मित्रों ने थाली में आलू की प्लेट रख दी। वीरेन्द्र ने वह प्लेट अलग कर दी। वहाँ की भोजन बनाने की अशुद्धियाँ देखीं, निर्णय ले लिया, अब यहाँ भोजन नहीं करूँगा। माँ ने जो सूखा नाश्ता रखा था, उसी में तीन दिन निकाल लूँगा। फलों का भी उपयोग कर लूँगा।

मित्रगण पहले वीरेन्द्र को केक खाने की जिद करते थे कभी-कभी

रात्रि भोजन में शामिल होने की बात करते थे, वे अब समझ गये कि वीरेन्द्र के नियम और दृढ़ संकल्प बाह्य आडम्बर से बहुत दूर हैं। ये तो इनकी साधना के सोपान हैं, जो इन्हें हिमालय की ऊँचाइयों तक ले जाने में सहायक सिद्ध होंगे। सो वीरेन्द्र के लिए समय पर फलादि की व्यवस्था करने लगे।

घर आने पर माँ को मित्रों ने बता दिया कि वीरेन्द्र ने तीन दिन भरपेट भोजन नहीं किया है, टिफिन का नाश्ता और फल ही लिये हैं। सुनकर माँ दुखी हो गईं, पर कर क्या सकती थीं? वीरेन्द्र के नियमों का उन्हें पता ही नहीं चलता था, कब कौन से नियम ले लेता है?

वीरेन्द्र जितने समय घर में रहते, माँ उतने समय बड़ी प्रसन्न रहती। पिता के चेहरे पर चमक आ जाती, लगता था घर का एक-एक कोना वीरेन्द्र का अभिवादन करता है। कहा भी है-भव्य पुण्यशाली जीव जहाँ होते हैं, वहाँ वातावरण मंगलमय बन जाता है।

आचार्यश्री के सान्निध्य से वीरेन्द्र की क्षमता वृद्धि को प्राप्त हो रही थी। आचार्यश्री कहाँ हैं वीरेन्द्र को जानकारी रहती थी। पता चला, आचार्यश्री थूवौन जी पहुँच गये हैं। तैयार हो गये थूवौन जी जाने। जहाँ उनके सर्वस्व, प्रातः वन्दनीय गुरुदेव विराजमान हैं। बेटे को तैयार होते देख माँ रोकने का प्रयास करती पर वे अपनी वाक्पटुता से मना लेते माँ को। सोचते – माँ को मेरा बाहर जाना अच्छा नहीं लगता, पर माँ को छोड़ता कहाँ हूँ, वहाँ जाकर जिनवाणी माँ की शरण मिल जाती है मुझे। बड़ी सरल है मेरी माँ। धन्य हो गया ऐसी माँ को पाकर मैं। जिस माँ ने जन्म देकर मुझे माँ जिनवाणी से जोड़ा, सच्चे गुरु से जोड़ा। उस माँ के मातृत्व को गौरवान्वित करूँगा। अपने कुल की दान परम्परा में श्रमण संस्कृति का कलश सजाऊँगा।

थूवौनजी पहुँचकर आचार्यश्री का आशीर्वाद मिला। वहीं पूर्व परिचित ब्रह्मचारी नवीनजी से चर्चा हुई। ब्रह्मचारी नवीन वर्तमान में मुनि गुप्तिसागर हैं। नवीन गढ़ाकोटा वाली मौसी के देवर थे और बचपन के साथी थे सो जब भी मिलते सभी विषयों पर दोनों मित्र घंटों बातचीत करते रहते थे।

आचार्यश्री का संघ विहार करता रहा। अपने दिव्योपदेश से नगर-

नगर, गाँव-गाँव को पवित्र करता रहा। चातुर्मास स्थापना का समय निकट है ऐसा विचारकर आचार्यश्री अपने संघ सहित पुनः नैनागिर जी सिद्धक्षेत्र आ गये। सन् 1980 का चातुर्मास नैनागिर सिद्धक्षेत्र को प्राप्त हुआ। पार्श्वप्रभु की दिव्यध्वनि सुनने बारह सभायें जैसे सहज रूप से भर जाती थीं, उसी प्रकार चारों ओर से यात्रीगण आचार्यश्री की देशना सुनने आ जाते थे। पंचम काल में धर्म की ऐसी प्रभावना की किसी ने कल्पना न की थी। श्रावकों के पूरे जीवनकाल में यदि एकाध साधु के दर्शन मिल जाते तो वह अपने आपको धन्य मानता था। तभी तो जब आचार्य शान्तिसागरजी सम्मेदशिखर पहुँचे तो हजारों भीड़ उमड़ पड़ी थी उनके दर्शन हेतु। हम बड़े पुण्यशाली हैं जो आचार्यश्री की कृपादृष्टि से सहज ही वर्तमान में मुनि और आर्यिका संघ के दर्शन मिल जाते हैं।

समय-समय पर वीरेन्द्र परिवार सहित नैनागिर आ जाते। उन्हें वहाँ बहुत अच्छा लगता था। सोचते-ऐसा दिन कब आयेगा जब नैनागिर से वापस जाना न होगा।

अध्ययन की व्यस्तता के बावजूद भी वीरेन्द्र को धार्मिक अध्ययन करने-कराने की धुन बनी रहती थी सो पण्डित पन्नालाल जी साहित्याचार्य से आशीर्वाद लेकर वीरेन्द्र ने स्याद्वाद शिक्षण शिविर की रूपरेखा बना ली जिसमें सारी व्यवस्थायें वीरेन्द्र को सम्हालनी थीं।

पण्डितजी जानते थे वीरेन्द्र की मात्र उपस्थिति ही सारे कार्यकर्ताओं में जोश पैदा कर देती है और पूर्ण समर्पण भाव से सभी कार्य सम्पन्न हो जाते हैं।

विद्वानों को आमंत्रित किया गया उनकी समुचित आवास और भोजन व्यवस्था बन गई। बड़े अनुशासन के साथ 25 दिसम्बर से 1 जनवरी तक मोराजी के प्रांगण में ज्ञान की गंगा बहती रही, ज्ञान पिपासु संतुष्ट हो गये। शिविर की कीर्ति सागर को लांघ कर आचार्यश्री के कानों तक पहुँच गई।

1 जनवरी को विद्वत् वर्ग ने वीरेन्द्र का आतिथ्य स्वीकार किया उन्होंने देखा – एक विनय शील श्रावक बड़े जतन से भोजन परोस रहा है। यूनिवर्सिटी का होनहार छात्र, धार्मिक, सामाजिक कार्यों का संयोजक, अतिथि सत्कार की

भावना से इतना जुड़ा है।

पण्डित जगन्मोहन शास्त्री ने सिंघईजी से उनके बेटे के चतुर्मुखी व्यक्तित्व की सराहना की।

घर में वीरेन्द्र को अच्छा नहीं लगता था, वो अधिक समय बाहर ही रहते थे, एक बार वे जिनेन्द्रकुमार के साथ नैनागिर गये। ब्रह्मचारी नवीन को तेज बुखार था, पता लगने पर पहुँच गये दोनों मित्र उनके कक्ष में। दोनों मित्रों ने ब्रह्मचारीजी की खूब वैय्यावृत्ति की। वीरेन्द्र ने भावना भाई-नवीन जी शीघ्र स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करें। कुछ दिनों बाद नवीनजी स्वस्थ हो गये।

घर आने पर देखा – दीदी आ गई है, साथ में बहुत सारे रिश्तेदार भी आये हैं। रसोईघर में मिष्ठान बनाये जा रहे हैं। समझ गये भाभी की सादें होना है।

सादों की पंगत थी। वीरेन्द्र को इन चीजों से कोई वास्ता नहीं था परम्परा के अनुसार दीदी ने चौक पूरा। दाहिने हाथ तरफ कलश रखा।

भाभी को चौक पर बिठाया। सामने सादें परोसी गई। सभी लोग कहने लगे – सबसे पहले देवर सादें खिलाता है, नेग भी मिलता है देवर को। माँ ने आवाज दी, वीरेन्द्र चलो! सादों का दस्तूर कर दो, भाभी के साथ सादें भी खाना है। वीरेन्द्र ने सहजता से कह दिया – मेरा बाजार के मावा का त्याग है। माँ यह बात भूल गई थी। कहने लगी – त्याग कर देता है पर बताता नहीं, रोज नये-नये नियम लेते जाता है। मुझे ध्यान रहता तो घर के मावा की सादें बना देती। माँ को बड़ा दुख हुआ सभी सादें खा रहे हैं। वीरेन्द्र पर कोई असर ही नहीं हुआ। उनको खाने पीने से लगाव नहीं था।

कक्काजी से वीरेन्द्र को जानकारी मिली, नैनागिर में दीक्षायें होना है। ब्रह्मचारी नवीन भैया की ऐलक दीक्षा होगी। सुनकर वीरेन्द्र को लगा – दीक्षा समारोह देखने का सौभाग्य अभी तक नहीं मिला। नैनागिर पास में है, ऐसा सोचकर कक्काजी एवं बहिन संतोष के साथ नैनागिर जाने का मन बना लिया। माँ बहू को छोड़कर जा नहीं सकती थीं, सो माँ चाहते हुये भी घर में रुक गईं, बोली आप सभी दीक्षा समारोह देखने चले जाओ, कभी मौका मिलेगा तो मैं

देख लूँगी। मैं क्यों बाधक बनूँ ? ऐसा सोचकर माँ ने हँसी-खुशी नैनागिर जाने की तैयारी कर दी।

मुनियों को आहार देने के लिये भी सामग्री रख दी। वीरेन्द्र ने एक दिन पूर्व मटर आदि खरीद कर रख लिया। साथ में नया सूट भी। तैयारी करते-करते थक गये वीरेन्द्र। लेट गये चटाई पर। नींद नहीं आ रही थी। सोचने लगे – सुबह जल्दी उठूंगा तभी तो समय पर नैनागिर पहुँच पाऊँगा।

दीक्षायें देखने का पहला मौका है, आचार्यश्री के समक्ष अपनी भावना रखूँगा। हो सकता है मुझे भी मौका मिल जावे? दीक्षा न सही, संघ में प्रवेश तो मिल सकता है। मेरी भावना पूर्ण हो जावेगी। आभास हो रहा था, सोच रहे थे –

अगर मैं लौटकर नहीं आया तो ? किताबों की लिस्ट बनाकर रख दूँ, भैया के नाम पत्र भी लिख दूँ, मैं वापस नहीं आया तो भैया सभी की किताबें लौटा देंगे। अभी से कुछ कहने में सार नहीं है। कुछ निश्चित भी नहीं है।

मन में उथल-पुथल मची हुई है कभी आचार्यश्री से मन ही मन वार्तालाप चलने लगता है तो कभी माँ पिताजी के वार्तालाप, जो विवाह को लेकर होते हैं मन में गूँज रहे हैं। माँ मुझे सुना-सुनाकर सम्बन्धों की बात करती है, मेरा अभिप्राय जानने के लिये।

सोचते-सोचते आँख लग गई, खो गये स्वप्नलोक में। स्वप्न जो भविष्य का संकेत देते हैं, वर्तमान का भी सम्बन्ध होता है उनसे। कभी वे दिशाबोध देते हैं, कल्पनाओं को आकृति देते हैं, वे साकार भी हो जाती हैं। भगवान् नेमिनाथ ने तो खुली आँखों से देखा था पशुओं का क्रन्दन। देखकर हो गये संसार से विरक्त।

वीरेन्द्र को स्वप्न में दिखा था संसार का सुनहरा दर्शन और उसी समय दिखा था उस मायाजाल से निकलने का स्थाई पथ दर्शन।

सप्तपदी का प्रसंग, परिणय की बेला। दूल्हा बने हैं वीरेन्द्र। वधु कौन है? समझ में नहीं आया! शाही ठाठ-बाट से फेरे पड़ रहे हैं, मंगलगीत गूँज रहे हैं, पण्डितजी मंत्रोच्चारण कर रहे हैं, छः फेरे हो चुके आखिरी फेरा बाकी है ज्योंही कदम बढ़ाया, सहसा आवाज आई – वीरेन्द्र! यह तुम क्या कर रहे हो?

तुम संसार चक्र में क्यों उलझ रहे हो?

आवाज किसकी थी। गुरुवर की या आत्मा की?

आवाज किसी की भी हो, मुझे सत्पथ दिखा दिया, मुझे झकझोर दिया मैं क्या करूँ? कैसे बचूँ संसार के प्रेमजाल से?, मैं कैसे फँस गया बंधन में ? सोचते-सोचते तोड़ दिये गठबंधन और आ गये मण्डप से बाहर, मण्डप से बाहर आते ही स्वप्न टूट गया, घबरा गये। अच्छा हुआ ये स्वप्न था, यदि ये सच होता तो क्या होता? पसीना छूट रहा था। साँसें तेज चलने लगीं थी, बार-बार उस आत्मा को श्रद्धा से नमन कर रहे थे, जिसने सांसारिक चक्रव्यूह से बचा दिया।

कमरे में चारों ओर देखा कोई नहीं था। निर्णय ले लिया नहीं बँधूंगा बंधनों में। मुझे दिशाबोध मिल गया मैं सांसारिक बंधनों में नहीं उलझूँगा। करवट बदलते-बदलते रात्रि बीत गई।

सुबह हुई वीरेन्द्र ने उठकर सामयिक की, चिन्तन चलता रहा स्वप्न की घटना का। अच्छा हुआ वह स्वप्न था बच गया मैं। सच होता तो क्या होता मेरा?

सभी सोकर उठ गये थे। नहा धोकर तैयार हो गये। वीरेन्द्र ने नया कोट, टाई जूते मोजे पहिन लिये। देवर को तैयार देख भाभी ने विनोद किया, भैया! आज तो आपको देखकर ऐसा लग रहा है जैसे आप किसी विशेष कार्य से जा रहे हैं। लड़की देखने जाने वाले ऐसा सजते हैं।

वीरेन्द्र ने हँसकर उत्तर दिया - भाभी आपको पता नहीं, आज नैनागिर में दीक्षाएँ होना हैं, अभी तक दीक्षा समारोह देखने का मौका नहीं मिला। आज प्रथम बार सौभाग्य मिलेगा। ब्रह्मचारी नवीन भी ऐलक दीक्षा ले रहे हैं सो और अधिक उत्सुकता है।

माँ भी सुन रही थी देवर भाभी का वार्तालाप। सोचने लगी बेटा दीक्षा समारोह देखने जा रहा है शाम को, सभी के साथ वापस आ जायेगा, पर माँ को यह पता न था कि बेटा वहाँ से वापस आ पायेगा या नहीं? क्या ये बेटे के अपनत्व भरे बोल आखिरी हैं? इन सबसे अंजान माँ सभी को विदाकर अपनी

दैनिक चर्या में व्यस्त हो गईं।

कैसी होंगी दीक्षायें ? कैसा महसूस करेंगे दीक्षार्थी? आचार्यश्री किस प्रकार देंगे दीक्षायें? सोचते-सोचते वीरेन्द्र को पता ही न लगा कि कब नैनागिर पहुँच गये? मंदिर से आती घंटियों की आवाज लोगों के शोरगुल से उनकी तंद्रा टूट गई। उठकर शीघ्रता से सामान उतारने लगे। मैनेजर साहब ने 67 नं. कमरे की चाबी पकड़ा दी, कारण वे वीरेन्द्र को पहले से ही जानते थे।

वीरेन्द्र ने जल्दी सामान कमरे में रखा और कोट के बिना ही बाहर जाने लगे। ठंड बहुत अधिक थी, लोग ठंड से काँप रहे थे। वीरेन्द्र को बिना गरम कपड़ों के बाहर जाते देख कक्काजी ने कहा - कहाँ जा रहे हो बेटे? वीरेन्द्र ने उत्तर दिया आचार्यश्री के पास।

कक्काजी ने कहा - बेटा! कोट पहिन लो या शाल कंबल ओढ़ लो। शीत सहन नहीं होती, बीमार हो जाओगे।

वीरेन्द्र को आचार्यश्री के दर्शन करने की उतावली थी, कुछ जवाब न दिया, मन ही मन बुदबुदाते बढ़ गये आचार्यश्री के कक्ष की ओर। सोच रहे थे मुझे नहीं लगती ठंड। जिसका हो कम बल वे ओढ़ें कंबल। मुझे तो ठंड गर्मी सहने का अभ्यास करना है। बेटे के मनोभाव और क्रियाकलाप देखकर कक्का जी सोचने लगे बेटा अब इतना छोटा तो नहीं है कि हाथ पकड़कर अपने अनुसार चलाया जा सके। वह समझदार हो गया है, अपनी इच्छानुसार जीवन जियेगा, हम उसे रोक नहीं सकते।

पिताजी को कहाँ मालूम था कि बेटा नंगे पाँव चलने का अभ्यास करने लगा है। परिवार की परिधि से उठकर अनन्त आकाश को छूने का प्रयास कर रहा है। आचार्यश्री के पास तो हमेशा जाता है। जब तक लौटकर आयेगा तब तक मैं आहार देने की तैयारी कर लूँ, फिर साथ में पड़गाहन कर लेंगे। ऐसा सोचकर तैयारी करने लगे।

वीरेन्द्र ने कक्ष में प्रवेश किया जहाँ उसके गुरुदेव विराजमान थे, वे शिष्य की पदचाप से पूर्व परिचित थे, शायद उसके आने का इंतजार कर रहे थे।

चरणों में झुक गये, नमोऽस्तु अर्पित की, आशीर्वाद भी मिल गया।

बहुत देर तक मौन संवाद चलता रहा गुरु–शिष्य के मध्य। आचार्यश्री देख रहे थे वीरेन्द्र के मानस में उठती तरंगों को। उसके मन में उठते अन्तर्द्वन्द को। वे देख रहे थे – वीरेन्द्र के उदासीन भाव को, वे देख रहे थे संयम की कसौटी में खरे उतरे साधक को।

कभी वीरेन्द्र का चेहरा पढ़ते, कभी गंभीर होकर उसके भविष्य को देखते। मन ही मन मुस्करा रहे थे, शायद प्रथम परिचय में ही उन्होंने वीरेन्द्र के अंतर्मन में विराजे मुनिपने को निहार लिया था।

वीरेन्द्र को भी कुछ आभास हो चुका था, उन्होंने जान लिया था कि उनकी सागर से मिलने की यात्रा शीघ्र ही प्रारम्भ होने वाली है। शायद कल ही उसका श्रीगणेश हो जाये, तभी तो उन्होंने एम. टेक के आखिरी सेमिस्टर की परवाह न की थी और विद्यार्थी जीवन के बचे कार्य एक दिन पूर्व ही पूर्ण कर लिये थे।

वे स्वाभिमानी और लेन–देन में साफ–सुथरे थे, सो एक दिन पूर्व ही कॉलेज की लाइब्रेरी की सभी पुस्तकें जमा कर दी थीं, मित्रों की पुस्तकें भी लौटा दी थीं और जिनकी न लौटा पाये थे, उन पुस्तकों में परची बनाकर सभी के नाम लिख दिये थे। एक पर्ची में तीन रुपये की राशि का भी उल्लेख किया जो कॉलेज में जमा करने थे।

मित्रों ने वीरेन्द्र से पूछा – आज तुम सभी की किताबें लौटा रहे हो, अभी आखिरी सेमिस्टर बाकी है। क्या बात है? वीरेन्द्र ने कुछ न कहा, यहाँ–वहाँ की बातें करते रहे। मित्र आश्चर्यचकित थे वीरेन्द्र के व्यवहार से। कुछ समझ न पाये क्या कारण है और कल क्या घटने वाला है।

घर में भी वीरेन्द्र ने कोई चर्चा न की थी, सभी जानते थे कि कल दीक्षा–समारोह देखने वीरेन्द्र नैनागिर जा रहा है।

वीरेन्द्र ने मन ही मन निर्णय लिया था कि कल नैनागिर पहुँचकर आचार्यश्री से ब्रह्मचर्य व्रत का निवेदन करूँगा, हो सकता है आचार्यश्री स्वीकृति प्रदान कर दें। परिवार जनों को यह विचार बताऊँगा तो मोह के कारण बाधा भी आ सकती है।

गुरु–शिष्य के मौन संवाद को वीरेन्द्र ने तोड़ा, मन की उमड़ती भावनाओं ने शब्दों का रूप लिया। दृढ़तापूर्वक विनय से बोले – आचार्यश्री! मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दीजिये।

सुनकर आचार्यश्री गंभीर हो गये, कुछ सोचने लगे।

अनुभवी आँखों ने देख लिया, वीरेन्द्र के भविष्य को। उनको पूरा भरोसा था शिष्य पर। सोना सौ टंच खरा है, संयम की नींव में ढाल देना चाहिये पुनः एक प्रश्न किया।

आगे भी बढ़ोगे कि नहीं ?

हाँ आचार्य श्री! मैं आगे बढ़ूँगा, मुझे आगे बढ़ने में आपके आशीर्वाद और मार्गदर्शन की आवश्यकता है।

वीरेन्द्र के उत्तर से आचार्यश्री संतुष्ट और प्रसन्न हो गये। वे वीरेन्द्र की ऊँची उड़ान को लम्बे समय से महसूस कर रहे थे। प्रसन्नचित्त हो ब्रह्मचर्य व्रत प्रदान कर दिया।

गुरु का आशीर्वाद मिला मानो तीनों लोकों की निधि मिल गई, उत्तम शरण प्राप्त हो गई। मुझे आगे क्या करना है? आदेश की प्रतीक्षा करने लगे वीरेन्द्र। आचार्यश्री ने ऐलक योगसागरजी को बुलाया और वीरेन्द्र के केशलुंच करने की आज्ञा प्रदान की और स्वयं शौचक्रिया हेतु प्रस्थान कर गये।

सिंघईजी वीरेन्द्र का इन्तजार कर रहे थे, बेटा आ जाता तो अच्छा होता। पड़गाहन करने साथ में खड़े हो जाते, तभी देखा सामने से आचार्यश्री निकल रहे हैं झुककर नमोऽस्तु किया गुरुचरणों में।

आचार्यश्री ने कहा – सिंघईजी! दूरदर्शन होता तो दृश्य देख लेते ? इतना कहकर वे बढ़ गये। सिंघईजी समझ न पाये – आचार्यश्री क्या कह रहे हैं और उनका संकेत क्या है? रागी को वैरागी की बातें समझ में नहीं आतीं। संसारी प्राणी जानकर भी अंजान बन जाता है। वे जानते थे – आचार्यश्री बिना प्रयोजन कुछ बोलते नहीं हैं, उनके गूढ़ संकेत का कुछ रहस्य है, सत्य स्वयं उद्घाटित होगा। सोचकर प्रतीक्षा करने लगे बेटे की।

वीरेन्द्र अब ब्रह्मचारी बन गये थे खुशी का ठिकाना न था, सोचा

आसपास के मंदिरों के दर्शन कर लूँ उसके पश्चात् केशलुंच करवाऊँगा।

सिंघईजी की खोजी आँखों ने देखा – वीरेन्द्र मंदिर के पास खड़े हैं। पास ही एक महिला खड़ी थी वह सिंघईजी से बोली – यह बालक किसका है? आचार्यश्री से व्रत का निवेदन कर रहा था।

सुनकर सिंघईजी दुखी हो गये, उस महिला को यह जानकारी नहीं थी कि जिनसे वह बात कर रही है, ये उसी बालक के पिता हैं। सिंघईजी शीघ्रता से वीरेन्द्र के पास पहुँच गये।

कहना चाह रहे थे बेटा तुम ब्रह्मचर्य व्रत लेना चाहते हो, ठीक है पर घर में रहकर ही साधना करो बड़े भाई को भी तुम्हारी जरूरत है, अभी तक तुम मेरी सभी बातें मानते थे मेरी यह बात मान लो।

बात अधूरी रह गई, मन की बात कह ही न पाये। वीरेन्द्र ने अपने कपड़े उतारना शुरू कर दिया। कक्काजी कहने लगे। अरे बेटे! यह तुम क्या कर रहे हो? मेरी तो सुन बेटा।

बेटा कहाँ सुन रहा था? कपड़े एक-एक कर उसके तन से दूर होते जा रहे थे। जो सूट बड़े शौक से अभी सिलवाया था, दो घंटे भी न पहिन पाया था। निरीह भाव से कह दिया – ले जाओ इन्हें।

कक्काजी ने यह सब देखा, स्तब्ध रह गये। कुछ न कह पाये। बेटे के पैर घर में न थमेंगे यह जानते थे, पर इतनी जल्दी बेटा यह निर्णय लेगा वह भी मेरी सहमति के बिना, यह उम्मीद न थी। कक्काजी ने बेटे की आँखों में नई आभा देखी, मानो आँखें कह रही थी पिता पुत्र का साथ इतना ही था, अब तो हमें परमार्थ से जोड़ने वाले पिता की शरण प्राप्त हो गई है, मैं उनका हाथ पकड़कर आगे बढ़ूँगा। पिताजी! आप भी अपनी सहमति दीजिये।

बेटे के संकल्प ने उन्हें अंदर तक झँकझोर दिया। हाथों में बेटे के वस्त्र थे और वह बढ़ गया था अपना लक्ष्य पाने, मंदिरों के दर्शन करने। हाथ काँप रहे थे, शक्तिहीन हो गये थे। जिन हाथों से बेटे को दुलारते थे, अनुशासित करते थे उन हाथों को आज क्या हो गया? रोकना चाह रहे थे बेटे को। बाँधना चाह रहे थे आँखों के तारे को। कुछ न कर पाये, बेटा तो नाते रिश्तों की सीमा से परे

विराटता के आलोक में जाने तैयार है। अब क्या करूँगा इन वस्त्रों का? पिता के आँखों की विवशता आँसू बनकर बरस रही थी, यह देख बेटी ने पिताजी से वस्त्र अपने हाथ में ले लिये और उन्हें सहारा देकर बैठा दिया, वह पिताजी के मन की पीड़ा देख रही थी। विवशता में आँसू बह रहे थे उनकी आँखों से। जिन आँखों के इशारे बेटा चलता था आज वही आँखें मूक बनकर देख रहीं थी।

बहन संतोष भी देख सुन रही थी यह सब। पर कुछ बोल न पाई। उसको मालूम था वीरेन्द्र जो सोच लेता है करके रहता है। हमेशा हर कार्य के लिये मेरी सलाह लेता था पर आज मुझसे कुछ नहीं पूछा? कुछ नहीं कहा? पता नहीं आज क्या घटने वाला है?

वीरेन्द्र ने आचार्यश्री से आशीर्वाद लेकर श्वेत परिधान धारण कर लिये। अब वे ब्रह्मचारी वीरेन्द्र बन गये थे। बाह्य वेश धवल था, मन भी धवलता से भर गया था। सभी जीवों के प्रति मैत्री भाव मन में हिलोरें मार रहा था, गुणी जनों के प्रति बहुमान और बढ़ गया था, सभी प्राणी सुखी रहें और निरोग रहें, ऐसी भावना भा रहे थे। संकल्प से वीरेन्द्र की सारी दुविधा समाप्त हो गई, वे हल्के हो गये।

आचार्यश्री ने ऐलक योगसागरजी को आदेश दिया कि वे वीरेन्द्र के केशलुंच में सहयोग करें। भगवान् मुनिसुव्रत की वेदी के समक्ष केशलुंच प्रारम्भ हो गये, बड़े उत्साह से वीरेन्द्र केशलुंच कर रहे थे, प्रथम केशलुंच था सो ऐलक योगसागरजी सहयोग कर रहे थे।

आज भी मुनि योगसागर उस क्षण का स्मरण कर रोमांचित हो उठते हैं, वे कहते हैं कि मुझे केशलुंच करते समय रेशमी वालों को स्पर्श कर ऐसा महसूस होता था जैसे मैं राजकुमार वर्द्धमान के केशों को छू रहा हूँ, केश हाथ से फिसल जाते थे।

ब्रह्मचारी वीरेन्द्र तो अपार आनन्द में डुबकी लगा रहे थे। आचार्यश्री का यशगान कर रहे थे। बारह भावना गुनगुना रहे थे। बातें कर रहे थे मुनिसुव्रत प्रभु से। कह रहे थे –

मुनि बन मुनिपन में निरत, हो मुनि यति बिन स्वार्थ।
मुनिव्रत का उपदेश दे, हमको किया कृतार्थ॥
यही भावना मम रही, मुनि व्रत पाल यथार्थ।
मैं भी मुनिसुव्रत बनूँ , पावन पाय पदार्थ॥

हे मुनिसुव्रतनाथ भगवान्! मुझे आपकी शरण प्राप्त होती रहे, जब तक मेरा भव भ्रमण न छूटे मेरे हृदय में आपके चरण कमल विराजमान रहें। प्रभु मुझे ऐसा संबल दो, मैं भी मुनिव्रत धारण कर आप जैसा बन जाऊँ। उन्हें अपने श्वेत वस्त्र भी भार जैसे लग रहे थे। मन कह रहा था कब यथाजात मुद्रा का धनी बनूँगा?

बड़े भाई अरुण भी नैनागिर जी पहुँच गये, उनको संदेश मिल गया था। कक्काजी, अरुण भैया और संतोष दीदी केशलुंच देखकर दुखी हो रहे थे, यूँ तो सभी दर्शकगण यह दृश्य देखकर अश्रुपात कर रहे थे पर सिंघई परिवार इस घटना को देखने की हिम्मत नहीं जुटा पा रहा था।

पिता को याद हो आया वह क्षण, जब वीरेन्द्र और अरुण छोटे-छोटे थे, किसी बात को लेकर झगड़ पड़े। वे देख रहे थे दोनों का झगड़ना, दोनों भाईयों के बीच हाथापाई शुरू हो गई। अरुण के हाथों में वीरेन्द्र के बाल आ गये। वे चिल्ला पड़े थे। अरे अन्नू! यह क्या कर रहे हो? एक तमाचा पड़ गया अन्नू के गाल पर। माँ ने देखी थी पिता की आँखों की पीड़ा। कितना स्नेह था बेटे से और बेटे की नटखट हरकतों से।

आज तो बेटा स्वयं ही अपने केशों से मोह तोड़ रहा है, कितना कष्ट हो रहा होगा? कितने निर्ममत्व भाव से सारी क्रियायें कर रहा है। जगह-जगह से रक्त निकल रहा है और मैं विवश होकर देख रहा हूँ सब कुछ। कुछ कह भी नहीं सकता, रोक भी नहीं सकता। इन रक्त कणों को पोंछ भी नहीं सकता। सिंघईजी सोचने लगे - केशलुंच कर लिये तो क्या हुआ? ब्रह्मचारी भी बन गये तो क्या हुआ? मैं आचार्यश्री से स्वीकृति ले लूँगा। वीरेन्द्र घर में रहकर साधना करे। घर से ही आना-जाना करे, धर्म साधन करने में मैं सहयोगी बनूँगा, पूरी सुविधाएँ जुटाऊँगा।

भैया भी वीरेन्द्र के अचानक लिये निर्णय के बारे में विचार कर रहे थे। मुझे बताया भी नहीं, इतना बड़ा निर्णय ले लिया। पर ब्रह्मचारी वीरेन्द्र इन सबसे बेखबर आनन्द के सागर में डुबकी लगा रहे थे, प्रसन्नचित्त हो सोच रहे थे अभी आचार्यश्री ने मुझे ब्रह्मचर्य व्रत दिया है, दीक्षा-समारोह में अपनी भावना रखूँगा, हो सकता है मेरी भावना पूर्ण हो जाये। अब मुझे आगे क्या करना है? इसकी मुझे परवाह नहीं है, मेरी पतवार अब आचार्यश्री के हाथ में है, जैसे योग्य खिवैया यात्रियों को तूफानों से बचाकर गंतव्य तक पहुँचा देता है, उसी प्रकार मेरी जीवन यात्रा कुशल नाविक के हाथों निष्पन्न हो रही है, थपेड़ों की क्या परवाह करना?

गुनगुनाते जा रहे थे **कहाँ गये चक्री जिन जीता?** और केश कालिमा हटाते जा रहे थे। प्रथम केशलुंच था सो 3 घंटे लग गये, पर उन्हें पता ही न चला कि कितना समय बीत चुका है। सुख का समय बहुत जल्दी बीतता है, केशलुंच में पीड़ा नहीं, सुख का अनुभव कर रहे थे। आँख उठाकर देखा भी नहीं, किसी की ओर। परिजन टकटकी लगाये वीरेन्द्र को देख रहे थे। प्रतीक्षा कर रहे थे, बेटा एक बार हमारी ओर देख तो ले पर वीरेन्द्र ने तो जैसे संकल्प ही ले लिया हो। देखना है तो अपने आपको देखना है। बाहर नहीं देखना है।

कितना अंतर है विचारों में। घटना तो एक थी। घटक भी एक। पर किसी को उसमें आनंद की अनुभूति हो रही थी तो किसी को पीड़ा। परिजन थे शोकमग्न, वीरेन्द्र थे आत्ममग्न। एक तरफ मोह था तो दूसरी तरफ था वैराग्य। एक ओर संसार था दूसरे ओर मोक्षमार्ग। एक ओर अंधकार तो दूसरी ओर दिव्यप्रकाश। तभी तो ब्रह्मचारी वीरेन्द्र ने राग रूपी अंधकार को छोड़कर आचार्यश्री की शरण रूपी ज्योति को चुन लिया था।

चिन्तन की धारा अनवरत लक्ष्य पाने आगे बढ़ रही थी। कौन किसका पिता है? कौन किसकी माता है? कौन किसका भाई है? अनन्तकाल से इन नश्वर रिश्तों की आकांक्षाओं में उलझा जीव भवभ्रमण कर रहा है। इन सम्बन्धों से नाता जोड़ता-तोड़ता है। दुर्लभता से मिली यह नर पर्याय, उच्चकुल और देव-शास्त्र-गुरु की शरण अमूल्य है, अभी तक सदुपयोग न कर पाया, यदि इस बार चूक गया तो पछताऊँगा।

हे भगवन्! मेरी कामना पूर्ण हो जाये। मेरे कदम चारित्र पालन करने में न डगमगायें। आचार्यश्री की कृपादृष्टि प्राप्त हो जाये, ऐसा सोचकर विशुद्धि बढ़ाने धारण कर ली पंचपरमेष्ठी की शरण! माँ जिनवाणी की शरण! आचार्यश्री की शरण! णमोकारमंत्र का जाप चल रहा है मन ही मन।

बेटे के केशलुंच से आहत हो गये थे कक्का जी, तभी देखा आचार्यश्री वहाँ आये हैं नमोऽस्तु कर निवेदन किया, काँपती आवाज से बोले – आचार्य श्री, इतना सब हो गया, आपने हमसे कुछ नहीं पूछा।

आचार्यश्री मुस्कराकर बोले – मैं तो पहले ही जानता था फिर क्या पूछता?

निरुत्तर हो गये कक्काजी। सोचने लगे – हो जाने दो केशलुंच। बन जाने दो ब्रह्मचारी। अब आगे कुछ नहीं करने दूँगा। बेटा मेरा है मेरी बात मानेगा। ये तो थी एक पिता की सोच, पर आचार्यश्री कुछ और सोच रहे थे। उन्होंने प्रथम दृष्टि में ही वीरेन्द्र के अंदर मुनि क्षमासागर को देख लिया था तभी तो अचानक ही उन्होंने अनगढ़ पाषाण में संस्कार देकर प्रतिमा का आकार देना शुरू किया था। आचार्यश्री ने मन ही मन सोच लिया था आगे क्या करना है।

आज नैनागिर में जिसे रेशन्दीगिरि के नाम से प्रसिद्धि प्राप्त है। वरदत्तादि पंच ऋषिराजों की सिद्धस्थली और भगवान् पार्श्वनाथ की समवशरण भूमि उन यादों को ताजा कर रही है, जैसे आज यहाँ मंदिरों, शिखरों, कन्दराओं, पाषाणों के कण-कण में आज भी दिव्यदेशना गूँज रही हो। पूरा बुंदेलखण्ड सिमट कर नैनागिर के विशाल प्रांगण में समा गया था। बुन्देलखण्ड के हर कोने में खबर फैल गई थी कि युवाचार्य विद्यासागरजी महाराज दस जनवरी के पावन दिन बाल ब्रह्मचारी साधकों को दीक्षा प्रदान कर रहे हैं, सो जन सैलाब उमड़ पड़ा था उस मनोहारी दृश्य को देखने के लिये।

अधिकांश लोगों ने अपने जीवन में साधुओं के दर्शन भी न किये थे, फिर दीक्षायें देखना तो दूर की बात है। कैसी होती हैं दीक्षायें? क्या महत्त्व है पिच्छी का? कैसी होती है श्रमणचर्या? विरले ही पुण्यशालियों ने कभी-कभी वृद्ध मुनिराजों के दर्शन किये थे, आचार्यश्री के तरुण मुनिसंघ को देखकर

मालूम हुआ कि युवावस्था में भी मुनिपद धारण किया जा सकता है। इन सब जिज्ञासाओं के समाधान के लिये झुण्ड के झुण्ड बड़े उत्साह से अपनी-अपनी मित्रमंडली के साथ पाण्डाल में बैठ गये थे।

स्थानीय लोगों ने इतना बड़ा जनसमुदाय पहले न देखा था वे भी आश्चर्यचकित थे, आज क्या होने वाला है? जो जैन-अजैन, दादा-दादी नानी-नानी अपने नाती-पोतों के साथ दस बजे से ही आस लगाकर बैठ गये।

हरीतिमा से आच्छादित विशाल प्रांगण में केशरिया पांडाल और उस पर लहराता केशरिया ध्वज जिनशासन का अभिवादन कर रहा था।

लोग देख रहे हैं, सामयिक से निवृत्त हो आचार्यश्री पांडाल की ओर आ रहे हैं, पीछे-पीछे ऐलक क्षुल्लक और श्वेत वस्त्रधारी ब्रह्मचारी गण हैं। उन्हीं ब्रह्मचारियों में ब्रह्मचारी वीरेन्द्र नीची निगाहें कर आचार्य श्री का अनुशरण कर रहे हैं। सारा पांडाल आचार्यश्री की जय-जयकारों से गूँज उठा।

आचार्यश्री उच्चासन पर विराजमान हो गये। पार्श्वभाग में बैठ गये ऐलक क्षुल्लक, चरणों में बैठ गये ब्रह्मचारी गण।

दर्शक दीर्घा में आगे थे दीक्षार्थियों के माता-पिता और विशिष्टजन। विद्वान् और ट्रस्टीगण यथायोग्य स्थान पर विराजमान हो गये। उन्हीं विशिष्ट जनों में सिंघईजी सपरिवार शामिल थे। माँ उस समय उपस्थित न थी उनको पता लग गया था कि आचार्यश्री ने (अरुण) अन्नू को नैनागिर बुला लिया है, सो उनका बुरा हाल था किसी काम में मन नहीं लग रहा था। वीरेन्द्र के बदलते स्वभाव से वो पहले ही चिन्तित थीं और दुखी हो गईं। क्या पता मुन्ना गृहत्याग कर रहा है या कुछ और कर रहा है? मैं भी वहाँ होती तो मैं भी देख लेती यह सब। मुझे मालूम है, वह जो ठान लेता है, करके रहता है फिर भी मुन्ना मेरी अनुमति के बिना कोई कदम नहीं उठा सकता, मेरा बहुत ध्यान रखता है। कब शाम हो, जब मुन्ना सभी के साथ घर आ जाये।

तरह-तरह के विकल्प उठ रहे थे माँ के मन में। माँ प्रतीक्षा कर रही थी, नैनागिर से लौटने वालों की।

मंगलमयी मंगलाचरण से कार्यक्रम शुरू हुआ। सिंघईजी ने देखा,

एक दीक्षार्थी के पिता की आँखों से अश्रुधारा बह रही है तो सांत्वना देने के लिये बोले – धीरज रखो, तुम इतने दुखी क्यों होते हो? तुम्हारा बेटा सही मायने में कुलदीपक बनने जा रहा है, वह भी ऐसे श्रेष्ठ निस्पृही गुरु के आचार्यत्व में। ऐसी घड़ी तुम्हारे बेटे और तुम्हारे लिये गौरव का संदेश लेकर आई है।

दीक्षार्थी के पिता का गला अवरुद्ध हो गया था, आँसू पोंछते हुये बोले – जानता तो सब कुछ हूँ, पर यह पीड़ा मैं ही समझ सकता हूँ। मन ही मन बुदबुदाये ''जाके पाँव न फटी बिबाई, वो का जाने पीर पराई।''

तभी सिंघईजी ने मंच की ओर देखा – दीक्षार्थी क्रमशः श्रीफल हाथ में लिये, आचार्यश्री से दीक्षा हेतु निवेदन कर रहे हैं। वीरेन्द्र के हाथ में भी श्रीफल है वे भी सभी के साथ आचार्यश्री की ओर बढ़ रहे हैं। सिंघईजी को यह उम्मीद न थी। वे उदास हो गये और वीरेन्द्र को रोकने के उद्देश्य से अपने स्थान पर खड़े हो गये। हाथ बढ़ाकर बोले – रुको वीरेन्द्र! तुम यह क्या कर रहे हो?

पांडाल की तेज आवाज में गुम हो गई सिंघईजी की आवाज। उनके खड़े होने से व्यवधान हो रहा था सो पीछे से दर्शकों की आवाज सुनाई दी, आप बैठिये।

बैठ गये सिंघईजी।

मन कह रहा था, मंच पर जाकर बेटे का हाथ पकड़ लें। पर बेटा इतना छोटा तो नहीं, जिसे हाथ पकड़कर रोका जा सके। आँखें भर आईं, विवश हो सामने दृश्य देखने लगे। वीरेन्द्र ने नमोऽस्तु के साथ श्रीफल अर्पित कर दिया और विनय सहित निवेदन किया – आचार्यश्री! मेरे वैराग्य के भाव हुये हैं, मुझे जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान कीजिये।

आचार्यश्री ने देखा वीरेन्द्र के चेहरे पर त्याग की अदम्य लालसा है, आँखों में दृढ़ निश्चय और मन में आत्मबल हिलोरें मार रहा है। शिष्य पूर्ण रूप से समर्पित है। दूरदर्शी आँखों से देखने लगे वीरेन्द्र का उज्ज्वल भविष्य। अरे! यह तो श्रमण संस्कृति का कर्मठ प्रहरी बनेगा, अब देर क्यों की जाए? बहुत

उपयुक्त अवसर है, श्रमणत्व की नींव में ढाल देना चाहिये।

हर्षित हो आशीर्वाद दे दिया वीरेन्द्र को। ब्रह्मचारी वीरेन्द्र को जैसे आश्वासन मिल गया हो, प्रसन्न हो गये।

दीक्षार्थियों के उद्बोधन प्रारम्भ हो गये, जैसे ही वीरेन्द्र का नंबर आया आचार्यश्री को नमोऽस्तु कर विनय से बोले – ''मैं सभी जीवों को क्षमा करता हूँ सभी जीव मुझे क्षमा प्रदान करें। आज मैं पाँचों पापों का त्याग करता हूँ। अतीव पुण्य से मुझे आचार्यश्री की शरण प्राप्त हो गई है, उनका मेरे ऊपर बहुत बड़ा उपकार है। उनके मार्गदर्शन में मैं मोक्षमार्ग पर आगे बढूँगा और अपना जीवन सफल करूँगा। आचार्यश्री मुझे जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान करने की कृपा कीजिये।''

दीक्षा के पहले ब्र. वीरेन्द्र जी द्वारा उद्बोधन

ब्रह्मचारी वीरेन्द्र के एक-एक शब्द में ऐसा आकर्षण था, सुनकर सम्मोहित हो गये श्रोता। सन्नाटा छा गया पूरे पांडाल में। बस गूँज रही थी आवाज ब्रह्मचारी जी की। बस खनक रही थी खनक एक साधक की, जो वीतरागता का चोला पहनने तैयार है, केशरिया बाना का दीवाना है, सभी से बेखबर।

जनसमुदाय में चर्चा होने लगी, यह सम्पन्न घराने का बेटा है, पढ़ा-लिखा और सुशील है। सुख सुविधाओं में रहने वाला, शरीर से नाजुक भी है।

जिनदीक्षा तो तलवार की धार पर चलने जैसा कठिन काम है, कैसे सम्हाल पायेगा, अपने सुकुमार कंधों पर तप का भार?

आज माँ भी नहीं आई हैं, वे यहाँ होतीं तो कैसे देख पातीं यह सब? कैसे सहती बेटे का वियोग? अच्छा हुआ वो यहाँ नहीं हैं। पर जब यह समाचार सुनेंगी तो कितना दुख होगा उन्हें। सुनकर कैसा लगेगा कि बेटे ने दीक्षा ले ली है। देखो तो सिंघईजी का चेहरा कैसा उतर गया है? बड़े भैया अरुण भी रोष में हैं। सराहना पूर्ण चर्चायें हो रहीं थीं वीरेन्द्र के बारे में।

सिंघईजी को लग रहा था – जो मैं देख रहा हूँ वह स्वप्न तो नहीं? क्या यह सच है? एक पल को आँखों पर भरोसा न रहा। लेकिन है तो सच। बेटा दीक्षा धारण करने उत्सुक है, इससे बड़ा सच और क्या हो सकता है।

सिद्धभक्ति, योगिभक्ति, शांतिभक्ति का पाठ प्रारम्भ हो गया, पण्डितजी भी सारी क्रियायें आचार्यश्री के मार्गदर्शन में सम्पन्न करा रहे थे। गुरुवर का संकेत मिलते ही दीक्षा लेने आये पात्रों ने अपने कपड़े बदलकर नूतन लँगोटी और कोपीन धारण किये और पाँचवे ब्रह्मचारी ने गुरु निर्देशानुसार केवल लंगोटी धारण की। दर्शक समझ गये कि चार क्षुल्लक दीक्षायें हो रही हैं और एक ऐलक दीक्षा होगी। सभी दीक्षार्थियों की दीक्षायें पूर्व नियोजित थीं पर वीरेन्द्र तो दीक्षा देखने आये थे, अभी एम. टेक. की पढ़ाई भी अधूरी है, इनकी दीक्षा अनायास क्यों हो रही है? सभी को आश्चर्य था।

आचार्यश्री ने मंत्रोच्चारण के साथ सभी दीक्षार्थियों के ऊपर दीक्षा के संस्कार किये कुछ समय बाद आचार्यश्री मुस्काये और सभी का नामकरण किया।

ब्रह्मचारी नवीन बन गये ऐलक गुप्तिसागर।

ब्रह्मचारी वीरेन्द्र बन गये क्षुल्लक क्षमासागर।

ब्रह्मचारी जयकुमार बन गये क्षुल्लक परमसागर।

ब्रह्मचारी महेन्द्रकुमार बन गये क्षुल्लक भावसागर।

ब्रह्मचारी देवेन्द्रकुमार बन गये क्षुल्लक सुगुप्तिसागर।

क्षुल्लक दीक्षा देते हुए आचार्य श्री

दीक्षार्थियों के नाम सुनते ही अवनी से अंबर तक गूँज उठे जयघोष। साधकों के पवित्र नाम बार-बार श्रावकों द्वारा उच्चरित किये जा रहे थे। आचार्यश्री के जयकार में सभी मग्न हो गये थे।

वीरेन्द्र के व्यक्तित्व से एक साधक का जन्म हो गया, ब्रह्मचारी नवीन का दीक्षा समारोह देखने आये थे और स्वयं दीक्षित हो गये और बन गये क्षुल्लक क्षमासागर। बूँद की यात्रा विराट सागर से मिलने प्रारम्भ हो गई है। अब तो आचार्यश्री की अंगुली थाम ली है, वही ले जायेंगे कल्याण के पथ पर। अब मेरा कुछ भी नहीं है जो है गुरुवर का है।

सिंघईजी का मन इस प्रसंग से गौरवान्वित था, पर पुत्र वियोग की पीड़ा से व्यथित भी था, खोये-खोये से लग रहे थे। किंकर्तव्यविमूढ़ हो गये थे। लगता था समय रुक गया है, सृष्टि थम गई है, आसमान जम गया है, क्या जवाब दूँगा वीरेन्द्र की माँ को?

तभी संचालक महोदय की आवाज सुनाई दी, सिंघईजी को मंच पर बुलाया जा रहा है, अपने विचार व्यक्त करने। पैर लड़खड़ा रहे हैं, कैसे जाऊँ मंच तक? क्या कहूँगा वहाँ? पुनः आवाज आई सो हिम्मत कर मंच पर पहुँचे। आवाज काँप रही थी, पर कुछ बोलना है, आचार्यश्री का आदेश है सो

आचार्यश्री को नमन कर कहने लगे।

वीरेन्द्र जी की दीक्षा के उपरान्त सिंघई श्री जीवनकुमारजी द्वारा उद्‌बोधन

हे आचार्यश्री ! मेरे पास एक पत्थर था वह आपने ले लिया। देते हुये मुझे दुख हो रहा है, पर जानता हूँ कि आप उसे खेवनहार बना देंगे। सागर नगर के एक लघु पाषाण खण्ड में से आप ऐसी आकृति शिल्पित करेंगे जो आपकी तरह ही आभावान होगी। मूर्तिकार पाषाण से मूर्ति बनाते हैं किन्तु आप इंसान को भगवान् बनने का मार्ग बतलाते हैं, अतः आपके निर्णय को नमन करता हूँ और पुत्र से जो आशायें जोड़ रखी थीं, उनका दमन करता हूँ। स्वप्न में भी कल्पना न थी, यह जैनेश्वरी दीक्षा लेने की क्षमता रखता है।

मैं दीक्षा समारोह देखने आया था, निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि मैंने बहुमूल्य वस्तु को खोया है या पाया है। अभी तक मेरा बेटा प्रत्येक कार्य करने के पूर्व मेरे चरण स्पर्श करता था, आज मेरा शीश उनका आशीर्वाद पाने उत्सुक है।

बोलते-बोलते गला रुंध गया, आगे वे बोल नहीं पाये।

सिंघईजी के सारगर्भित उद्‌बोधन से श्रोताओं की आँखें नम हो गईं, अधिकांश दर्शक रो पड़े। पिता की पुत्र वियोग की पीड़ा चेहरे पर दिख रही थी, फिर भी वे अपने आपको संयत करने का प्रयास कर रहे थे। हैं तो संसारी प्राणी। वे अपने स्थान पर जाकर बैठ गये।

दीक्षोपरान्त आचार्यश्री की पीयूष वाणी सुनने का क्षण दर्शकों को मिला। गुरुवर ने दीक्षार्थियों के विषय में कम किन्तु दीक्षा के विषय में अधिक प्रकाश डाला। संकेतों के माध्यम से उन्होंने पात्रों के विषय में बहुत प्रभावशाली बातें कहीं, दीक्षार्थियों के पारिवारिक लोगों के लिये धर्मवर्धक वाक्य सुनाये। इस बीच उन्होंने सिंघईजी का उल्लेख करते हुये कहा - आपके पत्थर को मैंने लिया नहीं है पत्थर में योग्यता थी सो वह मेरे पास स्वयं आया है, मैं उसे तराशकर प्रतिमा बनाने का प्रयास करूँगा। आप इस बात को भूल जावें कि वह मेरा है। वह तो सभी का हो गया है।

जिनवाणी स्तुति के साथ वह ऐतिहासिक दीक्षा समारोह सम्पन्न हो गया। अनूठे दीक्षा समारोह के अनूठे संस्मरण लेकर सभी रोमांचित हो अपने-अपने घर लौट आये।

गोधूलि बेला से ही माँ गली से आने वालों की पदचाप सुन रही है, माँ इंतजार कर रही है नैनागिर से आने वालों का। एक-एक क्षण वर्षों जैसा व्यतीत हो रहा है। कभी घड़ी की सुई की ओर देखती, कभी दरवाजे की ओर। भगवान् जाने कितनी देर लगा दी इन लोगों ने। तरह-तरह की आशंकायें मन में उठ रहीं हैं, तभी दरवाजे पर दस्तक हुई। माँ ने दौड़कर दरवाजे खोले और देखने लगी परिवार जनों को। मुन्ना को न देख विकल हो पूछने लगी - मुन्ना कहाँ है? सभी एक-दूसरे का मुँह देख रहे थे, किसी को सत्य कहने का साहस नहीं था। सभी अपराधी की भाँति सिर झुकाये खड़े थे।

पुनः माँ ने प्रश्न किया, बताओ मेरा मुन्ना कहाँ है? सुबह तो वह सभी के साथ दीक्षा समारोह देखने गया था। कहाँ छोड़ आये मेरे बेटे को?

उत्तर तो देना ही पड़ेगा, कब तक सत्य को छिपायेंगे सो संतोष दीदी ने डरते-डरते धीमी आवाज में कहा - माँ, वीरेन्द्र ने क्षुल्लक दीक्षा ले ली है।

मुन्ना ने दीक्षा ले ली? तुम लोगों ने उसे रोका नहीं? ऐसा कहते ही माँ सुध खो बैठी। अभी तक कोई अदृश्य शक्ति सिंघईजी को सम्हाले हुई थी।

माँ का हाल देख उनके सब्र का बाँध टूट गया। फफक फफक कर रो पड़े। कहने लगे जीवन में अब बचा ही क्या है? जिसके लिये जिया जाये?

जिसकी सहज मुस्कान, दिवाकर की तरह दिन की शुरुआत करती थी। जिसकी वैयावृत्ति से रात्रि में नींद आती थी। जिसकी उपस्थिति जीवन को गति प्रदान करती थी। वह ही चला गया घर आँगन को सूना करके। अब किसके भरोसे अपनी जीवन की साँसे काटूँगा?

दिन बीतते नहीं कटने लगे, सही अर्थों में काटने लगे। सिंघईजी और वीरेन्द्र की माँ आशादेवी वृक्ष पर सूखे पत्ते की तरह चिपके प्रतीत होते थे। उनका भोजन आदि का समय अनिश्चित हो गया था, कर लिया तो ठीक.... न किया तो ठीक। बेटे की यादों से पेट भरा रहता था। सच कहें तो उन्हें न खाने की सुध थी न प्यास की चिंता। बस हर समय बेटे के साथ बिताये पल का स्मरण कर आँसू बहाते रहते थे। नगरवासी, परिजन आते उन्हें धीरज दिलाने। ब्रह्मचारिणी सुनीता (वर्तमान में आर्यिका दृढ़मती जी) का परिवार हर समय माँ और संतोष दीदी का ध्यान रखतीं।

कभी-कभी सिंघईजी बुदबुदाते। बेटे! तूने माँ के लिये संवेदनशील बेटे का फर्ज निभाया, मेरी आज्ञा का हमेशा पालन किया, अनुज बनकर बड़े भाई का सहभागी बना। भाई बनकर राखी का मान बढ़ाया। शिक्षक बनकर पाठशाला में संस्कार देने वाला बेटा। गुरुकुल में गुरु परम्परा का निर्वाह करने चल पड़ा है और हमारे खानदान का कुलदीपक बन गया है।

दीक्षा का समाचार पूरे सागर में फैल गया वीरेन्द्र भैया के चहेते लोगों की कमी न थी, सभी को सहयोग दिया था भैया ने। फूट-फूट कर रो रहे थे। सभी कह रहे थे एक कॉलेज के छात्र को आचार्यश्री ने दीक्षा दे दी वह भी घर के सदस्यों की सहमति के बिना। सभी के मन में आक्रोश था।

बड़ी संख्या में सभी मिलकर नैनागिर आये उन्होंने अपना रोष व्यक्त किया। अरुण भैया और पं. दरबारीलाल कोठिया ने भी आचार्यश्री से शिकायत की।

आचार्यश्री ने कहा - वीरेन्द्र को दीक्षा सम्पूर्ण विचार करने पर ही दी है, यदि चाहें तो उनसे मिल लो और ले जा सको तो ले जाओ। आचार्यश्री का उत्तर सुनकर सभी शांत हो गये।

उसके बाद सभी क्षमासागरजी के पास गये, सभी की आँखों में विरह की पीड़ा थी। क्षुल्लकजी ने समझाते हुये कहा - जो मार्ग मैंने चुना है क्या वह ठीक नहीं है? सभी चुप थे। पुनः पूछने पर सभी ने कहा - मार्ग तो यही ठीक है। क्षुल्लकजी ने कहा - फिर आप लोग क्यों इस प्रकार विरोध करते हो। आप लोगों को आचार्यश्री से क्षमायाचना करनी चाहिये।

क्षुल्लकजी के समझाने पर करीब आठ दिन तक चलने वाला प्रत्यक्ष विरोध कम हो गया, पर पत्रों के माध्यम से छः महीने तक विरोध के स्वर आचार्यश्री के कानों में गूँजते रहे। वे सभी पत्र आचार्य श्री ने क्षुल्लक जी को दिखाये तो उन्होंने पूरे विश्वास के साथ कहा - मैं आपके द्वारा दी गई दीक्षा का सम्यक् रूप से पालन करूँगा। चरणों में नत मस्तक हो गये।

सिंघई परिवार का हाल अभी भी ठीक न था, कभी माँ मन ही मन मुन्ना से बात करती और कभी मुन्ना की फोटो हाथ में लेकर माँ बतियाने लगती।

बेटा! दीक्षा लेते समय तुझे माँ की याद नहीं आई। तेरी सेवा और औषधि ही मेरी बीमारी दूर करती थी। अब कैसे जिऊँगी? कौन समझायेगा मुझे? फिर संभल जाती, अपने मन को समझाने लगतीं, कहतीं - नहीं बेटे! तूने तो धर्म का अनुसरण किया है। तूने तो मनुष्य जन्म को सार्थक किया है, साथ ही आचार्यश्री की शरण प्राप्त कर मेरे मातृत्व को गौरव दिलाया है। आज से मैं एक साधक की माँ कहलाऊँगी। अभी मैं नहीं, मेरा मोह बोल रहा था। माँ जो ठहरी। तेरे जन्म से ही बहुत सारे सपने सजाये थे सो कैसे धीरज धरूँ।

बेटे ने दीक्षा धारण कर ली पर उसकी स्मृतियाँ घर के कण-कण में जुड़ी थी। कभी वीरेन्द्र की पुस्तकें, प्रमाण-पत्र, सम्मान-पत्र और कपड़ों से भरी आलमारियाँ देखकर मन को बहलाने का प्रयास करते पर निमित्त पाकर मन के घाव और हरे हो जाते।

सिंघईजी ने देखा - कपड़ों से वीरेन्द्र की आलमारी भरी हुई है उनका अब कोई उपयोग नहीं है, पहनने वाला नहीं है तो क्या करेंगे उनको रखकर। मित्रों को बुलाकर कपड़े बाँट दिये, मित्रों ने अपने परम मित्र की निशानी को

बड़े सम्मान और वात्सल्य से अपने घर में सहेजकर रख लिया।

किताबें भी कम न थीं पूरा वाचनालय सजा था, वे किताबें आलमारियों की शोभा मात्र बनी थी। उनको पढ़ने वाले ने तो स्वयं को पढ़ना प्रारम्भ कर दिया था सो भैया ने वह पुस्तकें यथायोग्य हाथों में पहुँचा दीं जहाँ उनका सही उपयोग हो।

जितना निमित्तों से दूर होने का प्रयास करते निमित्त स्वयं सामने आकर बेटे की याद को ताजा कर देते। कुछ समझ में न आता था कैसे इस व्यथा से उबरें? कैसे बेटे से मोह कम करें ताकि मन में थोड़ी–सी समता आ जावे।

सिंघई परिवार की वियोग कथा घर–घर में चर्चा का विषय बन गई। सुदूर तक सभी के मुख पर वीरेन्द्र की दीक्षा की चर्चा थी। मंदिर और सार्वजनिक स्थल भी सिंघई परिवार की व्यथा कथा से परिचित हो गये थे। नैनागिर में भी सिंघई परिवार की स्थिति सभी की जुबान पर रहती सो क्षुल्लकजी क्षमासागर के कानों में भी भनक पड़ गई। किस प्रकार उन सभी को शांति प्राप्त हो, उपाय सोचने लगे। आमने–सामने बात करने से हल नहीं निकलेगा।

ऐसा सोचकर क्षुल्लकजी ने पत्र लिखा भव्यात्मा को। साधक ने पत्र लिखा एक श्रावक को। वैरागी ने संदेश दिया रागी को। जो व्यथित था पुत्र वियोग से। सम्बोधन और समता देने लिख भेजा अपना अनोखा संदेश –

आत्मीय आत्मन्!

''सुना है आप विचलित हो जाते हैं, आचार्यश्री के प्रति कभी अश्रद्धा के भाव मन में न लाना। आप ही ने कहा था - पाप से बचना, सो मैं जीवन भर के लिये पाप से बच रहा हूँ। रक्त आपका है, संस्कार आपने दिये हैं, उससे मैं कभी विचलित नहीं होऊँगा। गुरुवर के आशीर्वाद से कभी कुल और गुरुकुल को कलंकित नहीं करूँगा। विश्वास रखना कभी अप्रभावना न होगी मुझसे।''

जैसे ही पत्र वाहक ने पत्र दिया सभी ने खोलकर पत्र को बार–बार पढ़ा। पत्र को सीने से लगा लिया। क्षण भर को लगा बेटा सामने खड़ा है और मुझे समझा रहा है। (विश्वास रखना कभी अप्रभावना न होगी मुझसे।) ये

शब्द दिमाग में बार–बार गूँज रहे थे।

विश्वास की बात पर क्या पिता, क्या माता, क्या बहिन और क्या भैया–भाभी, विचार करने लगते–मुझे मालूम है, मुझे तो तेरे ऊपर अपने आपसे अधिक विश्वास है, तू तो कुल का दीपक है और गुरुकुल का अभिन्न अंग है। तू क्यों करेगा अप्रभावना? अब तो तू श्रमण संस्कृति का प्रभात बन गया है भटके जीवों को राह दिखाने वाला। इसी प्रकार राह दिखाते जाना, हम लोग भटक न जाएँ, ध्यान रखना। तेरे अंदर तो श्रद्धा, ज्ञान और संयम का बसंत महक रहा है, हम तो मोह और अज्ञान के पतझड़ में उलझे हैं, तूने आँखें खोल दीं। तेरे एक–एक शब्द सम्बोधन दे रहे हैं, इसी तरह गुरु बनकर समता का पाठ पढ़ाते रहना। वंदन कर लिया परोक्ष में।

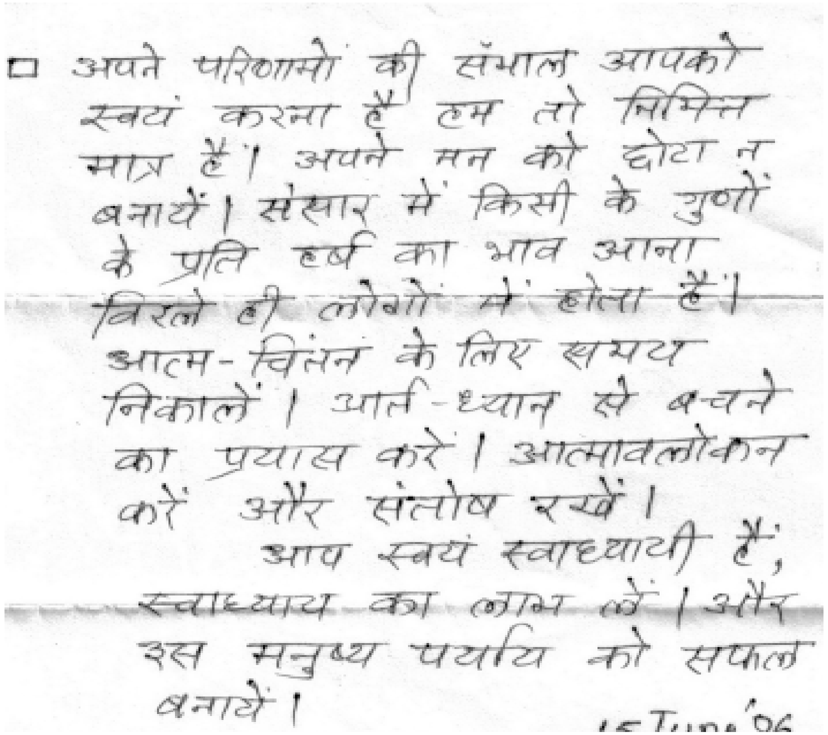
□ अपने परिणामों की सँभाल आपको स्वयं करना है हम तो निमित्त मात्र हैं। अपने मन को छोटा न बनायें। संसार में किसी के गुणों के प्रति हर्ष का भाव आना विरले ही लोगों में होता है। आत्म-चिंतन के लिए समय निकालें। आर्त-ध्यान से बचने का प्रयास करें। आत्मावलोकन करें और संतोष रखें।
आप स्वयं स्वाध्यायी हैं; स्वाध्याय का लाभ लें। और इस मनुष्य पर्याय को सफल बनायें।
15 June'06

जब भी मन निराश होता, पत्र को निकालकर पढ़ लेते। हर बार पत्र से नया संदेश मिलता। जो होता समता, संतोष और सुख को देने वाला। संतोष धारण करने के अलावा कोई चारा भी न था। पत्र पढ़कर ही बेटे की समीपता का अनुभव कर लेते। जब कभी बचपन की स्मृतियाँ दुखी करतीं, उस पीड़ा को चुपचाप पी लेने का अभ्यास कर लिया था माता-पिता ने। हमारी पीड़ा चेहरे पर बच्चे देखेंगे तो वे भी दुखी होंगे सो चुपचाप मन ही मन अपने आपको व्यस्त करने की कोशिश में लगे गये। समझदार व्यक्ति सुख-दुख में समता रखने का अभ्यास कर लेते हैं।

कड़ाके की ठंड माँ को बेटे की याद दिला देती, मुन्ना शारीरिक रूप से कमजोर है, सर्दी जल्दी हो जाती है। बीमार न हो जाये मेरा बेटा। हे भगवान्! मेरे बेटे ने मोक्षमार्ग ग्रहण किया है। प्रभो! उसे ऐसी शक्ति देना कि वह अपने कदम निरन्तर विकास की ओर बढ़ाता चला जाये। हे जिनवाणी माँ! मेरा बेटा तुम्हारी छाया में है, उसे संबल और मार्गदर्शन देती जाना भैया अरुण भी क्षुल्लकजी का स्मरण आते ही कोट उतारकर अलग रख देते थे, वे सोचते मैं गरम कपड़े पहने हूँ और मेरा भाई शीत परिषह को जीत रहा है।

नैनागिर में कभी-कभी क्षुल्लक क्षमासागरजी अन्य साधुजनों की वैय्यावृत्ति करते थे, पैर दबाते थे। उनकी भी वैयावृत्ति होती थी उनका मानना था कि सेवा भावना से परस्पर धर्मानुराग बढ़ जाता है। मन प्रफुल्लित हो जाता है परस्पर एक-दूसरे के मन से द्वेषभाव और कलुषता हट जाती है, ऐसी निर्मल भावना ने उन्हें सभी साधकों का स्नेहभागी बना दिया था।

सभी साधकों का स्नेह तो उन्हें मिलता ही था साथ में आचार्यश्री की वात्सल्य भरी वर्षा से वे चौबीसों घंटे अभिसिंचित रहते थे। छोटे से बालक की भाँति गुरु के साथ सोना, उठना, पढ़ना होता। स्वाध्याय, सामायिक, प्रतिक्रमण भी गुरु के साथ में होते।

आचार्यश्री ने उन्हें एक स्लेट पेन्सिल थमा दी थी और बड़े दुलार से प्राकृत और संस्कृत के नियमों को सिखाना प्रारम्भ किया था, वे भी इतने होनहार थे कि गुरु की शिक्षा जल्दी आत्मसात कर लेते थे। तीन वर्ष तक आचार्यश्री की छत्र छाया में वे पलते रहे, बढ़ते रहे, सीखते रहे।

अभी भी सागरवासियों का रोष पत्रों के माध्यम से आचार्यश्री के पास पहुँचता रहा उन पत्रों में ज्योतिष के तर्कों से दीक्षा का विरोध होता किन्हीं पत्रों में घर के सदस्यों की अनुमति के बिना दीक्षा देने का विरोध होता।

आचार्यश्री ने एक दिन वे सभी पत्र क्षुल्लकजी के सामने रख दिये। क्षुल्लकजी ने वे पत्र देखे और बड़ी विनम्रता से कहा - आचार्यश्री! जो विश्वास आपने मेरे ऊपर किया है, वह कभी नहीं टूटेगा ऐसा कहते हुये उनकी आँखें भर आईं।

आचार्यश्री आश्वस्त हो गये शिष्य का उत्तर सुनकर। उनको ऐसी ही उम्मीद थी अपने शिष्य से।

शीतकाल समाप्ति की ओर है, पूज्य क्षुल्लक श्री 105 क्षमासागरजी की परीक्षा हो रही है, निरन्तराय आहार कम हो पाते हैं, भोजन में किसी न किसी प्रकार अन्तराय आने लगे। अधिक अन्तरायों से उनकी काया कृश होती चली गई। अस्वस्थ हो गये क्षुल्लक जी।

आचार्यश्री विचार करते हैं, विहार करना है, क्षुल्लकजी अस्वस्थ हैं, विहार कैसे होगा? वे दूसरे दिन स्वतः आहार कराने क्षुल्लकजी के साथ चौके में पहुँचे। आचार्यश्री के निर्देशन में आहार प्रारम्भ हुये। श्रावक बड़ी सावधानी पूर्वक शोधन क्रिया कर रहे थे, फिर भी क्षुल्लकजी के पात्र में एक रुआं सा दिखाई दिया। निर्णय नहीं हो पा रहा था, बाल है या रुआं। आचार्यश्री देख रहे थे। अपने शिष्य की परीक्षा ले रहे थे। कुछ न बोले। मुँह दूसरी ओर कर लिया। क्षुल्लकजी ने अन्तराय कर दिया। अनिर्णय की स्थिति में उन्होंने अन्तराय को श्रेष्ठ समझा, शिष्य परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ था, आचार्यश्री मन ही मन प्रसन्न थे।

नैनागिर के शांत वातावरण में आचार्यश्री नवदीक्षित साधकों को अध्ययन कराने लगे। गुरु के एक-एक शब्द को हृदय में धारण कर रहे थे क्षुल्लकजी।

रत्नकरण्डक श्रावकाचार, कातन्त्ररूपमाला और जैन सिद्धान्त प्रवेशिका का स्वाध्याय प्रातःकाल होता था। दोपहर में होता था द्रव्यसंग्रह का पठन पाठन।

गुरु के श्री मुख से जैनदर्शन का रहस्य समझ रहे थे और रत्नकरण्डक श्रावकाचार तथा द्रव्यसंग्रह के श्लोक कंठस्थ कर लेते थे। बहुत आनन्द आ रहा था। आचार्यश्री की पाठन शैली में और उनके सान्निध्य में।

क्षुल्लकजी की लगन और उत्साह से आचार्यश्री प्रसन्न थे। क्षुल्लक जी की दुर्बलता आचार्यश्री ने देख ली। उनको मालूम था क्षुल्लकजी अपनी तकलीफ स्वयं ही सहन कर लेंगे, किसी से कहेंगे नहीं। वे चिन्तित थे।

क्षुल्लकजी का स्वास्थ्य निरन्तर गिरता जा रहा था। सामायिक के पश्चात् आचार्यश्री क्षुल्लकजी के समीप गये। शिष्य ने प्रसन्न मुद्रा में गुरु चरण रज लगा ली अपने शीश पर। वे जानते थे – आचार्य श्री पितातुल्य वात्सल्य देते हैं। वे कठोर हैं अपने लिये, सरल और ममतामयी हैं, शिष्यों के लिये। आचार्यश्री ने पूछा – कैसा स्वास्थ्य है क्षुल्लकजी? विनयपूर्वक हँसकर उत्तर दिया – गुरुवर! आपका वरदहस्त जिसके ऊपर हो, वह भला अस्वस्थ कैसे रह सकता है?

अपने शिष्य से ऐसे ही उत्तर की अपेक्षा थी। आचार्यश्री ने सिर पर वात्सल्य भरा हाथ फेरकर कहा – जिसका बाहर का बगीचा लहलहाता है, उसका अंदर का बगीचा सूख जाता है और जिसका अंदर का बगीचा लहलहाता है, उसका बाहर का बगीचा सूख जाता है। मुरझाने दो, बाहर के बगीचे को।

आचार्यश्री के सम्बोधन और आशीर्वाद से क्षुल्लकजी की संकल्पशक्ति बढ़ गई। दृढ़ आत्मबल का सम्बल मिलते ही शरीर धीरे-धीरे स्वस्थ हो गया।

सागर में सिंघईजी को क्षुल्लकजी के पत्र ने बहुत बड़ा संबल दे दिया था। मन बना लिया नैनागिर जाने का। वैसे आये दिन नैनागिर और क्षुल्लकजी के समाचार मिलते रहते थे। राजेश भी उदास रहता था सो उसे लेकर पहुँच गये नैनागिर।

सबसे पहले आचार्यश्री के दर्शन किये। सिंघईजी की शारीरिक कमजोरी देखकर आचार्यश्री समझ गये कि इनका मन पुत्र वियोग से अभी भी अशांत है, सो हँसते हुये बोले- (मोहभूत के वशीभूत हो)? सिंघईजी आचार्यश्री का अभिप्राय समझ नहीं पाये। आँखों की कोरें नम हो गईं। अपने आपको सम्हालते

हुये बोले – आचार्यश्री! हम मोही जीव हैं, अपने आपको नहीं सम्हाल पाते। हमें ऐसा आशीर्वाद दीजिये, जिससे हम ऐसे क्षणों में संयम रख सकें। समता आ जाये। हम भी देव-गुरु-शास्त्र की शरण में रम जावें।

क्षुल्लकजी के स्वास्थ्य के बारे में चर्चा होती रही। राजेश का एक-एक पल बड़ी मुश्किल से कट रहा था, सोचता – दीक्षा के बाद मामाजी को पहली बार देखूँगा। मैं भी कह दूँगा। अब मुझे घर में अच्छा नहीं लगता। यदि आपको घर में नहीं रहना था तो मुझे क्यों बुलाया था सागर? क्यों करते थे मुझे इतना प्यार? क्यों रखते थे मेरा इतना ख्याल?

राजेश, नानाजी के साथ पहुँच गये, क्षुल्लकजी के पास। वह दूर से देखने लगा मामाजी को। उनको देखकर सोचने लगा – इतने जल्दी कितने बदल गये हैं, कमजोर भी हो गये हैं। उसकी आँखें भर आईं। पास जाने का साहस नहीं हो रहा था।

क्षुल्लकजी ने इशारे से राजेश को अपने पास बुला लिया। फिर पूछा – पढ़ाई कैसी चल रही है?

ठीक चल रही है।

कितने बजे सोकर उठते हो?

छः बजे।

मंदिर रोज जाते हो?

जी।

अध्ययन मन लगाकर करना। पाठशाला भी रोज जाना। सिर हिला दिया बालक ने। मन में आया कह दें कि अब आपके बिना सागर में नहीं रह पाऊँगा। लेकिन मन की बात मन में ही रह गई, अधरों तक न आ पाई। सोचा, अगली बार कह दूँगा।

संयम का प्रभाव ही ऐसा होता है बालक तो बालक है, बड़े-बड़े भी संयमी जनों के समक्ष अपने भाव प्रकट नहीं कर पाते। अपनी बात कहने का साहस नहीं जुटा पाते।

नैनागिर जी से संघ का विहार द्रोणगिरि क्षेत्र की ओर हो गया। जो गुरुदत्तादि मुनिवरों की निर्वाण स्थली है। यहाँ का शांत वातावरण आचार्यश्री को भला लगा और क्षुल्लक जी को बहुत भाया। तभी एक दिन आचार्यश्री ने उस महान् तीर्थक्षेत्र में एक चेतन तीर्थ का निर्माण कर दिया, बिना किसी पूर्व सूचना और बिना आयोजन के ऐलक समयसागर को मुनि दीक्षा प्रदान कर दी। सभी आश्चर्यचकित थे इस सुकृत्य से। क्षुल्लक क्षमासागर भी गौरव का अनुभव कर रहे थे जिनधर्म, जिनवाणी और आचार्यश्री पर। जो पंचमकाल में निर्दोष मुनिचर्या का निर्वाह कर रहे हैं और अनेक साधकों को मुनिव्रत देकर कल्याण पथ पर अग्रसित कर रहे हैं।

द्रोणगिरि से सागर की ओर विहार हो गया। दीक्षाओं के बाद विहार हुआ था वह भी प्रथम बार। सागर वासियों ने जब यह समाचार सुना तो फूले न समाये। आचार्यश्री के साथ सागर के गौरवशाली क्षुल्लकजी भी अपनी जन्मस्थली आ रहे हैं। महान् संघ के आगमन के समाचार से सागर की गली-गली रोमांचित हो गई। नगर को दुल्हन की तरह सजाया गया, वंदनवार लगाये गये, तोरणद्वार सजाये गये। अट्टालिकाओं पर केशरिया ध्वज लहराने लगे। जन-जन पलक पाँवड़े बिछा कर रहे थे इंतजार में। कैसा होगा वह क्षण? जब हमारा नगर-गौरव नगर में प्रवेश करेगा, वह भी प्रथम बार साधक के वेश में।

माँ तो खुशी से बावली हो गई, ऐसा लगता था जैसे बीमार काया में बचपन का जोश आ गया हो। जल्दी-जल्दी चौका लगाने की तैयारी करने लगी - चौका लगाऊँगी, तभी तो मेरा बेटा मेरे घर आयेगा। साधक जो ठहरा। बार-बार छज्जे में आकर देख जाती। कुछ देर के बाद शहनाई का स्वर सुनाई देने लगा। दिल धड़कने लगा माँ का। अब तो जयकारों की आवाज भी सुनाई देने लगी। आरती लेकर पहुँच गईं नीचे आरती करने लगी, आचार्यश्री के साथ, समस्त साधकों की ओर देखा पूरा संघ दरवाजे से निकल रहा था पर आँखें खोज रहीं हैं बेटे को। माँ ने भारी भीड़ में खोज लिया बेटे को। बेटा इतना कमजोर हो गया है वात्सल्य निर्झरित हो गया हृदय में। रोम-रोम पुलकित हो गया माँ का। नमन कर लिया बेटे को। तन से, मन से, वचन से।

फिर से सोचने लगी बेटे के बारे में जितना मोह छोड़ने की कोशिश

होती उतना ही अधिक बेटे की याद आती, बेटा सेवाभावी जो था। रात्रि में सोने के पूर्व थाली में पानी और घी मथकर कक्काजी के पैरों में लगाता था। फिर माँ के पैर दबाता था, बेटे के हाथों के स्पर्श से माता-पिता अपनी सारी थकान भूलकर सो जाते थे, रात्रि होती और बेटे का चेहरा याद आ जाता। यह बात अलग थी अब वे अपने मन को समझाने में बहुत कुछ सफल हो गये थे।

जुलूस मोराजी पहुँच गया, साधकों के पग तलों का प्रक्षालन कर गंधोदक लगा लिया सभी ने मस्तक पर। सभी को उत्सुकता थी, अपने जाने-पहचाने क्षुल्लकजी से बात करने की। जो पढ़ाया करते थे पाठशाला में, जो लगाया करते थे शिविर, जो सिखाया करते थे जीवन जीने की कला। एक सज्जन ने पूछ ही लिया क्षुल्लकजी से -

महाराज जी - पहचान तो गये हमें?

क्षुल्लजी ने कहा-पहचानने ही तो निकला हूँ, आपको और अपने आपको।

कैसा लगा आपको सागर में?

सागर गहरा है, जितने गहराई में जाओगे, उतना ही आनन्द आयेगा। सागर तो सागर है उसका क्या कहना? पर अध्यात्म के सागर में डूबना ही डूबना कहलाता है।

कैसा स्वास्थ्य है आपका? कैसी चल रही है साधना?

कवि मन कह उठा - क्या बताऊँ , कैसी चल रही है साधना

'साधना'

अभी मुझे और धीरे
कदम रखना है
अभी तो
चलने की
आवाज आती है।

फिर गंतव्य के बारे में कहते हैं -

यात्रा पर निकला हूँ
लोग बार-बार पूछते हैं
कितना चलोगे
मैं मुस्कुराकर
आगे बढ़ जाता हूँ
किससे कहूँ
कि कहीं तो नहीं जाना
मुझे इस बार
अपने तक आना है।

समझ गये सुधी श्रावक, उनके मन की बात। उनकी चर्या देखकर अंतरंग साधना का अंदाज लग गया। सभी जन बात करना चाहते थे, समाधान चाहते थे, सो नियत समय पर सभी पहुँच जाते मोराजी।

वहाँ चौके वालों का उत्साह देखते ही बनता था। सागर की हर गली आतिथ्य सत्कार को आतुर है, हर मोहल्ले में रंग-बिरंगी रांगोली चौकों की गिनती का संकेत दे रही हैं। आहार का समय है। पीत वस्त्रधारी, श्वेत वस्त्रधारी श्रावक हाथों में मंगल कलश लिये अतिथियों के आने की प्रतीक्षा कर रहे हैं।

सिंघईजी भी सपत्नीक खड़े हैं मंगल भावना के साथ। सामने से आचार्यश्री आ रहे हैं, पिच्छी कमण्डलु लिये आहारचर्या हेतु। चारों ओर से स्वर गूँज रहा है श्रावकों का। हे स्वामिन्! नमोऽस्तु-नमोऽस्तु-नमोऽस्तु। पग रुक गये सिंघईजी के प्रांगण में। परिक्रमा की भद्र दम्पति ने। निरन्तराय आहार हो गये आचार्य श्री के। सिंघईजी बहुत प्रसन्न थे मानों तीनों लोक की उत्तम निधि प्राप्त हो गई हो।

सभी जन गाजे-बाजे के साथ मोराजी पहुँच गये। माँ ने देखा पूज्य क्षमासागरजी भी आहार करके आ गये हैं सो पहुँच गईं क्षुल्लकजी के पास। इच्छामि महाराजजी? परिचित स्वर था, आँखें झुका लीं। माँ बड़ी उलझन में हैं क्या बात करें? कैसे शुरुआत करें? बेटा कब देखेगा मेरी ओर?

माँ के मन की पीड़ा समझ रहे थे क्षुल्लकजी। सोचने लगे इसी पीड़ा से मुक्त होने तो घर से निकला हूँ, पर इनको भी समझाना होगा, एक श्रावक को सही राह दिखाने का भी मेरा फर्ज है। सो संयत स्वर में बोले - समता भाव धारण करने में ही आपका हित हैं, संसार झूठा है। कब, किसने, किसका कितना साथ दिया है? अनंतों बार इस जीव ने सम्बन्ध जोड़े और तोड़े हैं। फिर किसी से उम्मीद कैसी?

जो शाश्वत है, सनातन है, सुख की छाँव है, उस जिनवाणी माँ की शरण ग्रहण करो, अरिहन्तों की आराधना करो उसी में शांति प्राप्त होगी।

एक-एक शब्द उनके हृदय से निकलकर गूँज रहा था कानों में। सत्य ही तो कहते हैं महाराज जी। संयम की पतवार थामे, बेटे के वाक्य वेद मंत्र से हृदय को छू गये, मन में कुछ बोध जागा।

सोचने लगी-बेटे ने सारी ममता छोड़, माँ जिनवाणी का आँचल थाम लिया है। मैं भी मोह के जाल से निकलने की कोशिश करूँगी, पर मेरी शारीरिक क्षमता कम है। संयम धारण नहीं कर सकती लेकिन समता धारण करने का प्रयास तो कर सकती हूँ। छह आवश्यकों का यथाशक्ति पालन करूँगी, मोक्षमार्गी साधकों के समागम में रहने का प्रयास करूँगी। आहार दान, औषधि व्यवस्था और वैय्यावृत्ति में श्रावकों का हाथ बटाऊँगी। सो जुट गईं दूसरे दिन सुबह से ही प्रशस्त भावों से चौका लगाने। उनको उम्मीद थी आज क्षुल्लकजी महाराज का पड़गाहन होगा।

कलश लेकर करने लगी साधकों का इंतजार, पूज्य क्षमासागरजी का इंतजार। जो कभी आशा माँ का बेटा था अब वह माँ जिनवाणी का बेटा बन गया है। तब तक उन्हें क्षुल्लकजी चौके की ओर आते दिखे, सो उनके वचन झर पड़े - हे स्वामी! इच्छामि इच्छामि इच्छामि। रुक गये कदम। निहाल हो गई माँ। यथोचित विनय के साथ ले गईं क्षुल्लकजी को भोजनशाला में।

विविध व्यञ्जनों से भरा थाल दिखाने लगीं, बहुत सारी चीजें बेटे की पसंद की बनाईं थीं, पर बेटे को उन चीजों से अब कोई लगाव नहीं रहा था। अपने स्वास्थ्यानुकूल आहार लेने लगे, आहार के हर ग्रास में माँ अपना

वात्सल्य प्रदान करती जाती थी, बड़ी विनय से बड़े जतन से। आँखें डबडबा न पायें, सचेत रहती थीं अन्तराय के भय से अपने आपको सम्हाल लेती थीं।

आज आहारचर्या के निमित्त बेटा घर आ गया, उसी में संतुष्ट हो गई माँ। बेटा स्वस्थ रहे, अपनी साधना करे, आगे बढ़े, यही भावना भाती रही।

सागर स्थित मोराजी में महान् ग्रन्थराज षट्खण्डागम की वाचना प्रारम्भ हुई। धवलाजी की प्रथम वाचना का लाभ मिला सागर नगर को। मोराजी में अनोखा धार्मिक माहौल दिखाई देने लगा। वाचना के समय ऐसा लगता मानो आचार्य कुन्दकुन्ददेव के श्रीमुख से जिनवाणी निःसृत हो रही हो। श्रद्धा और तर्क अलग-अलग चीजें हैं, पूज्य क्षमासागरजी अपनी श्रद्धा की आँख से आचार्यश्री में देख रहे थे आचार्य कुन्दकुन्ददेव की छवि को। वे निहार रहे थे आचार्यश्री की चर्या में नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती को। वे कल्पना कर रहे थे - आचार्यश्री की ज्ञानधारा में आचार्य समन्तभद्र को। इन महान् आचार्यों की कुल परम्परा को प्रकाशित करने वाले प्रकाश पुञ्ज हैं आचार्यश्री और उनके गुरुकुल का एक अंग हूँ मैं।

सागर के ग्रीष्म प्रवास में आचार्यश्री ने ऐलक योगसागरजी और ऐलक नियमसागरजी को मुनि दीक्षा प्रदान की थी। आचार्यश्री के सान्निध्य में यह अपने आप में अनूठा आयोजन था। सारा बुन्देलखण्ड सागर में समा गया था। पूज्य क्षमासागरजी भी विचार कर रहे थे, मेरी क्षमतायें कब इतनी बढ़ेंगी, जब मैं यथाजात मुद्रा का धारी बनूँगा, सो अपनी क्षमता बढ़ाने, समता लाने करने लगे त्याग। निरन्तर चलने लगा प्रयास अंतरंग और बहिरंग।

आचार्यश्री ने अपने शिष्यों को प्रवचनसार का अध्ययन कराया। बड़े मनोयोग से पूज्य क्षमासागरजी गाथाओं को याद करते थे, उनका अर्थ भी ग्रहण करते जाते थे। सिंघईजी ने भी ग्रीष्मकाल में अध्ययन का लाभ लिया। वे रुचिवान और प्रबुद्ध श्रावक थे। समय से पूर्व ही पहुँच जाते थे। आशा देवी भी धर्मसभा से दोहरा लाभ प्राप्त करती थीं। जितना बनता ज्ञान हासिल करतीं और उसी बहाने बेटे को निहारती रहतीं। वश चले तो बेटे की छवि को आँखों में कैद कर लें पर बेटे की छवि को आँखों में बसाने के लिये विशाल कैनवास

चाहिये जो संसारी प्राणी के पास नहीं होता। बेटा तो अब सबका हो गया है। सभी को राह दिखाने वाला प्रकाश पुञ्ज बनने जा रहा है।

सिंघईजी को याद आ गई वह अंगूठी जिसे वीरेन्द्र पहनते थे, उन्होंने वह रत्नजड़ित अंगूठी आचार्यश्री के चरणों में समर्पित कर दी जब पहनने वाले ने उसे छोड़ दिया है तब उसे मैं क्यों रखूँ?

सभी उतावले हो रहे थे, उस अंगूठी को धारण करने के लिये। निर्णय हुआ बोली के द्वारा निश्चित होगा वह अंगूठी किसको मिलेगी ? बोली लगाई गई 15000 की बोली में वह अंगूठी भव्य श्रावक के पास चली गई। अंगूठी की कीमत संयम की महत्ता को दिखाती थी।

वाचना समाप्ति की ओर है, विहार का समय नजदीक है सो सभी श्रावक उदास हो गये। यूनिवर्सिटी के अनुभवी प्रोफेसर वी.के. नायक भी पूज्य क्षमासागर और आचार्यश्री के पास आते रहते थे। जब क्षुल्लकजी वीरेन्द्र कहलाते थे, तब नायकजी उन्हें अध्यापन कराते थे, वे वीरेन्द्र के अनुशासित-जीवन, विनय और ज्ञान से बहुत प्रभावित थे। वीरेन्द्र उनका स्नेहपात्र था। एक गोल्ड मेडलिस्ट छात्र ने अपना जीवन स्वर्ण तुल्य बनाकर उनको और महाविद्यालय को गौरव की चरम सीमा पर पहुँचा दिया था। सिंघईजी के साथ, नायकजी आचार्यश्री से चर्चा कर रहे थे, बोले - आचार्य जी! हमारे विद्यालय के होनहार छात्र ने आपकी शरण प्राप्त की है, यह हमारे लिये गौरव की बात है पर इनके अभाव से हमारा विभाग सूना हो गया है। यह कहते हुए नायकजी का चेहरा उदास हो गया था।

आचार्यश्री ने हँसकर कहा - नायकजी, आप कहते हैं, हमारा विभाग सूना हो गया है। सिंघईजी कहते हैं, हमारा घर सूना हो गया। आप लोग ये क्यों नहीं सोचते आपके छात्र और इनके सुपुत्र से ज्ञान और धर्म का प्रकाश दशों दिशाओं को आलोकित होगा। आप लोगों के त्याग से जन-मानस को एक साधक की उपलब्धि हुई है।

सभी सहमत हो गये, आचार्यश्री की भावना से। नमन कर लिया आचार्यश्री के कर्तृत्व को, वंदन कर लिया शिष्य के व्यक्तित्व को।

हो गया सागर से विहार। निराश हो गये नगरवासी और परिजन। आशादेवी के आँसू देख पड़ोसिन ने समझाया आशा दीदी! तुम इतनी दुखी क्यों होती हो? ये सोचो, बेटे का दो माह का सान्निध्य मिल गया। योगियों का जीवन ही ऐसा होता है एक निर्झर की भाँति। सभी की प्यास बुझाना और अविरल बहते जाना।

क्षुल्लकजी, आचार्यश्री की छाया बनकर, पदचिह्नों पर बढ़ रहे थे गुरु के प्रति मन में श्रद्धा थी, समर्पण था। गुरु के पग सकरी, कंकरीली पगडंडियों से अपने गंतव्य की ओर बढ़ रहे थे। जून का महीना था। कभी तेज धूप मुनिसंघ का अभिवादन करती, कभी तेज आंधियाँ मार्ग में बाधक बनतीं। कभी वर्षा अपनी बौछारों से साधकों की परीक्षा लेती। पर वे नन्हें और बड़े साधक प्रतिकूलताओं से नया सबक सीख लेते और गुरु की अंगुली पकड़कर आगे बढ़ते जाते।

सुबह विहार के समय, सूर्य का उदित होना और नदी की लहरों पर अठखेलियाँ करना, क्षुल्लकजी को बहुत अच्छा लगा। चिड़िया भी आकर चहचहाने लगती जैसे क्षुल्लकजी से चित-परिचित हो। वो महामना से बतियाती रहती। सो सहज ही संवेदना के स्वर लेखनी के माध्यम से कागज पर उतर जाते। प्रकृति प्रेमी क्षुल्लकजी की कल्पना लोगों को कविता के बहाने नये संदेश दे देती-

मैंने सूरज को बुलाया है
वृक्ष भी आयेंगे
चिड़िया भी आयेंगी
नदी और सागर दोनों ने
आने का कहा है
धरती और आकाश दोनों के नाम
मैंने चिट्ठी लिख दी है
कि हमारी माटी की गुड़िया के ब्याह में
सभी को आना है

लोग हँसते हैं यह मेरा बचपना है
सचमुच प्रकृतिस्थ होना
बचपन में लौटना है।

सचमुच प्रकृतिस्थ होने का अभ्यास निरन्तर चल रहा था, सन् 1980 का पावन चातुर्मास मुक्तागिरि सिद्धक्षेत्र को प्राप्त हो गया, साढ़े तीन करोड़ मुनिराजों की निर्वाण स्थली में क्षुल्लकजी की विशुद्धि बढ़ रही थी। आचार्य श्री से भी यदा कदा दीक्षा का निवेदन कर लेते थे। सो 7 नवम्बर, 1980 को आचार्यश्री ने ऐलक दीक्षा प्रदान कर दी। अब वे बन गये ऐलक क्षमासागर।

आचार्यश्री से मूलाचार प्रदीप पढ़ने का अवसर मिला और मिला मुनिचर्या निर्वाह करने का समीचीन ज्ञान। गुरु चरणों की शीतल छाया में अभी और आगे बढ़ना है, मुनिचर्या का अभ्यास करना है। ऐलकजी उत्कृष्ट साधना का प्रयास करने लगे, आचार्यश्री की आज्ञा का दृढ़ता से पालन करते थे। कभी अरिहंत भगवान् के समक्ष प्रतिज्ञा कर लेते थे। एक समीक्षक की भाँति अपनी कमियाँ देखते थे, अपनी आलोचना करते थे। कभी गुरुवर से प्रायश्चित लेते। अब तो गुरुवर ही उनके सब कुछ हैं, सो मन में जो होता, निश्छल भाव से प्रकट कर देते, एक बालक की भाँति। सारा न्याय गुरु पर छोड़ देते, स्वयं हल्के हो जाते।

चातुर्मास में मौन साधना की भावना थी, आचार्यश्री से अनुमति माँगी। स्वीकृति मिल गई, मिल गया आशीर्वाद। मौन रहने में कितना आनन्द है? संसार से दूर अपने में डूबने का आनन्द मौन रहने में ही होता है। वचन गुप्ति से सम्बन्धित सारे विकल्प छूट जाते हैं। सो करने लगे मौन साधना।

आचार्यश्री देख रहे थे, ऐलकजी की मौन साधना। बिना बोले ही अधर गुनगुनाते थे देव स्तवन। गुरु के साथ करते थे आचार्य भक्ति। मौन के साथ होता था प्रत्याख्यान, आहार और जीवदया का पालन। देखने वालों को मौन दिखाई देता था, पर बतियाते रहते थे हर पल, हर क्षण पञ्चपरमेष्ठी से और अपनी आत्मा से।

एक दिन आचार्यश्री के सामने दो साधक बैठे थे दोनों का मौन व्रत।

पूज्य क्षमासागरजी से कुछ पूछना था सो स्लेट पर लिख कर पूछ लिया। क्षमासागरजी ने स्लेट पर उसका उत्तर दे दिया।

आचार्य महाराज ने यह देख लिया बोले – मौन लेने के बाद यह व्यवहार ठीक नहीं है।

पूज्य क्षमासागरजी को अपनी गलती का एहसास हुआ, सोचने लगे – उनके द्वारा पूछने पर मुझे मना कर देना था कि मेरा मौन व्रत है, पर मैंने जवाब लिखकर दिया यह गलती स्पष्ट थी। पश्चाताप में आँसू आ गये। उन्होंने आचार्यश्री के चरणों में प्रायश्चित हेतु निवेदन किया।

आचार्यश्री बोले – तुम्हारी गलती नहीं है, जिसने तुमसे पूछा उसकी गलती है। प्रायश्चित पहले उसे लेना चाहिये और तुम्हें भी आगे से सावधानी रखनी चाहिए। आचार्यश्री के वात्सल्य में डूब गये क्षमासागरजी।

चार महीने कब बीत गये, पता ही न चला। वे सोचने लगे अब आचार्यश्री से पुनः मौन रहने का निवेदन करना है। सो गुरु चरणों में पहुँचकर निवेदन किया – आचार्यश्री! मौन रहने में परिणाम निर्मल रहते हैं, यदि आप आज्ञा दें तो मौन रहने की अवधि बढ़ा दूँ?

आचार्यश्री ने कहा – ऐलकजी! मौन का अभ्यास हो गया, अब बोलना सीखो। गुरु आज्ञा सर आँखों पर। गुरु के एक-एक शब्द में रहस्य होता है। इसी रहस्य को तो समझना है। ऐसे गुरु को पाकर धन्य हो गया जीवन।

वही मेरे भगवान् हैं, वही मेरे आराध्य हैं, वही मेरे देवता, सो उन देवता के चरणों में अपनी भावना व्यक्त कर दी।

आता रहा वह देवता
जो ज्योति सा मेरे हृदय में
रोशनी भरता रहा
वह देवता
जो साँस बन

इस देह में आता रहा जाता रहा
वह देवता
जिसका मिलन इस आत्मा में
विराग का कोई अनोखा गीत
बनकर गूँजता प्रति क्षण रहा
वह देवता।
मैं बँधा जिससे मुझे जो मुक्ति का
संदेश नव देता रहा
वह देवता

मुक्तागिर से आचार्यश्री ससंघ विहार कर रामटेक आ गये। चाहे शीतकाल हो या ग्रीष्मकाल। वे अध्ययन करते रहते हैं।

नगर-नगर, डगर-डगर धर्म की ध्वजा फहराते हुये आचार्यश्री ने अतिशय क्षेत्र कोनीजी को अवकाश दिया, कोनीजी का कोना-कोना पावन हो गया श्रीचरणों की रज से।

कोनीजी में आचार्यश्री ने न्यायदीपिका का अध्ययन कराया था। बड़े मनोयोग से ऐलकजी आचार्यश्री की वाणी को मन में धारण करते थे। वे स्वाध्याय के सभी अंगों का पालन विधिवत् करते थे।

आचार्यश्री के चरण बुन्देलखण्ड को पवित्र कर रहे थे, उनके चरणों का स्पर्श पाकर तीर्थ बन गई थी यहाँ की वसुधा। बुन्देलखण्ड के इतिहास में गौरवशाली आचार्य के समागम का लम्बा समय स्वर्णाक्षरों में लिखा जायेगा। बुन्देलखण्ड आचार्यश्री को प्रिय है तभी तो वो कहते हैं – यहाँ हमारी चर्या अच्छी पलती है। यहीं की माटी से शताधिक मुनि व आर्यिका उनको प्राप्त हुई हैं। यहीं की उर्वरा भूमि में श्रमण संस्कृति का वट वृक्ष, पल्लवित हुआ है अपनी छायादार सघन शाखाओं से।

सन् 1981 का ग्रीष्मकाल पिसनहारी मढ़िया को प्राप्त हो गया। यहाँ की तपती दोपहरी में संतों की साधना असाधारण थी, जबलपुर की भीषण गर्मी

में मढ़ियाजी परिसर में षट्खण्डागम के सातवें ग्रन्थ का स्वाध्याय चल रहा था, यह श्रीधवलजी की द्वितीय वाचना थी।

ऐलकजी ने तो ग्रीष्म और शीत पर मानों समता रखने की आदत बना ली थी, सो गर्मी में आचार्यश्री के अध्ययन की छाँव शीतलता प्रदान करती थी तो शीत में गुरु का स्पर्श ऊर्जा प्रदान करता था। एक माँ की तरह वात्सल्य मिलता था गुरु का और चरण बढ़ते जाते थे गुरु के पद चिह्नों पर।

परमात्म प्रकाश का रहस्य भी समझाया था गुरु ने। गुरु की वाणी के अनमोल मोती झोली फैलाकर संचित करते जाते थे। अपने हृदय में अपने मन मंदिर में।

संघ ने विहार कर दिया, ज्ञान की गंगा बहती रही, जन-जन को तुष्ट करते आचार्यश्री पहुँच गये सागर, जहाँ से क्षुल्लक क्षमासागरजी जैसे मोती को पाया था।

सागर के श्रावक-श्राविकाओं ने महावीरजयन्ती का विशाल आयोजन आचार्यश्री और उनके गौरव क्षमासागरजी के सान्निध्य में किया। आशाजी तो विभोर हो गईं आचार्यश्री के समागम से, क्षुल्लकजी के दर्शनों से, बेटे के आगमन से।

मोराजी में क्षुल्लक परमसागर को ऐलक दीक्षा प्राप्त हुई थी और तृतीय वाचना का सौभाग्य भी मिला था। तीर्थ बन गया था सागर। तीनों वाचना के कुलपति थे पं. जगन्मोहनलालजी शास्त्री। जहाँ देखो वहाँ पिच्छिधारियों के दर्शन होते। जगह-जगह श्रावकों के झुण्ड मुनिसंघ की चर्या में सहयोगी बनते और अपने पुण्यकोश को वर्धन करते जाते थे।

दो माह का समय पंख लगाकर बढ़ गया आगे। एक दिन संघ ने विहार कर दिया, चरण चल पड़े नैनागिर की ओर। सन् 1981 का चातुर्मास नैनागिर को मिला। समयसार ग्रन्थ का अध्ययन मन लगा कर किया।

आचार्यश्री देख रहे थे, ऐलक क्षमासागर की साधना को। कहने को वे ऐलक थे पर साधना मुनियों जैसी करते थे। यदा-कदा मुनि दीक्षा की भावना भी ऐलकजी आचार्यश्री के समक्ष व्यक्त कर देते थे, आचार्यश्री उपयुक्त अवसर

की तलाश में थे।

सन् 1982 का चातुर्मास पुनः नैनागिरजी को प्राप्त हो गया समवसरण भूमि में 20 अगस्त,1982, भाद्रपद शुक्ल दूज, संवत् 2039 के शुभ मुहूर्त में मुनिदीक्षा का बृहद् आयोजन हुआ। कानों-कान खबर फैल गई सुदूर तक। मुनिदीक्षा होना है, आ गये साधकों के माता-पिता। भर गया मेला नैनागिर के विशाल प्रांगण में।

सिंघईजी भी सपरिवार पधारे। अब वे दुखी नहीं थे बल्कि उन्हें गर्व था अपने बेटे पर, जो मुनिदीक्षा अंगीकार करने जा रहा है।

मंगलाचरण के साथ कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ, सभी दीक्षार्थियों ने आचार्य श्री से दीक्षा का निवेदन किया, आचार्यश्री ने समाज से स्वीकृति ली। जनसमूह ने तालियों और जयकारों से हर्ष ज्ञापित किया।

दीक्षा संस्कार प्रारम्भ हो गये मन में विशुद्धि बढ़ रही थी, आनन्द की सीमा न थी। मुनिश्री वर्तमान में दीक्षा के समय में होने वाली विशुद्धि की चर्चा करते हैं तो कहते हैं - ''दीक्षा के समय जो विशुद्धि मुझे हुई थी वह विशुद्धि बनी रहे तो समझूँगा, मेरा जीवन सफल हो गया।''

दीक्षा संस्कारों से मन की संकल्प शक्ति बढ़ रही थी। पंचपरमेश्वर के प्रति आस्था प्रगाढ़ हो रही थी। लगता था मानो तीनों लोकों की संपत्ति आज प्राप्त हो गई थी। लंगोटी का त्याग कर दिया था, धार लिया दिगम्बर वाना।

तीन मुनि दीक्षाएँ देते हुए, आचार्यश्री ने 105 गुणों के धनी महाराजों को 108 गुण का स्वामी बना दिया, वे हो गये -

मुनि श्री 108 क्षमासागर।

मुनि श्री 108 गुप्तिसागर।

मुनि श्री 108 संयमसागर।

आचार्यश्री और नवदीक्षित साधकों के जयकारों से आकाश गूँज उठा। इन्द्रदेव ने भी पुष्प वृष्टि के रूप में जल वृष्टि कर अपनी भक्ति निवेदित कर दी।

दीक्षा के उपरान्त बैठे मुनिराज त्रय

सभी साधकों को अपने विचार व्यक्त करने थे, मुनि क्षमासागर के विचार सुनने सभी लालायित थे। सर्वप्रथम पिच्छी हाथ में लेकर समर्पित हो गये गुरु के चरणों में, तन से मन से। निवेदन किया –

जो विद्यादिसागर सुधी गुरु हैं हितैषी।
शुद्धात्म में निरत नित्य हितोपदेशी॥
वे पाप ग्रीष्म ऋतु में जल हैं सयाने।
पूजूँ उन्हें सतत केवलज्ञान पाने॥

आचार्यश्री ने महाव्रत देकर मेरे ऊपर बहुत बड़ा उपकार किया है, गुरु का आशीर्वाद सदा मुझे प्राप्त होता रहे, उनकी अंगुली पकड़कर मैं अपने लक्ष्य को प्राप्त करूँ। मेरी चर्या में कभी कोई दोष न लगे। सभी जीव सुखी रहें और मेरी भावना की पंक्तियाँ कहने लगे–

मैत्री भाव जगत में मेरा सब जीवों से नित्य रहे।
दीन दुखी जीवों पर मेरे, उर से करुणा श्रोत बहे॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ॥

एक–एक शब्द मानों हृदय से निकल रहा था, खो गये श्रोता इन मधुर

वचनों में। मुनि क्षमासागर के उद्‌बोधन से उपस्थित जनसमूह गहराई तक प्रभावित हुआ। लोग शब्दों के अर्थ को हृदय में स्थापित कर लेना चाहते थे, जबकि वहीं उपस्थित सिंघईजी के खुशी के आँसू निकल पड़े। नमन कर लिया पूज्य क्षमासागर को। जो कल मेरा बेटा था आज जगत् पूज्य बन गया है, मोक्षमार्गी बन गया है। भूधरदासजी के वचन स्मरण हो आये।

ते गुरु मेरे उर बसो, वे भव जलधि जिहाज।
आप तिरे पर तारहिं, ऐसे श्री ऋषिराज॥

विचार कर रहे थे, बेटे! तूने अपना जन्म सफल कर लिया है, साथ ही वंश को गौरवान्वित कर दिया है। मैं कितना भाग्यशाली हूँ जो मुनि क्षमासागर के गृहस्थ जीवन के पिता के नाम से जाना जाऊँगा।

आचार्यश्री की देशना प्रारम्भ हो गई थी। मुनिव्रत धारण करना बहुत दुर्लभ कार्य है, महाव्रतों का निर्दोष पालन करना और भी कठिन है, बोधि की प्राप्ति करना उससे भी दुर्लभ है। उन्होंने धन्य कहा उन माताओं को, जिन्होंने अपनी गृहशाला में सपूतों को सु–संस्कार दिये हैं।

आचार्यश्री ने कहा – यदि साधना करना है तो बुंदेलखण्ड पवित्र स्थान है। यहाँ साधकों की आहारशुद्धि, संयमशुद्धि, विहारशुद्धि सुरक्षित रहती है। यहाँ संयम की आराधना होती है। हर घर में सुधी श्रावक रहते हैं। जो छह आवश्यकों का पालन करते हैं।

लोग कहते हैं पंचमकाल में मोक्ष नहीं होता। मैं कहता हूँ हीन संहनन से की गई तपस्या चतुर्थकाल की हजारों वर्ष की तपस्या से श्रेष्ठ है। विदेह क्षेत्र से अभी भी जीव मोक्ष पा रहे हैं। सभी जीव सुखी रहे समाधि को प्राप्त हों। आदिनाथ भगवान् की जय।

मुनिदीक्षा सम्पन्न हो गई, आचार्यश्री के साथ पार्श्वनाथ जिनालय पहुँच गये मुनि क्षमासागर। आज वे बहुत प्रसन्न थे, प्रभु के दर्शनों के उपरान्त आचार्यश्री के चरणों में माथा टेक दिया। आचार्यश्री ने आशीर्वाद देते हुये कहा – देखो आज जिनेन्द्र भगवान् के दिगम्बर निर्ग्रन्थ लिंग को तुमने अंगीकार किया है। अब इस जिनलिंग के साथ–साथ अपने अंतरंग परिणामों की सँभाल

करना तुम्हारा परम कर्त्तव्य है। मैं तो निमित्त मात्र हूँ।

आचार्य महाराज का कर्तृत्व मुक्त व्यवहार देखकर मन श्रद्धा से भर उठा सोचने लगे साधकों का जीवन अहं की भावना से दूर होना चाहिये।

आचार्यश्री देख रहे थे शिष्य की भावना को। उसकी आँखों की चमक कह रही थी – गुरुदेव! मैं हर परिस्थिति में अपने परिणामों की संभाल करूँगा। बस मुझे आपके आशीर्वाद की जरूरत है।

आशीर्वाद दे दिया गुरुवर ने।

सन् 1983 चल रहा था आचार्यश्री की भावना थी, नवदीक्षित मुनियों के साथ तीर्थराज सम्मेदशिखर की वंदना की जावे। संकेत सुनकर प्रसन्न हो गये क्षमासागरजी। संघ के चरण बढ़ चले शिखरजी की ओर। कटनी के उदार श्रावकों ने मुनिसंघ की व्यवस्था का कार्य सम्हाला। विहार में जहाँ जैन श्रावकों के घर न होते, वहीं कटनी वाले चौका लगाकर पुण्य अर्जन करते।

आचार्यसंघ ने कोतमा में प्रवेश किया। भव्य अगवानी हुई। गृहस्थ जीवन में वीरेन्द्र अपनी माँ के साथ यहाँ आते रहते थे क्योंकि उनका ननिहाल यहीं है। सभी मामा गण प्रसन्न थे अपने भानजे की यथाजात मुद्रा देखकर।

पण्डित रमेशचन्द्रजी को याद हो आये वे क्षण जब उन्होंने वीरेन्द्र को छात्र अवस्था में भगवान् के दर्शन करते हुये देखा था, वह इतने तल्लीन थे जैसे बंद दृष्टि कर वे प्रतिमा के दर्शन करते हुए मन ही मन बतिया रहे हों। वह छवि सिद्ध करती थी कि वीरेन्द्र भव्यात्मा है। जब वीरेन्द्र को उन्होंने छात्र जीवन में दर्शन करते देखा था। तब उन्होंने वीरेन्द्र से पूछा था, भैया! तुम्हारे दर्शन करने की विधि और भावभंगिमा से मैं बड़ा प्रभावित हूँ लगता है भगवान् तुमसे बातें कर रहे हों।

मामा धर्मचन्द्रजी एक अच्छे कवि थे, प्रारम्भ से उन्हें वीरेन्द्र से लगाव था। वीरेन्द्र भी बचपन में, अंजाने ही, उनकी काव्य रचनाओं से प्रभावित हो गये थे, तभी से उनके अंदर कविता लिखने की रुचि जागृत हुई थी। धर्मचन्द्र जी पहुँच गये पूज्य क्षमासागरजी के पास। दर्शन किये कविताएँ भी सुनाईं। गद्‌गद् हो गये मुनि श्री।

मुनिश्री का जिस भी जैन–अजैन से सम्पर्क होता, वह सप्तव्यसन और बुराइयों से दूर हो जाता। अनेक छात्र–छात्रायें उनके वचन सुनकर सदाचार अपनाने में सफल रहे।

रास्ते में हर कहीं संघ की भव्य अगवानी होती। जब कहीं भावना शून्य श्रावक मुनिसंघ की यथोचित व्यवस्था न कर पाते, तो पूज्य मुनिश्री को लगता आचार्यश्री की उचित व्यवस्था बन जाये और उनको पूरा सम्मान मिले। उनका निरन्तराय आहार सम्पन्न हो। सो समय–समय पर श्रावकों को उचित संकेत कर देते थे। अपनी परवाह न थी। गुरु की तरह निंदा और सम्मान में, अर्घावतारण और असिप्रहारण में समता का अभ्यास कर रहे थे और बढ़ते जा रहे थे आचार्य श्री के सच्चे अनुगामी बनकर।

शिखरजी शीघ्र पहुँचना है। आचार्यश्री को अभ्यास था – तीव्रगति से विहार करने का। रास्ते में विश्राम न होता आहार और विहार चलता रहता। पूज्य क्षमासागर के पैरों में छाले आ गये फिर भी चलते रहे। श्रावकों ने देखा पैरों से रक्त गिरने लगा है। सविनय निवेदन किया – महाराज! आप एक दो दिन का विश्राम कर आगे बढ़ें। पर महाराजजी ने उनकी बात न मानी और पंजे के सहारे चलना प्रारम्भ कर दिया।

शिखरजी 60 किलोमीटर दूर था। महाराज पंजों के बल चल रहे थे। कैसे यात्रा सम्पन्न होगी? श्रावकों की आँखें करुणा से भर आती थीं। जहाँ समय मिलता, उपचार कर देते और कर भी क्या सकते थे। पहुँच गये शिखर जी।

सिद्धभूमि में आकर तो मानो शरीर को ऊर्जा मिल गई। आचार्यश्री के साथ पूजन वंदना की सभी तीर्थंकरों की निर्वाण स्थली की। वहीं से नमन किया सिद्धशिला में विराजमान सिद्ध भगवन्तों को। अशरीरी सिद्ध भगवन्तों की भक्ति में ऐसे डूबे कि शरीर की पीड़ा भूल गये।

श्रावकों ने देखा पगतलों से रक्त झर रहा है, पैरों में काँटे और काँच के टुकड़े चुभे हुये थे। पर उनके चेहरे पर भक्ति और संतोष की लालिमा झलक रही थी। जो उपचार बन सका, किया श्रावकों ने। साधक को शरीर से कोई प्रयोजन नहीं होता, उन्हें अपना आत्मबल बढ़ाने की चिन्ता होती है हर क्षण, हर पल। हर वंदना उनके चरणों को मजबूती प्रदान करती जाती थी।

बीस तीर्थंकरों की मोक्षस्थली में आचार्यश्री ने 10 फरवरी, 1983 को सात ऐलक दीक्षायें सम्पन्न कीं। फिर ईसरी की ओर विहार हो गया। यहीं ग्रीष्म योग में क्षुल्लक जिनेन्द्रवर्णीजी समाधि की साधना कर रहे थे। वे आचार्यश्री के निर्यापकत्व में अपनी समाधि करना चाहते थे। उनके पुण्य का योग था कि उन्हें आचार्य संघ का समागम मिल गया।

पूज्य मुनिवर अपने गुरुवर की छत्र छाया में तपश्चर्या और आगम का अध्ययन कर पूरा-पूरा समय दे रहे थे, फिर भी समय निकालकर उन्होंने दशभक्तियाँ भी याद कर लीं और नित्य नियम से उनका पाठ करते रहे। यह बतलाने में इस लेखनी को खुशी होती है कि मुनिवर का अध्ययन और सिद्धान्त प्रेम युवा अवस्था से ही प्रगाढ़ था। फलतः जब उन्होंने 1980 में क्षुल्लक दीक्षा ली थी, तभी षट्खण्डागम की पहली किताब अंतस् में उतार ली थी और उसी वर्ष प्रवचनसार का स्वाध्याय और अध्ययन पूज्य गुरुदेव के समक्ष किया। इसी तरह छात्र भाव से उन्होंने 1982 में नवमीं एवं तेरहवीं किताब का तलस्पर्शी अध्ययन किया तथा समयसारजी की 415 गाथायें याद की थीं।

कहते हैं, एक क्षपक की समाधि में 48 मुनियों की आवश्यकता होती है। पूज्य क्षमासागरजी बड़े मनोयोग से क्षुल्लकजी की वैय्यावृत्ति कर रहे थे। मधुर कंठ से उन्हें वैराग्य भावना, समाधि भावना सुनाते थे, क्षमासागरजी के स्वर उन्हें आत्म विभोर कर देते थे, वे तन का कष्ट भूलकर अपनी आत्मा में डूब जाते थे। उन्होंने संत समागम में ऐसा पुरुषार्थ किया कि आचार्यश्री से क्षुल्लक सिद्धान्तसागर नाम पाकर सिद्धान्तों के ज्ञाता बन गये। दूसरे दिन पूज्य क्षमासागरजी समयसार की एक गाथा सुना रहे थे, वह गाथा थी –

जीवो चरित्तदंसण णाणट्ठिदो तं हि ससमयं जाण।
पुग्गलकम्मुवदेसट् ठियं च तं जाण परसमयं॥ 2॥
जो शुद्ध बोध व्रत दर्शन में समाता,
होता निजी समय जीव वही सुहाता।
रागादि का रसिक वो निज को भुलाया,
माना गया समय में समया पराया॥

पूज्य क्षमासागरजी के मुख से समयसार की गाथा निःसृत हो रही थी। उन्होंने अपने बुद्धि कौशल और गुरुदेव से जो पाया था, सो सरल शैली में व्याख्या कर दी। मधुर वाणी में स्वसमय और परसमय का अंतर समझ में आ गया। आत्मबोध जागा, चेहरे पर प्रशस्यता झलक रही थी। वर्णीजी बड़े मनोयोग से सुन रहे थे, बोले महाराज जी – अपने और पर का ज्ञान कराने के लिये यही गाथा पर्याप्त है, इसी में सारे शास्त्रों का सार भरा है, यदि हम इसके मूलभाव को ग्रहण कर लें तो इसी से हमारा कल्याण हो जायेगा। चिन्तन करने लगे वर्णीजी। मनन करने लगे वर्णीजी।

अभी तक संसार और शरीर की असारता का चिन्तन करते थे। पूज्य क्षमासागर की व्याख्या से उनकी आत्म साधना और बढ़ गयी। अंदर ही अंदर समता का सागर हिलोरे मारने लगा। बड़ी प्रसन्नता के साथ मृत्यु से साक्षात्कार करने तैयार हो गये। णमोकारमंत्र की ध्वनि के साथ देह का त्याग कर दिया। ईसरी के इतिहास में सफल समाधि की चर्चा युगों-युगों तक अपना गौरवशाली स्थान बनाये रहेगी।

चातुर्मास स्थापना क्षेत्र की तलहटी ईसरी में हुई। पावन भूमि में पाँच मुनि दीक्षायें सम्पन्न हुई। मेला लगा था ईसरी में। जगह-जगह निर्दोष चर्या के धनी मुनिराजों के दर्शन होते थे। श्रावक धन्य हो जाते थे और शिखरजी से आते-जाते रुक जाते थे गुरुओं की शीतल छांव में।

जन-समूह जय-जयकार कर रहा था उन साधकों के लिये जो अभी-अभी दिगम्बर वेश के साथ आत्मा के आनन्द में डुबकी लगा रहे थे। मुनि क्षमासागरजी उनके उत्साहित चेहरों को देख अनुभव कर रहे थे उनके अचिन्त्य वैभव का।

ईसरी के इतिहास में पाँच मुनियों के नाम लिख गये थे – वे मुनि थे मुनि श्री सुधासागरजी, मुनि श्री समतासागरजी, मुनि श्री स्वाभावसागरजी, श्री समाधिसागरजी और मुनि श्री सरलसागरजी।

आचार्य संघ का विहार कलकत्ता की ओर हो गया। यहाँ के एस.पी. बहुत प्रभावित थे श्रमण चर्या से। वे भी विहार कर रहे थे साथ में। विहार के समय मुनिसंघ की व्यवस्थायें बड़ी कुशलता से निभा रहे थे। वे क्षमासागरजी

से बहुत प्रभावित थे, अतः उनसे वे अपनी सारी शंकाओं के समाधान प्राप्त करते जा रहे थे। उन्होंने पूछा - क्या मुनिमुद्रा धारण किये बिना कल्याण नहीं हो सकता ?

देश को इससे क्या बैनीफिट मिला ?

प्रश्न जटिल और तर्कपूर्ण था। मुनिश्री ने बड़ी सहजता से उनके प्रश्न का समाधान कर दिया।

नग्नता स्वाभाविक और प्राकृतिक है। नग्नता के साथ वीतरागता का जुड़ना मानवता को धन्य करता है, जैनमुनि में नग्नता के साथ वीतरागता का मणि कांचनयोग होता है।

दिगम्बरता साधक को आत्मनिर्भरता की ओर ले जाती है, यह सब तरह के अवलम्बन छोड़ने की शुरूआत है। नग्नता एक तरह की पारदर्शिता है। यह शुचिता का दर्पण है।

समाज से हम अल्पतम लें और अधिकतम लौटायें। अपनी आवश्यकताओं को कम करें, जो वस्त्र हमने त्याग दिये वह दूसरों के काम आयेंगे, जिन्हें इनकी आवश्यकता है देश को यही लाभ है।

जिसके भीतर नग्नता आ जाती है, वह बाहर आवरण पसन्द नहीं करता। यह शरीर और मन दोनों को पवित्र करती है। नग्नता अमोघ वरदान है।

मुनिश्री के श्रीमुख से वीतरागता की विवेचना सुनकर नमन कर लिया एस.पी. साहब ने समस्त मुनिसंघ को। विहार करते मुनिसंघ की जो व्यवस्थायें उनसे जो बन सकीं खूब भक्ति भाव से सम्पन्न कीं।

श्रावकों से चर्चा करते-करते पहुँच गये कलकत्ता। बेलगछिया मंदिर में और बड़े मंदिर में श्रावकों ने मुनिसंघ के प्रवचन सुने और आचार्य संघ की चर्या देखी। पहली बार महान् संघ का दर्शन महानगर वासियों को मिला था। कुछ दिनों बाद कलकत्ता से विहार हो गया।

कलकत्ता से छोटे-छोटे गाँव में धर्मध्वजा फहराते हुये उड़ीसा पहुँच गये आचार्यश्री। खण्डगिरि-उदयगिरि में गुफाएँ देखकर मुनिश्री प्रसन्न हो गये। वहाँ की गुफाएँ आज भी साधकों को साधना के लिये साधन हैं। खूब

विशुद्धि बढ़ी। खूब मन लगा।

शाकाहार से दूर रहने वाले बंगाल प्रान्त में अहिंसा की ज्योति जलने लगी, क्षमासागरजी की मधुर वाणी में ऐसा सम्मोहन था। लोग खिंचे आते चुम्बक की तरह। कोई उनके दिगम्बर वेश से प्रभावित होता तो कोई उनकी चर्या से। उनकी हित-मित वाणी तो सभी को अपना बना लेती।

जीवदया का पाठ पढ़ाते छत्तीस मूलगुणों के धारी आचार्यश्री ने छत्तीसगढ़ में प्रवेश किया। जिसे धान का कटोरा कहा जाता है। रायपुर के पास राजिम में संघ की भव्य अगवानी हुई। मुनि पुष्पदन्तसागर भी संघ सहित आचार्यश्री के दर्शन करने आये। पण्डित बालचन्द्रजी ने आचार्यश्री के पाद प्रक्षालन कर अपने आपको धन्य कर लिया। यहीं राजिम में मुनि क्षमासागरजी की गृहस्थ जीवन की बहिन रहती है जो पण्डित बालचन्द्रजी की पुत्रवधु है।

आहार बेला का समय था। घर-घर चौक पूरे गये। श्रावक-श्राविकाएँ खड़े हो गये पड़गाहन करने। आचार्यश्री के आहार पण्डितजी के यहाँ सम्पन्न हुए। दूसरे दिन मुनि क्षमासागरजी का पड़गाहन किया उनकी गृहस्थ जीवन की बहिन संतोष ने। बड़ी प्रसन्नता से आहार सम्पन्न हुए।

दो दिन का लाभ ही मिल पाया और विहार हो गया दुर्ग की ओर। नम आँखों से देखतीं रहीं उन पद चिह्नों को। जिनसे राखी का रिश्ता था, जो कभी बहिन के पैर छूते थे, अब वे चरण आराध्य हो गये हैं सारे विश्व के।

दुर्ग में श्रावकों ने भारी अगवानी की आचार्य संघ की। आहारचर्या का समय हो गया। क्षमासागरजी का पड़गाहन बहुत दूर हुआ, परिक्रमा कर ली श्रावकों ने। चौके में पहुँच गये मुनिश्री। उच्चासन तो दे दिया पर श्रावक अंजान थे आहार की विधि से। पाद प्रक्षालन और पूजन करना भी न आता था उन्हें। अंजुली लगाये कुछ क्षण बैठे रहे, पर श्रावक डर से गये, न पाद प्रक्षालित किये न पूजा। महाराजजी उठने लगे, चारों भाई विनयपूर्वक रोकने लगे महाराज जी को। एक भाई किसी जानकार को लेने गया, देर हो रही थी सो सभी भाई कहने लगे हाथ जोड़कर। महाराज जी - हम पूजन करते हैं, हमारी भूल को माफ कर दीजिये।

बड़ी श्रद्धा भक्ति से करने लगे पूजा। कभी आहार दिये नहीं थे। महाराज जी जानते थे। भोले-भाले हैं, अंजान हैं। यदि चौका से लौटते हैं तो ये सभी दुखी हो जायेंगे। सो स्वीकार ली पूजा उसी प्रकार जैसे राम ने शबरी के आतिथ्य को स्वीकारा था। हो गये निरन्तराय आहार।

आहार के बाद सभी भाइयों ने पूजन का नियम ले लिया। उन सभी का जीवन मुनिश्री के आहारदान के प्रभाव से बहुत अच्छा बन गया।

आचार्य महाराज संघ सहित विहार करते हुये एक स्थान पर रुके। काफी चलकर आये थे सो सभी शिष्यों के साथ पूज्य क्षमासागर भी उनके पैर दबाने लगे।

सभी थक गये होंगे ऐसा सोचकर आचार्यश्री ने कहा - तुम लोग भी शांति से बैठो। क्षमासागरजी ने कहा - आपके चरणों में बैठने से, आपकी सेवा से थकान अपने आप मिट जाती है।

थोड़ी देर तक आचार्यश्री पैर दबवाते रहे फिर बोले - आज बहुत थक गये हैं, थोड़ा विश्राम कर लेना चाहिये। सभी साधु तैयार हो गये विश्राम के लिये क्षमासागरजी ने कहा - आचार्यश्री आप भी विश्राम कर लीजिये।

आचार्यश्री मुस्कुराते हुये दिग्वंदना करने लगे और वंदना करके सामयिक में बैठते हुये बोले - मन तो विश्राम करने को कर रहा है पर समय तो सामयिक का हो गया है इसलिये मन की नहीं मानना। आत्मकल्याण के लिये सामायिक पहले करना है।

अनोखा संदेश पाकर मुनिश्री भी बैठ गये सामायिक पर।

भिलाई, राजनांदगाँव को पवित्र करते हुये आचार्यश्री जबलपुर आ गये। 1984 का चातुर्मास पिसनहारी मढ़िया को प्राप्त हुआ। यहीं 'विद्याधर से विद्यासागर' के लेखक सरलजी का परिचय मुनिश्री से हुआ। सरलजी समय-समय पर मुनिश्री से आचार्यश्री के विषय में जानकारी प्राप्त करते रहते थे। बातचीत के दौरान गुरु के प्रति मुनिश्री की आस्था से वे बहुत प्रभावित थे, उनकी स्मरणशक्ति और व्यवस्थित तर्कणा शक्ति ने उन्हें रोमाञ्चित कर दिया। वात्सल्य के तो मानों भंडार थे।

शीतावकाश प्राप्त हुआ था अतिशय क्षेत्र पनागर को। जहाँ शांतिनाथ भगवान् के चरणों में अध्ययन का कार्य होता था। ग्राम हो या नगर, सिद्धक्षेत्र हो या अतिशय क्षेत्र। आचार्यश्री समय-समय पर मुनिश्री की क्षमता देखकर अध्यापन का कार्य भार सौंपते थे। पनागर में आलापपद्धति संघस्थ साधुओं को समझाने का आदेश दिया था। बड़ी कुशलता से अध्यापन कार्य सम्पन्न भी किया था मुनिवर ने।

पनागर से विहार हो गया और चलते-चलते 1984 भी विदा ले चुका था। वर्ष 1985 प्रारम्भ हो चुका था, शहपुरा भिटौनी में ज्ञान गंगा प्रवाहित करता हुआ संघ गंजबासौदा पहुँच गया। 1985 का चातुर्मास अहारजी क्षेत्र को प्राप्त हुआ।

शीतयोग हेतु संघ नैनागिरजी आ गया। मुनि क्षमासागरजी अस्वस्थ हो गये। आचार्यश्री ध्यान रख रहे थे, फिर भी स्वास्थ्य दिनों दिन गिर रहा था, सो मुनि गुप्तिसागरजी व योगसागरजी को उनके साथ सागर जाने का यह कहकर आदेश दिया सागर में क्षमासागरजी का उपचार सही होगा, जल्दी स्वास्थ्य-लाभ मिलेगा।

आदेश सुनकर मुनिश्री व्यथित हो गये, उन्होंने विनय पूर्वक आचार्यश्री से निवेदन किया - गुरुवर! जहाँ मैंने माथा टेका, वहीं से आप मुझे अलग कर रहे हैं! आचार्यश्री ने वात्सल्य भरे स्वर में कहा - **जो शिष्य मेरी आज्ञा मानता है वह मुझसे दूर रहकर भी अत्यन्त निकट है और जो मेरी आज्ञा नहीं मानता वह मेरे निकट रहकर भी मुझसे दूर है।**

सुनकर झुक गये गुरु चरणों में। गुरु को छोड़कर जाने का मन नहीं था, पर गुरु आज्ञा को टाल भी नहीं सकते थे, सो मुनि योगसागर, क्षमासागर और गुप्तिसागर सागर आ गये।

सागर में स्वास्थ्य लाभ के साथ अध्ययन लाभ भी मिला। पण्डित पन्नालालजी साहित्याचार्य संस्कृत का अध्ययन कराते थे। धीरे-धीरे स्वास्थ्य में भी अंतर आ गया।

एक दिन मुनिवर ने नियम ले लिया - आज चाँदी के बर्तन में रखी

भोजन सामग्री नहीं लेंगे। सो उसी दिन संयोग ऐसा बना कि श्रावक चाँदी के गिलास में औषधि रखे हुये थे। उसके बार-बार आग्रह करने पर भी औषधि नहीं ली। श्रावक चिन्तित हो गये कि जो औषधि स्वास्थ्य-लाभ के लिये अति आवश्यक थी वह मुनिवर ने क्यों नहीं ली?

आहारोपरान्त विनय पूर्वक श्रावक ने चर्चा की, तब पता लगा कि मुनिश्री वृत्तिपरिसंख्यान तप का पालन करते रहते हैं।

आचार्यश्री का संदेश मिला, कर्रापुर पहुँचना है। गुरु दर्शन की तीव्र अभिलाषा थी, सो पहुँच गये गुरुचरणों में। चरण रज लगा ली शीश पर।

गुरुचरण मिले मानों सब कुछ मिल गया, पर साथ एक ही दिन का मिला। आचार्यश्री को केसली पंचकल्याणक के लिये विहार करना था। केसली और वरायठा के पंचकल्याणक एक साथ थे सो आचार्यश्री ने मुनि योगसागर, क्षमासागर, गुप्तिसागर को आदेश दिया वरायठा के पंचकल्याणक के लिये प्रस्थान करना है। सिंघईजी को पता चला क्षमासागरजी को विहार का संकेत मिला है। चिन्तित हो गये। आचार्यश्री के चरणों में निवेदन किया - आचार्यश्री! महाराज जी वरायठा जा रहे हैं क्या बात है? पूर्व में आपने सागर भेजा था स्वास्थ्य लाभ के लिये, पर अब आपसे दूर रहना क्या उचित होगा? आचार्यश्री बोले - मैं कब तक अंगुली पकड़कर चलाऊँगा? चिन्ता मत कीजिये मैं उन्हें अपने पैरों पर खड़ा होना सिखा रहा हूँ। यह क्षमता दूर रहने पर ही आयेगी।

सुनकर आश्वस्त हो गये सिंघई जी।

बकस्वाहा में पंचकल्याणक होना था। आचार्यश्री ने पूज्य क्षमासागर को आदेश दिया पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न कराने का। वे क्षमासागर की कार्य कुशलता से परिचित थे। समाज के प्रतिनिधि आकर कहने लगे - आचार्यश्री! कार्य बहुत बड़ा और कठिन है। आपके सान्निध्य में पंचकल्याणक होता तो अच्छा होता, अभी महाराज जी नये-नये हैं। आपके और इनके अनुभव में भी अंतर है।

आचार्यश्री ने विश्वास से कहा - मैंने ये घड़े बहुत पकाकर बनाये हैं।

अच्छी तरह संस्कार दिये हैं। कार्य बहुत अच्छी तरह सम्पन्न होगा। आप लोग चिन्ता न करें।

आचार्यश्री से दूर जाने का मन न था, पर गुरु आज्ञा का पालन करना था। शिष्य के चेहरे पर गुरु वियोग की पीड़ा झलक रही थी। गुरु ने ममता भरा हाथ रख दिया सिर पर। कहने लगे - कुशलता से कार्य सम्पन्न करवाना।

गुरु चरणों में अपने श्रद्धा जल की बूँदें अर्पित कर दीं और चल पड़े बकस्वाहा की ओर। नगर सीमा पर बैण्ड बाजों की धुन के साथ मुनिराजों की भव्य अगवानी हुई। पूज्य क्षमासागरजी के निर्देशन में कार्यक्रमों की गरिमा बढ़ गई। कार्यकर्ता उत्साहित हो गये। सानन्द पंचकल्याणक सम्पन्न हो गया।

आचार्यश्री को संदेश मिला कि उचित मार्गदर्शन में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा ऐतिहासिक बन गई। वे मुस्कुरा दिये शिष्यों की कार्यकुशलता और विनयशीलता पर। गौरव से गद्‌गद् हो गये। त्रय मुनिराज चलते रहे गुरु के संकेतों पर। बजाते रहे धर्म का बिगुल। फहराते रहे धर्मध्वजा। पथरिया होते हुये दमोह में ग्रीष्मकाल किया फिर गढ़ाकोटा की ओर पहुँचे।

सन् 1985 में माँ का स्वास्थ्य गंभीर हो गया। खाना पीना बंद हो गया। सभी चिन्तित थे। उनके शरीर की हालत ठीक नहीं थी, डॉक्टरों ने भी अपने हाथ उठा लिये थे। कोई चारा न था, मात्र पंचपरमेष्ठी की शरण में जाने का प्रयास कर रहे थे सभी।

कभी समाधिभावना सुनाते, कभी वैराग्यभावना और कभी सुनाते पूज्य क्षमासागरजी के प्रवचन।

एक दिन चेतना विलुप्त-सी हो गई। आज माँ के वचन भी अस्पष्ट हो गये थे। पूज्य क्षमासागर के प्रवचन चल रहे थे टेप में।

कक्काजी ने पूछा - क्या सुन रही हो? आशा देवी ने धीरे से कहा - मुन्ना के प्रवचन सुन रही हूँ। ऐसा कहते हुये आँखों में आँसू भर आये थे पर उन्होंने मन ही मन नमन कर लिया मुनि क्षमासागरजी को।

देव-शास्त्र-गुरु की शरण को प्राप्त कर उन्होंने धर्मध्यान पूर्वक मरण को प्राप्त किया।

सभी परिवार वाले दुखी थे। सिंघईजी के ऊपर भी वज्राघात हुआ था। उनकी जीवन–संगिनी ने उनका साथ छोड़ दिया था। पुत्र वियोग की पीड़ा से वे पूर्व से ही बेचैन थे। परस्पर संवाद से मन हल्का हो जाता था। अब किसे सुनाऊँगा अपने मन का दुःख?

माँ के स्वर्गवास की चर्चा मुनिश्री के कानों में पड़ी। सुनकर मन दुःखी हो गया, फिर भी अपने आपको संभाल लिया। विचार करने लगे – वो मेरी गृहस्थ जीवन की माँ थी। उन्होंने ही मुझे जीवन दिया, संस्कार दिये। तभी आज मुनि पद को प्राप्त कर पाया।

कुछ दिनों बाद पता चला सिंघई जी (गृहस्थ जीवन के पिता) बहुत विचलित हैं, सो एक संदेश लिख भेजा एक श्रावक को। उस संदेश में था जैन दर्शन का रहस्य। उस पत्र में थी एक भव्यात्मा को श्रद्धाञ्जली। उस पत्र में थी प्रशस्त भावना एक साधक की।

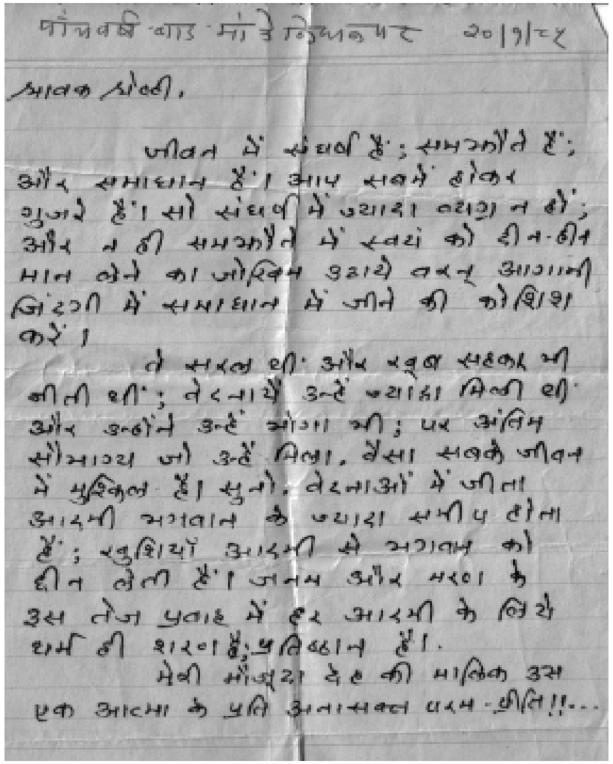

पाँचवर्ष बाद मां के निधनपर 20/7/86

श्रावक सोधी,

जीवन में संघर्ष हैं; समझौते हैं; और समाधान हैं। आप सबमें होकर गुजरे हैं। सो संघर्ष में ज्यादा व्यग्र न हों; और न ही समझौते में स्वयं को हीन-हीन मान लेने का जोखिम उठाये वरन् आगामी जिंदगी में समाधान में जीने की कोशिश करें।

वे सरल थीं और खूब सहकर भी जीती थीं; वेदनायें उन्हें ज्यादा मिली थीं और उन्होंने उन्हें भोगा भी; पर अंतिम सौभाग्य जो उन्हें मिला, वैसा सबके जीवन में मुश्किल है। सुनो, वेदनाओं में जीता आदमी भगवान के ज्यादा समीप होता है; खुशियाँ आदमी से भगवान को छीन लेती हैं। जनम और मरण के उस तेज प्रवाह में हर आदमी के लिये धर्म ही शरण है; प्रतिष्ठान है।

मेरी मौजूदा देह की मालिक उस एक आत्मा के प्रति अनासक्त परम-प्रीति!!...

पत्र पढ़कर ज्ञान चक्षु खुल गये सिंघईजी के, बोध जागा। पूज्य क्षमासागरजी को अंजुली बाँधकर नमन कर लिया और सोचने लगे – वास्तव में कोई किसी का नहीं है। संसार नश्वर है। एक दिन सभी को जाना है। जितनी आयु मुझे मिली है उसके एक–एक पल को समता से संवारना है।

सन् 1986 का चातुर्मास गढ़ाकोटा (पटेरियाजी) को प्राप्त हो गया। मुनि गुप्तिसागरजी की जन्मस्थली गढ़ाकोटा ने अपने गौरव पुत्र और सुपरिचित क्षमासागर के आगमन का भव्य उत्सव मनाया। लगता था राम–लक्ष्मण वनवास से पाँव–पाँव अयोध्यानगरी में प्रवेश कर रहे हैं।

मुनि गुप्तिसागर की गृहस्थ जीवन की माँ फूली न समाई। दोनों मुनिराजों में उन्हें कभी गुरु की छवि दिखाई देती, कभी पुत्रों सा वात्सल्य उमड़ आता। सो आ जाती पटेरियाजी कभी आहार देने, कभी शास्त्र सुनने, कभी अपनी शंका का समाधान करने। संत समागम का गहरा प्रभाव पड़ा कि उन्होंने प्रतिमा धारण कर ली। एक दिन पूज्य क्षमासागरजी से कहने लगीं –

महाराजजी ऐसा आशीर्वाद दीजिये मेरा शांति से समाधिमरण हो। पूज्य क्षमासागरजी ने कहा – सामायिक के काल में हमेशा समाधि की भावना भाते रहना। भावना भव नाशिनी होती है। बारहभावना का निरन्तर चिन्तन करना। भावना अवश्य पूर्ण होगी।

माँ ने नमोऽस्तु कर पुनः कहा – महाराजजी! मेरी इच्छा है पटेरिया जी में मेरी समाधि हो।

महाराजजी ने कहा – स्थान विशेष का मोह क्यों?

माँ ने कहा – महाराजजी! पटेरियाजी अतिशय क्षेत्र है। मुझे भगवान् पार्श्वनाथ की शरण हमेशा प्राप्त हुई है सो भक्ति वश ऐसा कह दिया।

पूज्य क्षमासागर का आशीर्वाद पाकर माँ प्रसन्न हो गईं। उसी वर्ष से साधना करने लगीं समाधि की। निरन्तर भावनाओं का चिन्तन करने लगीं। उनके पुण्य योग से करीब डेढ़ दशक बाद प्रशान्तमतीजी के सान्निध्य में वे समाधि की साधना करते हुये मुक्तिश्री क्षुल्लिका के रूप में समाधिस्थ हो गईं।

मुनिवर के समागम में गढ़ाकोटा नगर में अनेक रचनात्मक कार्य हुए।

जैन और जैनेतरों ने आचरण का नया पाठ सीखा। ज्ञान की अद्‌भुत वर्षा हुई। श्रावक और मुनियों के बीच वात्सल्य बहुत गहरा हो गया। पर अब चातुर्मास निष्ठापन हो गया था मुनियों को संकेत मिल चुका था। आचार्यश्री के आदेश से वे आगे बढ़ गए। गढ़ाकोटावासी रो रहे थे, उनको रोता देखकर मुनिश्री की आँखें भी भर आईं। किन्हीं ने उनसे पूछा – मुनिश्री! आपको भी श्रावकों से मोह हो गया है? मुनिश्री ने उत्तर दिया – घर का मोह तो छोड़ दिया पर श्रावकों से धर्मानुराग हो जाता है। श्रावकों के गुण मुनियों का ध्यान अपनी ओर खींच लेते हैं। संतों को धर्मानुराग तो होता है पर मोह नहीं।

खुरई की धर्म प्रधान समाज का निवेदन क्षमासागरजी से लेकर आचार्य श्री के हृदय में स्थान पा गया। अतः उनकी आज्ञा से 1987 का वर्षायोग खुरई में सम्पन्न हुआ। पूज्य क्षमासागरजी के साथ पूज्य योगसागरजी एवं पूज्य स्वाभावसागरजी भी अवस्थित थे। वहाँ प्रवचन, वाचना के माध्यम से जिनवाणी का प्रसाद घर-घर पहुँचाया गया। बीच-बीच में शिविर एवं धार्मिक कक्षायें आयोजित की गईं और श्रावक रूपी स्लेट पर संस्कारों की इबारत लिखी गई।

खुरई के लोग आपस में बतियाते रहते। ऐसा प्रभावनाकारी वर्षायोग जीवन में पहली बार देखा। यही स्थिति 1988 में मंडीबामौरा में बनी थी जब वहाँ के हर श्रावक पर मंदिर और मुनिश्री का जादू सवार था। मंडीबामौरा में भी साधुत्रय ने चर्या और चिन्तन शैली से प्राण-प्राण को प्रभावित किया था। चार महीने तक श्रावकों के घर रिश्तेदारों से तो भरे ही रहे, देश के विभिन्न अंचलों से आये भक्तों, विद्वानों और कलाकारों से भी भरे रहे। कहें- मंडीबामौरा में भी वर्षायोग का नव कीर्तिमान लिखा गया। आदमी की चर्या में हुये सुधार की तरह, मंदिर और धर्मशाला में भी आवश्यक सुधार किया गया।

मुनिराज के व्यक्तित्व की सुगन्ध दूर-दूर तक पहुँचने लगी, मुनिवर का आशीष समेटने और उनकी प्रेरणा पाने आने लगे श्रावकों के समूह। मुनिश्री के दर्शन कर वे धन्य हो जाते थे। कुछ न कुछ लेकर वे अपने घर वापस लौट जाते थे उनका खाली मन आत्मविश्वास से भर जाता था और जीवन धन्य हो जाता था परिषहजयी संत के उद्‌घोष से।

मंडीबामौरा को यह स्वर्ण अवसर बड़ी कठिनता से प्राप्त हुआ था सो वे सभी चातुर्मास के एक-एक पल को अर्थवान बनाकर जी रहे थे। पता ही न चला कब चातुर्मास समाप्त हो गया और मुनिश्री के चरण चंचल हो चले आचार्यश्री के संकेतों पर।

सन् 1988 में क्षुल्लक ध्यानसागर जी को भी मुनि क्षमासागर के साथ रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। वे मुनिश्री का स्मरण कर आज भी रोमाञ्चित होकर कहते हैं – मुनि क्षमासागर जी हमेशा हित-मित-प्रिय वचनों का प्रयोग करते थे। एक बार मैंने स्त्री शब्द का प्रयोग किया तब बड़े स्नेह से उन्होंने कहा कि स्त्री शब्द से हमारे मन के भाव नारी के प्रति सौहार्दपूर्ण नहीं हो पाते जबकि माँ, बेटी, नारी, बहिन, बिटिया शब्द हमें नारी जाति के प्रति गौरव पूरित कर देते हैं। उस दिन से मैंने स्त्री शब्द का कभी प्रयोग नहीं किया।

एक बार मुझे बुखार आया था ठंड के कारण काँप रहा था। मेरे मना करने पर भी उन्होंने मुझे चटाई ओढ़ाई और माँ के जैसा वात्सलय दिया।

टड़ा ग्राम में गजरथ महोत्सव होना था, वहाँ के लोग चाहते थे आचार्यश्री के समागम में उनका कार्यक्रम सम्पन्न हो, पर आचार्य श्री ने मुनि क्षमासागरजी के साथ दो महाराजों को वहाँ जाने का संकेत दिया। विहार करने के पहले गुरुवर ने समझाया कि सुनो – छोटे-छोटे गाँवों में होकर जाना है। दो-चार लोग भी आकर यदि निवेदन करें तो धर्म की दो बातें करुणाभाव से उन्हें सुनाना। दूसरी बात जो आगम अनुकूल साधुजन आयें उनसे राग-द्वेष न करना। तीसरी बात, भगवान् के दीक्षा कल्याणक के समय अपनी तरफ से दीक्षा संस्कार देने का आग्रह मत करना। भगवान् तो स्वयं दीक्षित होते हैं।

तीनों बातों को गाँठ में बाँधकर चल पड़े गुरुवर का आशीर्वाद लेकर। छोटे-छोटे गाँव मिले करुणा के सागर ने सभी को धर्मोपदेश दिया। दो साधु संघों का मिलन हुआ, सभी से यथायोग्य विनय की।

दीक्षा कल्याणक का दिन था, सभी संघों के साधु एक ही मंच पर आसीन थे, एक मुनिराज पूज्य क्षमासागर से ज्येष्ठ थे मुनिश्री का कहना था दीक्षा विधि वे ही सम्पन्न करायें। पर मंच पर सभी ने पूज्य क्षमासागर से ही

दीक्षा विधि कराने का आग्रह किया। मुनिश्री ने पावन कार्य सम्पन्न किया।

एक ऐतिहासिक महोत्सव की चर्चा सुनकर गुरुदेव प्रसन्नता से भर गए।

गढ़ाकोटा वासी पुनः मुनिश्री की वाणी का अमृत पान करना चाह रहे थे सो आचार्य श्री के चरणों में निवेदन करने पहुँचे। आचार्य श्री का आशीर्वाद पाकर सभी के मन में उत्साह भर गया और विशाल जन समूह के साथ चल पड़े गढ़ाकोटा की ओर। 1989 के चतुर्मास में पुनः संतों का समागम प्राप्त हुआ गढ़ाकोटा वासियों को। अस्वस्थता के बीच में भी मुनिश्री निरन्तर बारह भावनाओं का चिन्तन करते रहते थे। उनके मंगल प्रवचन की धारा सुनकर जन समुदाय मंत्रमुग्ध हो जाता था। चातुर्मास के दौरान अस्वस्थता चरम सीमा पर थी, फिर भी साधक ने अपनी साधना और विशुद्धि को नहीं छोड़ा था। गढ़ाकोटा नगर में अपार जनसमुदाय के बीच बैठे मुनिश्री के मंगल उपदेश आज भी कानों में गूँजते हैं। मैं अकेला हूँ, यह पाठ मात्र कहते नहीं, बल्कि अपने चिन्तन की धारा में भी जोड़े रहते हैं।

उनके श्रीमुख से सुना ये प्रस्तुत प्रसंग उनकी आकिञ्चन्य भावना को उद्भाषित करता है - एक मुनि महाराज और एक ब्रह्मचारी हमारे साथ थे। इतवार का दिन था बाहर पाण्डाल में प्रवचन होते थे। हम मंदिर में बैठा करते थे। उस दिन तीव्र ज्वर था। मुनि गुप्तिसागरजी महाराज ने कहा भी कि मैं आपको अकेले छोड़कर नहीं जाऊँ। मैंने कहा - नहीं आप जाओ, लोगों को धर्मध्यान कराओ, मैं शांति से अपना समय व्यतीत करूँगा। उनके जाने के बाद फीवर (ज्वर) बढ़ने लगा। जब किसी को कोई तकलीफ होती है तो वह कितना ही निस्पृही क्यों न हो उसके मन में एक क्षण को तो विचार आता ही है कि कोई पास में होता। यही फीलिंग (भावना) थोड़ी देर के लिये आई। मैंने चटाई से सिर बाहर निकालकर देखा - दूर-दूर तक कोई नहीं है। किसी की आवाज भी नहीं आ रही। पाण्डाल बहुत दूर है, वहीं प्रवचन हो रहा है। यहाँ कोई भी नहीं है और तब उन क्षणों में लगा कि सचमुच कोई किसी का इसलिये नहीं है कि अपने सुख-दुख को तो हमें अकेला ही भोगना है, रागवश या द्वेषवश। कहते हैं वियोग में, विरोध में कोई किसी का नहीं है। अपने कर्मों के

सुख-दुख भोगने में हम कितने एकाकी हैं, कितने अकेले हैं और हम व्यर्थ ही अपने पराये का भेद करके अपने जीवन में अहंकार और संक्लेश करते रहते हैं। (मैं पेन और डायरी साथ ही रखता था) उन क्षणों का लिखा हुआ आज भी मेरे पास रखा हुआ है कि - आज तक कहता था कि कोई किसी का नहीं। आज मैंने अनुभव किया कि कोई किसी का नहीं, क्योंकि अपने सुख-दुख में हम अकेले हैं।

चातुर्मास समापन की ओर है। अबाध रूप से ज्ञान गंगा चार माह बहती रही गढ़ाकोटा में। गमन की बेला का दृश्य बड़ा दुःखमय था। श्रावक-श्राविकायें रो रहे थे, पाद-प्रक्षालन कर रहे थे अपनी अश्रुधारा से मुनिराज के चरणों का। श्रावकों की अश्रुभरी आँखों ने मुनिश्री के वात्सल्य को उभार दिया।

जगह-जगह जिनधर्म की ध्वजा फहराते हुये बढ़ते जा रहे थे आचार्यश्री के संकेतों पर। वे बाँसा तारखेड़ा में विराजमान थे। उसी समय कटंगी से आर्यिका दृढ़मतीजी का विहार कुण्डलपुर की ओर हो रहा था। अरुण भैया विहार करा रहे थे। जवेरा में माताजी रुकीं थी। ब्रह्मचारी भैया अरुण (कटंगी) मुनिश्री के दर्शनार्थ बाँसा पहुँचे। उसी दिन ब्रह्मचारिणी अनीता (कटनी) आचार्यश्री का संकेत लेकर बाँसा पहुँची। संध्याकालीन आचार्यभक्ति हो चुकी थी, उसके बाद बहिनें महाराज के दर्शन नहीं कर सकती, यह हमारी आचार्य परम्परा का नियम है।

सो दीदी ने भैया अरुण को वह पत्र दे दिया और कहा-यह पत्र महाराजजी को दे देना। भैयाजी पत्र लेकर महाराजजी के कक्ष में गये। नमोऽस्तु कर पत्र रख दिया बाजोट पर।

महाराजजी ने पत्र पढ़ा, मुस्काये। उस पत्र में चातुर्मास हेतु कटंगी का संकेत था।

महाराजजी मुस्कराते हुये ब्रह्मचारी जी से बोले - इस पत्र में क्या लिखा है तुम्हें मालूम है?

नहीं, मुझे नहीं मालूम। पत्र में क्या लिखा है? विनय पूर्वक उत्तर दिया

भैया ने।

दीदी और तुम कुण्डलपुर से एक साथ आये हो?

महाराजजी! मैं आर्यिका दृढ़मतिजी के साथ कटंगी से आया हूँ।

दीदी से तुम्हारी कुछ बात हुई है?

दीदी से मेरी कुछ बात नहीं हुई, संध्याकाल हो जाने से दीदी आपके पास नहीं आ पाई सो यह पत्र मेरे हाथ से आपके पास भेज दिया।

ब्रह्मचारी अरुण की सहजता पर मुनिश्री मुस्कुरा दिये फिर अरुण भैया से स्वास्थ्य सम्बन्धी चर्चा हुई।

आर्यिका दृढ़मती के साथ कटंगी के नवयुवक कुण्डलपुर पहुँच गये। जहाँ बड़े बाबा के विशाल प्रांगण में छोटे बाबा संघ सहित विराजमान थे।

दूसरे दिन कटंगी के मुनिभक्त नवयुवकों ने चौका लगा लिया। पड़गाहन के लिये 25-30 नवयुवक खड़े थे उनकी भक्ति-भावना से आचार्यश्री का निरन्तराय आहार हो गया। नाचते-झूमते सभी पहुँच गये गुरु की वसतिका में। आर्यिका दृढ़मति के कटंगी प्रवास की चर्चा हुई, वे कटंगी वासियों की सेवाभावना से परिचित थे।

आचार्यश्री प्रसन्न मुद्रा में बोले - कटंगी वालों के दोनों हाथ में लड्डू हैं। यहाँ आहार लाभ मिला है वहाँ क्षमासागरजी चातुर्मास हेतु कटंगी के लिये विहार कर रहे हैं। मुनि समतासागर, प्रमाणसागर भी शहपुरा से कटंगी पहुँच रहे हैं। तीन-तीन शुभ समाचारों से सभी भाई गद्‌गद् हो उठे। जयकारों से हाल अनुगुंजित हो गया।

आचार्यश्री से आशीर्वाद लेकर चल पड़े जहाँ पूज्य क्षमासागरजी विराजमान हैं। उनसे चातुर्मास का आग्रह भी करना है। आचार्यश्री का संकेत मिल ही गया था।

मन में बहुत दिनों से अभिलाषा थी कि कटंगी वालों को पूज्य क्षमासागर जी का समागम मिले। मन की भावना वर्षायोग से फलीभूत हो जायेगी, ऐसा सोचकर सभी भाई नोहटा पहुँचे। उनका जयनाद उनके उत्साह को स्पष्ट कर रहा था। निवेदन किया पूज्य क्षमासागरजी से।

महाराजजी! आचार्यश्री से आशीर्वाद मिल गया है, कटंगी में वर्षायोग के लिये, सो आप कटंगी की ओर विहार करने की कृपा करें।

गुरु आज्ञा का पालन हमें करना है। ऐसा कहकर विहार की स्वीकृति दे दी। तपती दोपहरी में चल पड़े चरण कटंगी की ओर। साथ में ब्र.अरुण के नेतृत्व में आगे बढ़ता समर्पित युवाओं का दल। जो बड़े उत्साहित मन से विहार की व्यवस्थायें बना रहा था। जबेरा को भी समागम मिला एक दिन का। सिंग्रामपुर के श्रावकों ने भी मुनिवर की भव्य आगवानी की, प्रार्थना की। अमृत वाणी से निनादित हो गये हृदय।

कटंगी वासी जुट गये वर्षायोग की तैयारियों में। चर्चायें होने लगीं व्यवस्था सम्बन्धी। चौके वाले आहार व्यवस्था बनाने लगे। शहपुरा से पूज्य समतासागरजी और प्रमाणसागरजी भी कटंगी आ गये। दूसरे दिन नगर सीमा पर द्वय मुनिराजों के साथ कटंगी वालों ने पूज्य क्षमासागर की भव्य आगवानी की।

जैन-जैनेतर देख रहे थे संतों का मिलन। मोक्षमार्ग के पथिकों का संवाद कितना संयत और भावना पूर्ण होता है। देखकर आँखें भर आईं दर्शकों की। जल्दी-जल्दी विहार हुआ था। विहार में विश्राम को अवकाश न मिला था ऊपर से जेठ की तपन। पैरों में छाले आ गये थे। श्रावकों ने शीतोपचार किया, उचित वैय्यावृत्ति की और जुट गये व्यवस्थाओं में।

दो दिन बाद मुनिश्री को पता चला, आचार्यश्री मुक्तागिर वर्षायोग हेतु विहार कर रहे हैं और कोनीजी पहुँचने वाले हैं। गुरुदर्शन की तीव्र अभिलाषा थी। कोनीजी कटंगी से करीब 20-22 किलोमीटर दूर था, सो मन बना लिया जाने का।

जैसे ही श्रावकों ने सुना मुनिगण विहार करने वाले हैं, सभी निराश हो गये, अवाक् रह गये। सभी आ गये मुनिश्री से आग्रह करने।

महाराजजी! हमें तो चातुर्मास का संकेत मिला था और आप विहार कर रहे हैं। हम लोगों की प्रार्थना सुन लीजिये, रुक जाइये महाराज जी। वे देख रहे थे भक्तों की भावना। सुन रहे थे उनके अनुरोध भरे वचन। पर गुरु दर्शन की भावना से उनको विहार करना था सो वात्सल्य भरे वचनों से बोले-गुरु

महाराज के दर्शन की अभिलाषा है, फिर वहाँ जैसा आचार्यश्री का आदेश होगा वैसा करेंगे।

ऐसा कहते हुये विहार हो गया। रोने लगे श्रावक गण। परोसी थाली का लाभ न मिल पाया। इस उम्मीद से कि कोनीजी से गुरु दर्शन कर मुनिश्री पुनः कटंगी आ जावेंगे कुछ श्रावक अनुमान लगा रहे थे। कुछ का कहना था अब तो वापस नहीं आयेंगे। आशा-निराशा के भंवर जाल में कटंगी वाले मुनिश्री की विदाई कर रहे थे।

कदम तेजी से बढ़ रहे थे कोनीजी की ओर। गुरु दर्शन की उत्कण्ठा थी। सोचते जा रहे थे - आचार्यश्री कोनीजी पहुँच चुके होंगे। मैं भी जल्दी पहुँच जाऊँ, ऐसा सोचकर बढ़ते जा रहे थे। थाना ग्राम ही पहुँच पाये और शाम हो गई। रात्रि विश्राम करने वहीं रुकना पड़ा। भोर होते ही चरण चल पड़े। कोनीजी पहुँचने पर ज्ञात हुआ आचार्य महाराज तो पाटन पहुँच गये हैं, वहीं आहार होंगे। मुनिश्री पाटन की ओर जाने को तैयार हो गये। श्रावकों ने विनय की - महाराज आप आहारोपरान्त ही विहार करें। गर्मी अधिक है आपको पाटन पहुँचने में बहुत देर हो जाएगी। उन्होंने श्रावकों की बात मान ली और जल्दी-जल्दी शुद्धि करने लगे। श्रावकों की भावना देखकर भैया संदेश लेकर पाटन की ओर गये।

पाटन पहुँचकर ब्रह्मचारी अरुण ने आचार्यश्री को बताया - आचार्य श्री! क्षमासागर जी कोनीजी पहुँच गये हैं, आहारचर्या के बाद पाटन के लिये विहार करेंगे।

आचार्यश्री के चेहरे पर आक्रोश था बोले - मैं क्षमासागर का इंतजार कर रहा हूँ। विहार भी करना है। क्षमासागर से कह देना - ठीक एक बजे विहार हो जायेगा।

अरुणभैया आचार्यश्री का संकेत देने शीघ्रता से कोनीजी पहुँचे। महाराज जी आहारचर्या हेतु निकलने ही वाले थे। सुना दिया आचार्यश्री के संदेश। यह भी बता दिया कि श्रावकों के द्वारा आपको जो समाचार भेजे थे, आप तक नहीं पहुँचे सो आचार्यश्री के चेहरे पर आक्रोश के भाव थे। ऐसा सुनकर मुनिश्री

उदास हो गए वे बहुत शीघ्र गुरु के दर्शन करने आतुर हो गये।

शुद्धि हो गई थी सो बड़ी शीघ्रता से आहार लेकर विहार कर दिया पाटन की ओर। पैर जल रहे थे, पर शरीर की परवाह न थी। जल्दी आचार्यश्री के दर्शन हों। मेरे कारण उनके विहार में विलम्ब न हो। ऐसा मानकर ठीक एक बजे पाटन के बड़े मंदिर पहुँच गये जहाँ गुरुवर विराजमान थे।

आचार्यश्री सामायिक से निवृत्त हुये, देखा क्षमासागरजी समय पर आ गये हैं। आशीर्वाद देकर बोले - 22 किलोमीटर चलना है चल लोगे?

स्वीकृति में सिर हिला दिया, आचार्यश्री से चर्चा करना चाहते थे पर समय न मिल पाया। सोचने लगे, आचार्यश्री जल्दी में हैं। जहाँ विश्राम होगा, वहाँ चर्चा कर लेंगे। गुरु के दर्शन हो गये, चरण रज मिल गई यह क्या कम है?

मौसम की प्रतिकूलता और समय की कमी के कारण आचार्यश्री कहीं न रुके, पहुँच गये भेड़ाघाट। शांतिनाथ जिनालय में विश्राम किया।

पूज्य क्षमासागर के चरण भेड़ाघाट चौराहे तक ही पहुँच पाये कि संध्या वधु ने उनके पैरों में बंधन डाल दिये। विश्राम वहीं करना पड़ा। भोर होते ही चल पड़े चरण चिह्नों पर। जो चिह्न भेड़ाघाट के शांतिनाथ जिनालय में भगवान् की भक्ति में लीन थे।

पूज्य क्षमासागरजी ने आचार्यश्री से कहा - आचार्यश्री! हमने सोचा था रास्ते में आप कहीं बैठेंगे? विश्राम करेंगे आपके चरण सान्निध्य का लाभ मिलेगा, चर्चा होगी। आचार्यश्री समझ गये मुनिश्री के मनोभाव को। क्षमासागर जी गुरु चरणों में समय-समय पर अपने विचारों को सुनाकर उनका समाधान पाना चाहते हैं। जिस प्रकार एक बेटा अपनी माँ के सान्निध्य में अपेक्षा करता है। समय का अभाव था आचार्यश्री के पास। मुस्कुराते हुये उत्तर दिया - थकान तो लग रही थी, पर मन में आया यदि विश्राम करूँगा तो भगवान् शांतिनाथ के दर्शन न मिल पायेंगे। दर्शन की तीव्र उत्कण्ठा थी दर्शन होते ही सारी थकान दूर हो गई। आचार्यश्री के श्रीमुख से निकला एक-एक शब्द क्षमासागरजी के हर प्रश्न का समाधान दे रहा था।

बहुत सारी ऊर्जा प्राप्त हो गई श्रीमुख के निकले वचनों से। मन प्रसन्नता से भर गया। चरणों में माथा टेक दिया। धन्य है मेरा भाग्य ऐसे गुरु की छत्र छाया मुझे प्राप्त हुई है। आचार्यश्री ने एक संदेश दिया समाज को। आज लोग मंदिर बहुत बड़ा बनाते हैं लेकिन प्रतिमा की भव्यता और विशालता की ओर उनका रुझान नहीं होता। वर्तमान में मूर्ति की भव्यता की ओर ध्यान जरूरी है। मढ़िया जी पहुँच गये आचार्यश्री संघ सहित। जितना समय मिलता निहारते रहे गुरु का श्री मुख। सुनते रहे श्रीमुख से जैन-गीता के छंद। सीखते रहे जीवन जीने के सूत्र।

कटंगी के नवयुवक साथ में विहार कर रहे थे। उनको पूरी उम्मीद थी कि मढ़ियाजी से पूज्य क्षमासागरजी का विहार चातुर्मास हेतु कटंगी की ओर होगा। सामायिक के बाद शहपुरा समाज ने आचार्यश्री से पूज्य क्षमासागर के चातुर्मास हेतु प्रार्थना की। आचार्यश्री ने अनुमति प्रदान कर दी। जब कटंगी के भाई-बहिनों को मालूम हुआ कि उनके हाथ से चातुर्मास का पुण्य अवसर निकल चुका है तो वे पूज्य क्षमासागर के पास पहुँचे। वे सभी दुःखी थे। उनके मन की पीड़ा क्षमासागरजी ने पढ़ी। उन भाई-बहिनों को बड़े स्नेह से समझाते हुये कहा - भविष्य में आप लोगों को सान्निध्य अवश्य मिलेगा। पुनः आग्रह किया तो मुनिश्री ने कहा - पनागर जाइये पूज्य समयसागरजी का वर्षायोग अवश्य मिलेगा। उनकी तीव्र भावना जुड़ी थी कटंगी वासियों के प्रति। किसी को दुःखी नहीं देख सकते। मुनिश्री के मुख से निकले शब्द साकार हो गये। समाज के थोड़े से प्रयास से पूज्य समयसागरजी, पूज्य उत्तमसागरजी, पूज्य चिन्मयसागरजी का 1990 का पावन वर्षायोग कटंगी को प्राप्त हो गया।

पूज्य क्षमासागरजी का चातुर्मास शहपुरा में चल रहा था। फिर भी कटंगी की जानकारी और पूज्य समयसागरजी के प्रति सहृदयता के कारण उनको समाचार मिलते थे।

1990 के शहपुरा चातुर्मास में भारी धर्म प्रभावना हुई, जिनालयों के जीर्णोद्धार मुनिश्री के मार्गदर्शन में किये गये, विधान आदि धार्मिक अनुष्ठान उनकी देशना से सम्पन्न किये गये।

महाराज की डायरी में अनूठा कविता संग्रह था। उनकी लेखनी नित्य

नये संदेश देती रहती थी। श्रावकों को भी उनकी रचनाएँ सुनने मिल जाती थी, हृदयस्पर्शी कवितायें उन्हें विभोर कर देती थीं। कुछ न कुछ पाकर वे सभी गुनगुनाते हुये अपने घर जाते थे।

अचानक डायरी गुम गई, सूचना-पटल पर सूचना लिखी गई, बहुत खोज हुई पर डायरी का पता न चला। किसी विघ्न डालने वाले ने द्वेष से ऐसा कृत्य किया था वह मिलती कैसे?

श्रावक आते, कविताएँ सुनाने का आग्रह करते, पर उनको अब कविताएँ सुनने नहीं मिलती थीं। श्रावकों के चेहरे की निराशा भी मुनिश्री पढ़ रहे थे पर उनको अब लिखने में उत्साह नहीं रहा।

एक दिन बाजौटा पर एक पर्ची रखी थी। किसी शुभचिंतक ने अपनी भावनायें प्रेषित की थी या कहें एक संदेश दिया था, उस संदेश में छिपी थी अनुनय, विनय और भक्त की भावना। मुस्कुराते हुए देखा, उसमें लिखा था -

साज ही तो गुमा है संगीतकार तो अभी मौजूद है।

गुमनाम संदेश ने कलम में गति ला दी और भर दिया हृदय में स्पन्दन। लिखने लगे पुनः कवितायें। सुनाने लगे अपने भक्तों को, जो आश लगाये बैठे थे बहुत दिनों से।

पता ही न चला कब चार माह बीत गये, संतों के चरण चल पड़े गोटेगाँव की ओर। आचार्यश्री के आदेश से शीतकाल का सुअवसर गोटेगाँव को प्राप्त हो गया। शहपुरा चातुर्मास की उपलब्धियों को सुनकर गोटेगाँव वासियों ने प्रयास किया था। उनका पुण्य जागा, ज्ञान की गंगा बहने लगी नगर में।

धार्मिक आयोजनों को गति मिलने लगी। दूर-दूर से श्रावक आने लगे दर्शन करने, सुनने और आहार देने।

कटंगी की विदुषी बहिन ब्रह्मचारिणी विनीता भी मुनिश्री के दर्शनार्थ आई। उनकी चर्चा मुनिश्री से होती रहती थी, अध्ययन के बारे में मुनिश्री कहने लगे - मैंने दीक्षा के बाद तीन साल बहुत अध्ययन किया पर अब मैं अधिक पढ़ाई नहीं कर पाता। करणानुयोग और गणित में मुझे रुचि नहीं है। जो अच्छा

लगे उसे ही पढ़ता हूँ। मैं पुस्तक से अधिक व्यक्ति को महत्त्व देता हूँ। बड़ी आशा से लोग आते हैं, मैं उनके विश्वास को ठुकरा दूँ यह मुझसे नहीं होगा।

प्रत्येक व्यक्ति में भगवान् बनने की शक्ति है मालूम नहीं। उस शक्ति की अभिव्यक्ति में कब कौन निमित्त बन जाये पुस्तक भी तो हमें यही सिखाती है।

दीदी ने कहा – महाराजजी! आपने तो सब पढ़ लिया है, अब तो कोई आपको पढ़े, आप दूसरों के द्वारा पढ़ने योग्य हो गये हैं।

मुनिवर बोले – किसी को बिना परीक्षा या आधार के बड़ा नहीं कहना चाहिये। जिनेन्द्र कुमार कहते हैं वास्तविकता को शब्दों में नहीं कहा जा सकता।

मन ही मन कह उठीं दीदी – यही तो बड़ों का बड़प्पन है। गोटेगाँव का शीतकाल पूर्ण हुआ। मुनिवर ने नरसिंहपुर को पवित्र किया, लखनादौन में भी धर्म वर्षा हुई।

कटंगी चातुर्मास के दौरान पूज्य समयसागरजी के सान्निध्य में गजरथ महोत्सव की रूपरेखा बन गई, पर वे विहार कर गए। इसलिए कटंगी वासी बार–बार आचार्यश्री के पास मुनि संघ, आर्यिका संघ के सान्निध्य हेतु निवेदन करने जा रहे थे। वे चाहते थे आचार्यश्री के सान्निध्य में ही पंचकल्याणक सम्पन्न हो। कटंगी वालों की भावना देखते हुये आचार्यश्री ने पूज्य क्षमासागर जी को गजरथ महोत्सव सम्पन्न कराने कटंगी भेज दिया। साथ में मुनि समतासागर जी, मुनि प्रमाणसागरजी और ऐलक उदारसागरजी थे।

कटंगी में भव्य अगवानी की गई मुनि संघ की। पूज्य आर्यिका प्रशान्तमती भी ससंघ कटंगी में विराजमान थीं। उनकी संघस्थ आर्यिका निर्मलमतीजी कटंगी निवासी होने के कारण कटंगी का गौरव हैं। उनकी समता, निर्दोष चर्या और ममता सभी के मन को मोह लेती है।

चतुर्विध संघ जब आहारचर्या को निकलता, लगता भगवान् आदिनाथ ससंघ अयोध्यानगरी में विचरण कर रहे हों। पूरी कटंगी दुल्हन की तरह सजाई गई थी। मंगलध्वज और तोरणद्वार यहाँ के सुधी श्रावकों का परिचय करा रहे

थे। बहुत बड़ा मेला लगा था कटंगी में। पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में माता–पिता बनने का सौभाग्य हमारे जेठजी श्री मिट्ठूलाल जी सिंघई एवं जेठानी श्रीमती धर्मीबाई को प्राप्त हुआ।

जिस दिन भगवान् आदिनाथ के आहार हो रहे थे, उसी दिन पूज्य क्षमासागरजी का पड़गाहन मेरे घर हुआ, आहार निरन्तराय सम्पन्न हुआ। मुनिश्री का कमण्डलु लेकर हमारा परिवार मंदिर छोड़ने गया। वहाँ मुनिश्री के विचारों को सुनने का मौका मिला। मुनिश्री बोले गजरथ महोत्सव आदि में पात्रों का चयन बोलियों के माध्यम से होता है। मैं चाहता हूँ पात्रों का चुनाव संयम की मुख्यता से हो। संयमधारी पात्र बनाने से ये आयोजन सही रूप में सफल होंगे और जनमानस में संयम के प्रति बहुमान आयेगा। अर्थव्यवस्था अपने आप हो जायेगी। मुनिवर मेरे परिवार के प्रमुख सदस्य श्री विजयकुमार सिंघई के व्यवसाय एवं पूजावृत्ति से पूर्व परिचित थे। अतः उनके सरल स्वभाव को अभिनंदित करते हुये बोले – ईमानदार श्रावक के घर आहार लेने से जो विचार बने वे बतला रहा हूँ। श्रेष्ठी वर्ग की प्रमुखता हर गजरथ में रहती है, यहाँ संयम को भी आगे आने का अवसर मिलना चाहिये।

मुनिश्री की अनुशासन प्रियता, वात्सल्य, समता देखकर लगा, ऐसे महान् योगी का जीवन दर्पण सभी के सामने आना चाहिये। मन की वह भावना फलवती हो गई समय पाकर और उन योगीराज का जीवन दर्शन इस लघु पुस्तिका के माध्यम से पाठकों के सामने लाने का प्रयास किया।

पंचकल्याणक के सभी कार्यक्रम समय पर प्रारम्भ होते, बोलियों का समय निश्चित था। कार्यक्रम की समाप्ति समय पर होती। रात्रि में होने वाले सांस्कृतिक कार्यक्रम भी शालीनता के साथ सम्पन्न होते थे। ब्र. संजय भैया, ब्र. अशोक भैया ने भी कटंगी समाज का आतिथ्य स्वीकारा था। ब्र. अशोक भैया अस्वस्थ थे महाराज जी उनके स्वास्थ्य का बहुत ध्यान रखते थे उन्होंने ब्र. भैया अरुण को बुलाकर उनकी सारी व्यवस्थाएँ करवाई थीं। ब्र. भैया संजय सिंघई ने आहार व्यवस्था को संभाली थी।

रात्रिकालीन प्रवचन में ब्र. संजय भैया, ब्र. अशोक भैया एवं ब्र. पुष्पा दीदी की विचारधारा सुनने मिलती थी, यहीं पर इंस्पेक्टर रेखा जैन ड्यूटी पर

आई हुई थी, वे मुनिश्री की वाणी से और उनकी चर्या से इतनी प्रभावित हुई कि बाद में उन्होंने आचार्य श्री से ब्रह्मचर्य व्रत प्राप्त किया।

मुनियों और आर्यिका माताओं के बैठने की व्यवस्था सराहनीय थी। पूज्य क्षमासागरजी प्रवचन के समय आर्यिकाओं को माताजी का सम्बोधन देते थे। आर्यिका प्रशांतमती माताजी ने कहा – महाराजजी हमें नाम लेकर सम्बोधित कीजिये। जबाव में महाराजजी ने कहा – माताजी सम्बोधन बहुत अच्छा होता है, माताजी शब्द में बहुत बड़ा रहस्य छिपा है। सभी साधकों का सम्मान करना आता था उन्हें।

तप कल्याणक के दिन रात्रि में पानी की बूँदें आ गईं, आसमान में काली घटायें छा गई थीं। प्रतिष्ठाचार्य पण्डित गुलाबचन्द जी पुष्प चिन्तित हो उठे। वे महाराजजी के पास गये। महाराजजी ने उन्हें आशीर्वाद दिया और जाप करने बैठ गये। लोगों को चमत्कार देखने मिला कि आकाश साफ हो गया है। रथ की फेरी होने तक पानी रुका रहा। फेरी के दूसरे दिन से तीन दिन तक मूसलाधार बारिश हुई।

मुनिश्री के प्रवचन से लोग बहुत प्रभावित होते थे। एक दिन के प्रवचन तो ऐसे मार्मिक थे कि महाराज जी की करुणा भरी वाणी सुनकर सारी सभा रोने लगी। उनका प्रवचन अरिहंत भैया आओ। अरिहंत भैया तुम कहाँ हो? अनूठा था, कालजयी था। कटंगी के इतिहास का सुनहरा पृष्ठ था।

कटंगी पंचकल्याणक मुनिश्री के समागम से सानन्द सम्पन्न हो गये, फागुन की अष्टाह्निका चल रही थीं। होली आ गई। आचार्यश्री से विहार के संकेत आ गये थे, चर्चा हो रही थी विहार सम्बन्धी।

ब्र. विनीता दीदी ने कहा – महाराज जी! होली का त्यौहार है, गाँवों में होली पर ऊधम भी होता है अतः आप रंगपंचमी तक विहार न करें।

कक्ष में पनागर के एक ब्रह्मचारी भैया बैठे थे, विनोद के स्वर में बोले – महाराजजी! यह अनुनय है या आदेश।

मुनिश्री बोले – कभी अनुनय में आदेश होता है और कभी आदेश में अनुनय होता है। यह हमारी सोच पर निर्भर होता है और कहने वाले की

भावना पर भी।

संतों के चरण किसी के रोकने पर रुकते कहाँ है? चल पड़े वहाँ, जहाँ आचार्य महाराज की आज्ञा थी, बढ़ते-बढ़ते पहुँच गये बहोरीबंद। भगवान् शांतिनाथ के दरबार में जहाँ पंचकल्याणक महोत्सव का आयोजन था।

मुनिश्री के सान्निध्य में बहोरीबंद पंचकल्याणक हुआ। इसमें भारी प्रभावना की, बहोरीबंद से कुंडलपुर, दमोह, गढ़ाकोटा होते हुये सतना पहुँचे।

ग्रीष्मकाल – एक विशाल शोभायात्रा सतना नगर में प्रवेश कर रही थी। आगे-आगे मुनिद्वय और पीछे-पीछे जन सैलाब। मातायें बहिनें और बच्चे उस जुलूस के श्रावकों के कदमों से कदम मिलाते हुये चल रहे थे। सभी लोग बार-बार मुनियों का जयघोष कर रहे थे। जुलूस के आगे जो वाद्यदल चल रहा था उसकी धुनें प्राण-प्राण को आन्दोलित कर रहीं थीं, शहनाई से जो धुन निकल रही थी, उस पर श्रावक झूम रहे थे। धुन थी – थोड़ा ध्यान लगा कि गुरुवर दौड़े-दौड़े आयेंगे। उस दिन भक्तों को अपनी भक्ति पर विश्वास हो गया। उन्हें लगा – सही में मुनिद्वय दौड़े-दौड़े आये हैं, हम पर आशीष वर्षा करने के लिये।

सिंहपौर पर सभी ने गुरुवर की आरती की, पाद प्रक्षालन किया और संघ को मंदिरजी ले गये। 1991 के चातुर्मास की स्थापना सतना में हो गई। स्थान बदल जाते हैं, श्रावक बदल जाते हैं परन्तु संत की चर्या नहीं बदलती, जो क्रम पूर्व के चातुर्मासों में चलता रहा है उसी प्रशस्त क्रम का लाभ सतना के श्रावकों को मिला।

आचार्य कुन्दकुन्द द्वारा प्रवर्तित धर्म की मशाल मुनिवर ने सतना में आलोकित कर दी। श्रावकों को विश्वास हुआ कि आचार्य कुन्दकुन्द का समय काल समझना है तो मुनिवर पूज्य क्षमासागरजी को समझना होगा, उनके साथ मुनिवर गुप्तिसागरजी भी धर्मोपार्जन करने में सहयोगी हैं।

श्रावकों को लगा कि मुनिद्वय के रूप में आचार्य विद्यासागर ही पधार गये हैं, सो क्या विद्वान्, क्या सामान्य, सब उनके पास बने रहना चाहते थे। प्रवचनों का क्रम निरन्तर था।

एक दिन मुनिवर ने पूछा – आप लोग प्रवचन तो भारी उत्साह से सुनते हैं, क्या वे आपके आचरण तक पहुँच पावेंगे? श्रोताओं ने दोनों हाथ उठा कर कहा – जी महाराज। मुनिवर बोले – कभी मैं अवश्य परखूँगा।

पर्युषण का समय चल रहा था, उत्तम मार्दव के दिन मुनिवर ने जिस चौके में आहार लिये वहाँ उन्हें अचानक ही उत्तम क्षमा के दृश्य देखने मिले। हुआ यह था कि सतना में दो भाइयों के बीच काफी दिनों से मन–मुटाव चल रहा था। बोलचाल बंद था। हृदय में द्रोह और नजरों में आक्रोश देखने समझने मिल जाता था। भाग्य से उन्होंने एक दिन पूर्व ही मुनिवर से उत्तम क्षमा पर प्रवचन सुना था। सुनते हुये तो वे रोये ही थे, घर आकर भी रोये। संकल्प किया कि बैर त्याग देंगे और मैत्रीपूर्ण बोलचाल शुरू कर देंगे। संयोग से दूसरे दिन एक भाई ने मुनिवर को पड़गाहा, तब दूसरा भाई बैठा न रहा, वह शुद्धि पूर्वक चौके में प्रवेश कर गया। उसे आते देख चौके वाले भाई के चेहरे पर निर्मल मुस्कान आ गई, उसने समीप आने का संकेत किया। भाई, भाई के समीप पहुँच गया। दोनों मिलकर मुनिवर को निरन्तराय आहार देते रहे। एक भाई दूसरे भाई को ग्रास देता और वह भाई मुनिवर की अंजुली में रखता। उन्हें देखकर चौके में उपस्थित समस्त श्रावक और श्राविकाओं को विश्वास हो गया कि आज इन दोनों ने पानी में नहीं नहाया, उत्तम क्षमा के जल से नहाया है, तभी तो उनके रोम–रोम से क्षमा झर रही है।

लोगों ने मन ही मन स्वीकारा चातुर्मास की इससे बड़ी उपलब्धि और क्या हो सकती है?

वसतिका में मुनिवर का प्रश्न गूँजता रहा दोनों भाई नेत्रजल बहाते हुये मुनिवर के चरणों से लग गये।

धीरे–धीरे पर्युषण पर्व निकल गया। मगर विद्वानों की भीड़ बढ़ती गई, रोज अनेक विद्वान् घेर कर बैठ जाते मुनिवर को। वे प्रश्न रूपी बाण चलाने से नहीं चूकते थे। मुनिवर भी समाधान रूपी पुष्प खिलाने में पीछे नहीं थे। यद्यपि वे तब युवक ही थे किन्तु वरिष्ठ विद्वानों के प्रश्नों के उत्तर भी उनकी जिह्वा पर ससंदर्भ शोभा बिखेरते थे। उनकी सटीक वाक्पटुता से प्रभावित होकर एक वरिष्ठ ने सराहना करते हुये कहा– आपकी जीभ पर तो सरस्वती विराजती है।

वे तो कहकर चले गये पर बाद में, कई दिनों बाद, मुनिवर ने स्पष्ट किया था कि सराहना सुनने से भी मतिभ्रम हो जाता है, अतः साधक को सराहना से बचना चाहिये। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि गत दिनों एक वरिष्ट से अपनी सराहना सुनकर मैं समुचित उत्तर देना भूल गया था, अतः मैंने तुरंत परम पूज्य गुरुवर विद्यासागरजी का स्मरण किया। सराहना को मिथ्या माना और गुरु के चरणों में शीश झुकाया तब जाकर मुझे पुनः ऊर्जा प्राप्त हुई।

सतना नगर के बाद संघ अनेक स्थानों पर गया और धर्म की गंगा प्रवाहित करता रहा। धीरे–धीरे फिर समय आ गया वर्षायोग का। विदिशा के धर्मनिष्ठ श्रावक माह भर से पीछे पड़े थे मुनिवर के। मुनिवर थे कि मुस्कुरा कर टालते रहे। श्रावक ऐसे समय पर समझदारी से काम लेते हैं, वे एक दिन चुपचाप आचार्यश्री की शरण में जा पहुँचे। आचार्यश्री से प्रार्थना की – हे गुरुदेव! आपने विदिशा की पुकार नहीं सुनी, विदिशा आपकी चरण रज से अछूता रह गया। आप चाहें तो हमारी प्रार्थना पर अपने किसी शिष्य को संकेत प्रदान कर सकते हैं। हम लोग क्षमासागरजी के पास गये थे, पर उन्होंने वर्षा योग के विषय में संतुष्ट नहीं किया।

आचार्यश्री मुस्काये, फिर बोले – एक अंगुली बढ़ाते हैं आप दूसरी पकड़ लेते हैं। फिर विनोद करते हुये बोले – श्रावकों से संत कैसे जीत सकते हैं? सभी श्रावकों ने उनका मधुर वाक्य सुनकर जयघोष किया और बोले – बस महाराज! हमें आपकी आज्ञा मिल गई। गुरुवर ने आशीष दिया, श्रावक निश्चिन्त होकर लौट पड़े।

श्रावक समूह क्षमासागरजी के पास पहुँचे कि उसके पूर्व गुरुदेव का संकेत वहाँ पहुँच चुका था। श्रावकों को देखकर क्षमासागरजी मुस्काये फिर बोले – हेड ऑफिस तक पहुँच गये आप लोग? ठीक है।

उचित समय पर विशाल शोभायात्रा के साथ पूज्य क्षमासागरजी ने दिशा बदल कर, विदिशा नगरी में प्रवेश किया। 1992 का पावन वर्षायोग विदिशा की गोद में मुस्कुराता रहा। वहाँ अनेक विशाल कार्यक्रम भव्यता के साथ आयोजित किये गये। प्रवचन के लिये श्रोतागण घंटों प्रतीक्षा करते थे और

सुनकर ही लौटते थे। एक दिन मुनिवर ने प्रवचन के समय एक प्रसंग सुनाया जो यह कथा लिखते समय मुझे उनकी पुस्तक गुरुवाणी में पढ़ने मिला था। जिसे पाठकों के लिये यहाँ उन्हीं की भाषा में प्रस्तुत कर रहीं हूँ –

एक बहिन मेरे पास आई, अपने पति की मृदुल शिकायत करते हुये बोली – महाराज! (वे) आफिस से लौटकर आने पर रोज दो-चार कड़वी बातें कह देते हैं। हम समझते रहे कि दिन भर के थके हारे होते हैं गुस्सा आ जाता है तो कह देते हैं – इसलिये सहन करते रहे। पर अब हमसे सहन नहीं होता रोज-रोज ये। अब हमको भी गुस्सा आ जाता है, तो हम भी एक-आध बात कड़ी कह देते हैं, बस बात और बढ़ जाती है फिर बमुश्किल सम्हलती है। यहाँ तक कि फिर बाद में दोनों जन बैठकर रो भी लेते हैं कि चार बातें तुमने कहीं, हम ही कुछ सम्हल जाते तो .. ! ऐसा एक-दूसरे को बाद में कहते भी हैं, ऐसा नहीं है कि प्रेम नहीं है, लेकिन वह उस समय कहाँ चला जाता है?

सबके भीतर अच्छाइयाँ हैं, लेकिन वे उस समय कहाँ चली जाती हैं जब बुराई अपना पूरा जोर हमारे ऊपर जमा लेती है? बस उसी समय तो हमें अपने को जीतना है। मैंने उनसे कहा – आप चार बातें तो सहन कर ही लेती हैं, अब ऐसा करना – जब चार-पाँच बातें हो जायें और आपको भी लगने लगे कि अब आगे सहन नहीं होंगी तब बोलना कि – अब आप शांत हो जाओ, जो कुछ रह गया वह बाद में कह लेना, अभी तो अंदर चलते हैं, भोजन करते हैं। इतना भर आप कर लेना।

महाराज! ऐसा करना है तो कठिन पर आज करेंगे, देखेंगे, आज क्या होता है?

हाँ, करके देखो, प्रेक्टीकल (प्रयोग)करके देखो, बिगड़ेगा नहीं कुछ। और सचमुच, शाम को थका हारा वह व्यक्ति जैसे ही घर में आया, जरा-जरा सी, छोटी-छोटी सी बात पर शुरू हो गईं कड़वी बातें, चार पाँच बातें हुईं, गुस्सा बढ़ता जा रहा था – पर आज सामने वाला सावधान था, रोज की तरह गाफिल नहीं था, उसने फोरन कहा – सुनो, हाथ मुँह धोलो, खाना बन गया है पहले खालो, फिर जितना कहना हो, जो भी कहना हो, सब बाद में कह लेना।

इतना सुनते ही पारा और भी गर्म। मुझे समझाती है! किसने कहा ये सब? कुछ नहीं, आज हम महाराज के पास गये थे। हमने उनसे कहा था, उन्होंने ही यह उपाय बताया था।

बस इतना सुनना पर्याप्त था, घड़ों पानी पड़ गया मानों उसके ऊपर, शांत हो गये। हाँ बात तो सही ही कही है। क्यों मैं व्यर्थ क्रोध करता हूँ? और उस दिन के बाद आज तक सब ठीक है। अभी यहाँ भी आकर गया है वह परिवार।

विदिशा की वायु वर्षायोग का सान्निध्य पा धर्म की सुगन्ध से भर गई थी। श्रावकों में कुछ न कुछ करने का मन नित्य बना रहता था। कुछ लोगों की दृष्टि मुनिवर की हृदयस्पर्शी कविताओं पर थी, अतः वे एक दिन याचना करने मुनिवर के समीप पहुँचे और विनय पूर्वक बोले – आपकी कविताएँ रोज वायुमंडल में घूमती रहती हैं, हम चाहते हैं कि हमारे मन मण्डल में भी वे पहुँचे। मुनिवर चकित हो पूछ बैठे – कैसे पहुँचेगी आपके मन मण्डल में ?

हम प्रकाशित कराना चाहते हैं।

तो उससे क्या होगा?

एक-एक प्रति हमारे पास बनी रहेगी, हम पढ़ते रहेंगे और अपने चिन्तन को स्वस्थ करते रहेंगे।

मुनिवर को बात समझते देर नहीं लगी। प्रकाशन कार्य में परहित के साथ-साथ आत्महित भी जुड़ा हुआ था, अतः वे उन्हें मना नहीं कर सके। फलतः विदिशा को सौभाग्य मिला उनके प्रथम काव्य संग्रह 'पगडण्डी सूरज तक' को पुस्तिका का आकार प्रदान करने का। सुधी पाठक जानते होंगे कि वह काव्य संग्रह देश के हर विद्वान् और हर सम्पादक ने सराहा था इतना ही नहीं वरिष्ठ साधु संतों ने भी उसे श्रेष्ठ लेखन कार्य निरूपित किया था।

छतरपुर के सौभाग्य का समय सहज नहीं आया। वहाँ के श्रावकों ने दो वर्ष तक प्रयास किया तब 1993 में भाग्य जागा। मुनिवर का वर्षायोग स्थापित हुआ। नगर एवं समीपी परवेश में क्षमासागरजी व्याप्त हो गये। जैसे ताजे पुष्पों की सुगन्ध वातास में चारों ओर फैल जाती है। वहाँ अनेक बृहद

कार्यक्रमों को गति मिली।

सन् 1994 के चातुर्मास का संयोग मिला गुना नगर को। गुना, जहाँ एक गुना धन है तो दो गुना धर्म और श्रावकों पर ध्यान दें तो तीन गुना आचरण।

वहाँ के श्रावक मुनिश्री की सहज, सार्थक, सटीक तर्क भरी व्याख्याओं को सुनकर स्तब्ध रह जाते थे। छात्र-छात्राओं के मन में मुनिश्री ने जैनदर्शन का मंत्र फूँक दिया था, वे मुनिश्री के वात्सल्य से ओतप्रोत हो गये थे। मुनि श्री के मार्गदर्शन में उन्होंने बहुत सारे सफलता के सोपानों को प्राप्त किया। वर्षायोग की समाप्ति से सभी नगरवासी दुखी हो गये, पर वे क्या कर सकते थे, संत तो नदी की भाँति जगह-जगह सभी की प्यास बुझाते बहते रहते हैं।

वर्ष 1995 का वर्षायोग उस शहर में था, जहाँ सभ्य समाज के समक्ष किसी का झांसा नहीं चलता। नगर का नाम ऐसा था कि सुनकर झांसा देने वाले ये जा, वे जा - हो जाते हैं। उपयुक्त समय पर मुनिवर ने झांसी में चातुर्मास की स्थापना की। लोगों ने उनके साथ-साथ करगुवाँ के मूलनायक भगवान् पार्श्वनाथ का जयघोष किया। जैसा हर नगर में होता है। लोग मुनिवर के प्रवचन सुनने हर दिन लालायित रहते प्रवचन की प्रभावना ऐसी फैली कि दुकानों से दुकानदार, ऑफिस से आफीसर और विद्यालय से विद्यार्थी रोज-रोज आने लगे। स्थिति इतनी सुन्दर बनी कि मेडीकल कॉलेज से छात्र-छात्रायें ही नहीं, प्रोफेसर लोग भी सुनने आने लगे। कुछ छात्रों ने मुनिवर के आहार आदि की जानकारी ली और चले गये।

एक दिन जब मुनिवर आहार चर्या के लिये निकले तब व्यवस्था कर रहे श्रावकों ने देखा कि मेडिकल कॉलेज के छात्र-छात्राओं ने भी शुद्धि पूर्वक चौका लगाया है। वे सोला के वस्त्र पहिनकर पड़गाहने खड़े हुये थे, मुनिवर साक्षात् महावीर की तरह सिर उठाये चल रहे थे, जैसे वे अभिशप्त चंदन बालाओं को बंधन मुक्त करने निकले हो। शायद विधि मिल गई, मुनिवर छात्रों के चौका में रुक गये। वरिष्ठ जन आश्चर्य में पड़ गये। वे आश्चर्य ही करते रहे उधर मुनिवर के निरन्तराय आहार सम्पन्न हो गये। छात्र समूह उनका कमण्डलु लिये हुये मुनिवर को वसतिका में पहुँचाने साथ-साथ चल रहा था। मुनिवर

दयालु थे, वे जानते थे कि लीक से भटके ये छात्र गण मुश्किल से लीक पर आने का प्रयास कर रहे हैं। यदि इन्हें पहले दिन ही त्याग और संयम का पाठ पढ़ाया तो शायद इनका उत्साह ठंडा पड़ सकता है। अतः ये सब बातें दो चार दिन बाद भी की जा सकती हैं।

मुनिवर कुछ समय तक वसतिका में छात्रों के साथ हँसते बोलते रहे। ज्यों ही उनके सामायिक का समय हुआ सभी उन्हें नमोऽस्तु कर लौट पड़े, छात्र चले गये किन्तु जो लोग आश्चर्य में पड़े थे, वे आपस में भुनभुनाने लगे - छात्रों को बड़ी शौक लगी, न आलू छोड़े न प्याज और आहार देकर चलते बने। मध्याह्न के बाद वे ही श्रेष्ठीगण जब मुनिवर के समक्ष बैठे थे तब मुनिवर ने स्वतः उनका अंधेरा हटाया वे बोले - ये छात्र धर्मज्ञ हैं, उनसे पूछना उन्होंने अनेक चीजें त्यागने का मन बना लिया होगा।

श्रेष्ठी लोग बोले - हम क्या पूछेंगे महाराज? हमें संकोच लगता है आप ही पूछना। दूसरे दिन जब वे छात्रगण आये तब मुनिवर ने उन्हें पास बुलाकर पूछा - आहार देने के अवसर पर आपने क्या त्याग किया है, सच सच बतलाना। आप में से एक व्यक्ति माइक पर आकर स्पष्ट करे। तब एक छात्र शरमाता हुआ माइक पर आया और सभा में उपस्थित जन समूह के समक्ष उसने बतलाया - हे मुनिवर! आहार के समय नहीं, आहार देने के पूर्व ही त्याग करने का संकल्प लिया था, संकोचवश हम बोल नहीं सके, डर था कि अंतराय न हो जावें।

छात्र का उद्बोधन सुनकर लोगों ने उनकी सराहना में तालियाँ बजाई और जो लोग आहारचर्या के दिन आश्चर्य में पड़ गये थे उन्होंने उठकर छात्रों की पीठ थपथपाई। मुनिवर दृश्य देखकर मंद-मंद मुस्कुरा रहे थे।

जानकार लोग बतलाते हैं कि आचार्य विद्यासागरजी भी किसी से कुछ त्याग करने का संकेत नहीं करते, लोग स्वेच्छा से वह सब त्याग देते हैं, जो त्यागने योग्य है। विगत वर्षों की बात है जब आचार्यश्री मेरे मायके के ग्राम तेंदूखेड़ा (जिला-नरसिंहपुर) पहुँचे थे। तब मुझे भी अपनी माँ के साथ सपरिवार आहार देने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। निरन्तराय आहार हुये थे, आचार्यश्री ने किसी से कुछ त्याग करने का संकेत नहीं किया था मगर हम लोगों ने स्वेच्छा

से कुछ न कुछ त्याग अवश्य किया था। जो यहाँ स्पष्ट करना आवश्यक नहीं है।

मध्यप्रदेश में विभिन्न नगरों के मध्य महानगरी इन्दौर का वही स्थान है जो विभिन्न संतों के मध्य आचार्य विद्यासागर का है, ऐसे महानगर इन्दौर को सन् 1996 में मुनिवर के चातुर्मास का संयोग मिला। सेवाभावी और दानप्रिय लोगों की संख्या से आप्लुत यह नगर धर्म प्रभावना की डगर में स्वस्थ सोपान है। यहाँ जितने भी कार्यक्रम सम्पन्न हुये सभी राष्ट्रीय स्तर की छवि लेकर सामने आये, इस बीच भक्तों ने मुनिवर से साहित्यिक और धार्मिक सामग्री प्राप्त कर राष्ट्र स्तर की पुस्तकें प्रकाशित कराईं। काव्य की एक पुस्तक जो मुनिवर के नाम से जानी जाती है '**मुनि क्षमासागर की कविताएँ**' यहाँ ही प्रकाशित हुई। एक और महत्त्वपूर्ण पुस्तक '**अपना घर**' पूर्व में ही सागर नगर में आकार पा चुकी थी। जिसे लोगों ने पुनः प्रकाशित करने के भाव बनाये किन्तु आज्ञा नहीं मिली।

प्रबुद्ध श्रावक चुप नहीं बैठते कविता की किताब नहीं मिली तो अनुवाद की किताब के पीछे पड़ गये फलतः एकीभाव स्तोत्र का अनुवाद भी 1996 में इन्दौर से ही प्रकाशित हुआ।

प्रसंग इन्दौर का है, एक राजस्थानी जैन परिवार का। पुत्र अति आधुनिक परिवार की बेटी से ब्याह कर बैठा। यद्यपि दोनों विनयशील और कर्त्तव्य परायण थे। उनके मुनिभक्त माता-पिता, बहू बेटे को लेकर मुनिवर के दर्शनार्थ पहुँचे। राजस्थानी सेठ ने मुनिवर को अपने परिवार की तथा कथा बतला दी, फिर हाथ जोड़कर बोले - बहू बेटे को उपदेश प्रदान कीजिये। मुनिवर ने कुछ मिनिट तक बहू बेटे से वार्ता की। उन्हें समझ में आ गया कि बहू शादी के पूर्व भी जैनधर्म को जानती थी और मुनिश्री के उपदेश सुनकर वह मंदिर जाने लगी है एवं व्रत, नियम, संयम के लिये प्रयासरत है। जब वह परिवार लौटने लगा तो पुत्र वधु पुनः मुनिवर के चरणों के समक्ष झुक गई और संकोच करते हुए पूछ बैठी - हे महाराज! यदि हम लोग चौका लगावें तो हमारा चौका सार्थक तो होगा? मुनिवर प्रश्न सुनकर मुस्काये फिर उसके कल्याण के भाव से बोले- अच्छा! चौका लगाओगी? करो प्रयास।

दूसरे दिन ही उस परिवार ने नवधाभक्ति पूर्वक पड़गाहन किया, मुनिवर चौके में गये। जब उस नववधु का क्रम आया तब उसका नाखून पालिस देखकर मुनिश्री अपने नाखूनों को देखने लगे। बहू के बाजू में खड़ी हुई महिला ने भांप लिया अतः उसने बहू को नाखून पालिस पर भृकुटी तानते हुये उसे चौके से बाहर जाने कह दिया। बहू चली गई। वह संस्कार सीखना चाहती थी। लगन की पक्की थी अतः उसने कमरे में जाकर दो मिनिट में किसी लोशन से नाखून पालिस धो लिया। हाथ साफ सुथरे किये पुनः शुद्ध वस्त्र पहिने और पैर धोकर चौके में पहुँच गई, शुद्धि बोलकर मुनिवर की स्वीकृति चाही मुनिवर उसके परिवर्तन को देखकर मुस्काये, सौभाग्य से उसे ग्रास देने का क्षण मिल गया, हो गई वह उपकृत। भीतर ही भीतर कृतकृत्य। उसे विश्वास हो गया कि वह एक सही श्राविका बन जावेगी।

पं. सरोजकुमारजी ने विहार के समय जो अनुभूत किया वह उन्हीं के शब्दों में प्रस्तुत है - मुनि श्री क्षमासागरजी के इन्दौर में हो रहे वर्षायोग (1996) की समयावधि समाप्त हो गई थी। इंदौर से विहार की तैयारी थी। पर वे कब विहार करेंगे, इत्यादि बातें किसी को मालूम नहीं थी। मुनिश्री अपना कार्यक्रम और योजनायें किसी को बताते भी नहीं थे। एक दिन मुनिश्री के संघ से एक विश्वस्त ब्रह्मचारी जी से संकेत मिला कि दूसरे दिन मुनिश्री विहार कर रहे हैं बस फिर क्या था, भक्तगण उनसे आशीर्वाद लेने व नमोऽस्तु कहने पहुँचने लगे। खबर आग की तरह फैल गई।

जैन समाज के अध्यक्ष ने अखबार वालों को भी बता दिया कि सुबह सात बजे मुनिश्री विहार करने वाले हैं। फिर हुआ यह कि सुबह पाँच बजे से ही भक्तों का तांता वंदनार्थ लग गया। 6 बजे के करीब बैण्ड वाले भी आ गये। यह सब देखकर मुनिश्री अत्यन्त दुःखी, विचलित और उद्विग्न हो गये। मैं भी पहुँचा। भीड़ में किसी तरह निकट पहुँचकर वंदना कर परिसर में लौट आया। मुझे मुनिश्री ने बुलवाया और पूछा-ये लोग बता रहे हैं कि अखबार में समाचार छप गया है? ये कैसे आ गया? ऐसा समाचार तो नहीं आना था? यह तो ठीक नहीं हुआ। हमारे संघ में समारोही ढंग से विहार की परम्परा नहीं है और यहाँ तो बैण्ड भी बजने लगा है। मैं एक अखबार से थोड़ा जुड़ा हुआ हूँ। अतः

मुनिश्री को मुझ पर संदेह हुआ होगा कि मैंने ही अखबार वालों को खबर दी होगी।

मैंने मुनिश्री को बताया कि मेरी ओर से तो किसी अखबार वाले को नहीं कहा गया था। पर समाज के पदाधिकारियों के लिये विहार की खबर ज्ञात हो जाने पर, यह जरूरी हो गया होगा कि वे ये बात सबको बता दें। इसी भावना से किसी ने अखबार में दे दिया होगा। विहार की बात ज्ञात हो जाने पर यदि वे सबको सूचित नहीं करते, तो आपका विहार हो जाने के बाद सब उन्हें पकड़ते और दोष देते कि मुनि संघ के विहार की खबर हमसे क्यों छिपाई गई? हमें क्यों नहीं बताया गया? विहार के पूर्व वंदना का अवसर हमें क्यों नहीं लेने दिया? सबके हित में ऐसा कुछ हो गया लगता है।

मुनिश्री कुछ नहीं बोले और अपनी विभिन्न चर्याओं में व्यस्त हो गये। ऐसा प्रतीत हुआ, मानों उन्होंने अपना विहार पर निकलना स्थगित कर दिया हो। मुनिश्री दुःखी हुये हैं अतः सब दुःखी थे। लेकिन मुनिश्री ने विहार स्थगित कर दिया है, यह सोचते हुये सब खुश भी थे। परिसर में भक्तों की संख्या धीरे-धीरे कम होती गई। मुनिश्री दो दिन छत्रपति नगर रुककर बिना पूर्व घोषणा के खण्डवा की दिशा में विहार कर गये।

जिस तरह इंदौर के भाग्य जागे थे, उसी तरह भोपाल के भी जागे। समाज की प्रार्थना और गुरु की आज्ञा देखते हुये पूज्य मुनिवर ने सन् 1997 का वर्षायोग भोपाल में किया, चौक के मंदिर में चातुर्मास स्थापना हो गई। चातुर्मास स्थापना के दिन पूरा भोपाल और मुनिश्री के भक्त जन बड़ी संख्या में चौक के मंदिर में स्थान पा रहे थे। छोटा पड़ गया था चौक के मंदिर का बड़ा प्रांगण। साथ में थे पूज्य उदारसागरजी और पूज्य नयसागरजी।

निश्चित समय पर स्वाध्याय होता, समय पर होती आहारचर्या, सामायिक और आचार्य वंदना। मुनिश्री को सुनने समय से पूर्व ही श्रोता गण अपना स्थान ग्रहण कर लेते। भोपाल राजधानी से संस्कारधानी बन गया था। धर्मवत्सल संतों का समागम बहुत प्रतीक्षा के बाद मिला था सो पूरा लाभ लेना चाहते थे। बड़े-बड़े अधिकारीगण मुनिवर को सुनने आते थे श्री सुरेश जैन आई. एस. भी मुनिश्री के अनन्य भक्त थे, उनकी श्रीमती विमलाजी भी आती रहती थीं दर्शन

करने। सुरेश जी लाये थे एस. एल. जैन को जो उनके मित्र थे। उनको मंदिर और साधुओं के प्रति विशेष लगाव न था। मित्र के कहने से ये मुनिश्री के दर्शन करने भोपाल आने से पूर्व ही रेहटी विश्राम गृह गये थे। उस दिन फोन से श्री सुरेश जैन ने उनको मुनिश्री के आने का समाचार दिया था और साथ में चलने को कहा था। एस. एल. जैन विद्युत मंडल में कार्यपालक संचालक थे, उन्होंने मुनिश्री के प्रथम बार दर्शन किये थे। सुरेश जैन ने उनका परिचय कराया उनको आशीर्वाद मिला, वह बहुत प्रभावित थे, मुनिश्री के दिगम्बर वेश से। उनको देखकर मुनिश्री ने पूछा आप कब रिटायर हुए? उन्होंने कहा डेढ़ वर्ष पूर्व।

अच्छा आप लगभग 60 वर्ष के हो गये हैं। वीतरागी मुद्रा और उनके प्रश्न ने उनके अंतस् को जगा दिया सोचने लगे - मेरा जीवन थोड़ा-सा बचा है अब मुझे आत्म कल्याण के लिये कुछ करना चाहिये। दो घंटे के समय में ही उनका जीवन बदल गया मुनिश्री से उन्होंने देवदर्शन और सप्त व्यसन त्याग का संकल्प कर लिया।

भोपाल चातुर्मास के पूर्व ही उनके हृदय में धर्म का अंकुरण हो गया था। वह बीज चातुर्मास में पल्लवित होने लगा। मन में जैनदर्शन को जानने की लालसा जगने लगी। ऐसी ही लालसा बहुत सारे डॉक्टर्स और इंजीनियर्स को जगी थी, उन्होंने आग्रह किया मुनिश्री से। सो प्रारम्भिक ज्ञान के लिये एक क्लास प्रारम्भ हो गई, उसमें एस.एल.जैन को भी पढ़ने की स्वीकृति मिल गई।

चार माह के सान्निध्य में वे व्रत नियम बढ़ाते चले गये और दो नवम्बर को पिच्छी परिवर्तन समारोह में मुनिश्री की पुरानी पिच्छी उनको प्राप्त हो गई, कृतकृत्य हो गये वे।

दो माह पूर्व ही वह व्रत नियम अंगीकार करना चाहते थे, मुनिश्री से चर्चा भी की। मुनिश्री ने एक बार टाल दिया, फिर कहा - दशहरा के बाद जो रविवार आयेगा उस दिन व्रत देंगे।

रविवार की सुबह उन्होंने एक स्वप्न देखा - वे और उनकी पत्नी मुनिश्री के कक्ष में व्रतों का निवेदन कर रहे हैं, वहीं बैठे एक व्यक्ति ने कहा - तुम इतने बड़े व्रत ले रहे हो पहले हाथ की अंगुलियों में जो नग जड़ी तीन अंगूठियाँ हैं उनको अपनी पत्नि को दो फिर मुनिश्री से आशीर्वाद लो। उन्होंने

अपनी अंगूठियाँ पत्नि को दे दीं और फिर मुनिश्री से आशीर्वाद लिया।

सुबह नहा धोकर जैसे ही मंदिर पहुँचे अंदर से आवाज आई – आप व्रत ले रहे हैं, आपने उपवास नहीं रखा, उन्होंने उपवास का संकल्प ले लिया।

तीन बजे पति–पत्नि मुनिश्री के पास गये, उनको स्वप्न की बात बताई। मुनिश्री ने कहा – यह बात है तो सोने चाँदी का त्याग कर दो। उन्होंने अपनी अंगूठियाँ अपनी पत्नि को दे दीं और मुनिश्री से पाँच अणुव्रत ग्रहण किये साथ ही दसों प्रकार के परिग्रह का परिमाण निश्चित किया। एस.एल. जैन श्रावक बन गये।

भोपाल चातुर्मास की अनेक उपलब्धियों में एक श्रावक का जन्म होना बहुत महत्त्व रखता है। ये पता ही न चला कब चातुर्मास सम्पन्न हो गया और गुरु के चरण बढ़ चले उन गलियों की ओर, जो आस लगाये इंतजार कर रहीं थी उन चरणों का। जिन चरणों के स्पर्श से संस्कारों की अहिल्या जीवन्त हो जाये।

भोपाल से नगर–नगर, गाँव–गाँव को पवित्र करते हुये मुनिश्री पहुँच गये बरेली। बरेली के श्रावकों ने मुनिराज की भव्य अगवानी की, शीतकाल में ज्ञान सूर्य ने अपनी किरणों से सारी बरेली को ऊर्जा प्रदान कर दी, सभी श्रावक प्रभावित हो गये मुनि चर्या से, उनकी मधुर वाणी से। वृद्धजन भावना भाने लगे समाधिमरण करने की।

डॉ. नवीन जी के पिताजी ने मुनिश्री की देशना सुनकर समतापूर्वक सल्लेखना की और मुनिश्री के समागम में उनकी समाधि सम्पन्न हो गई।

देश के कोने–कोने से मुनि भक्त अपने गुरु के दर्शन करने आते थे, एस. एल. जैन भी छहढाला का अध्ययन करने प्रति सप्ताह रविवार को आते थे उस समय वे ABC of Jainism पुस्तक मुनिश्री के सान्निध्य में लिख रहे थे।

उस दिन ठंड अधिक थी, वे दर्शन करने आये, उन्होंने गाड़ी लॉक कर दी, भूल से चाबी अंदर छूट गई। बहुत प्रयत्न करने पर गाड़ी नहीं खुली। पत्नि ने कहा – चलो हम लोग पहले महाराज के दर्शन कर लें फिर जो होगा देखेंगे।

वे दोनों दर्शन करने मुनिश्री के कक्ष में पहुँचे, एस.एल. जैन पुस्तिका

के प्रारूप पर चर्चा करने लगे मुनिश्री से, तभी उनकी पत्नि ने धीरे से संजय से चाबी की चर्चा की। मुनिश्री ने वह चर्चा सुन ली और जैन साहब से कहा – क्या हुआ। एस.एल.जैन ने चाबी वाली समस्या बता दी। महाराज जी ने संजय से कहा – जरा जाकर देखो, कोई मिल जायेगा तुम गाड़ी खोल कर चाबी ले आओ। संजय ने आदेश का पालन किया और दो मिनिट बाद ही चाबी निकालकर उनको पकड़ा दी। एस.एल. जैन आश्चर्यचकित थे, इतना कठिन काम दो मिनिट में कैसे हो गया सो संजय से पूछने लगे। उसने कहा – जब मैं सीढ़ी से उतर रहा था तभी एक व्यक्ति मिला। उसने पूछा – कहाँ जा रहे हो? मैंने अपना उद्देश्य बताया सुनकर वह बोला – चलो! मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ। मेरे पास बहुत चाबियाँ हैं, आपकी गाड़ी खुल जायेगी। उसकी पहली ही चाबी से गाड़ी खुल गई। मैं उससे कुछ पूछता तब तक वह व्यक्ति जा चुका था।

गाड़ी तो खुल गई पर एस.एल.जैन के चेहरे पर अनेक प्रश्न उठने लगे, शाम को वापिस जाने के लिये उन्होंने मुनिश्री से आशीर्वाद लिया, तब मुनिश्री ने कहा – रास्ते में अब गाड़ी बिना चाबी निकाले बंद मत कर देना, क्योंकि वहाँ मुनिश्री नहीं होंगे। वे समझ गये मुनिश्री की तपस्या और आशीर्वाद के प्रभाव को।

मुनिश्री के प्रति गहरी आस्था और उनके आशीर्वाद ने एस.एल.जैन के तीन माह के पौत्र को गंभीर बीमारी से बचा लिया, भोपाल के शिशु रोग विशेषज्ञों ने उसे हृदय की संरचना में गड़बड़ी बताई और छोटी उम्र में उपचार न होने की बात कही। एक रात वह गंभीर हालत में आ गया। उसकी माँ ने कहा – दादाजी आप ही कुछ कीजिये तब एस.एल.जैन ने मुनिश्री को साक्षी मान कर णमोकार मंत्र का जाप किया और मुनि श्री की पिच्छी से उसे आशीर्वाद दिया। उसी क्षण से उसके स्वास्थ्य में सुधार दिखने लगा, यह आशीर्वाद का विज्ञान और आस्था का परिणाम था।

शीतकाल समाप्ति की ओर था। गुरु के चरण चंचल हो चले बढ़ रहे थे तेंदूखेड़ा की ओर। सन् 1998 के ग्रीष्मकाल का अवसर था मुनिवर तेंदूखेड़ा (नरसिंहपुर) में विराजित थे। शास्त्रों का पठन–पाठन चल रहा था और सदा की तरह प्रवचनों का क्रम। समाज के साथ–साथ इतर समाज के प्रबुद्ध जन भी

प्रवचन सुनने पहुँचते थे। स्थिति यह हुई कि इतर समाज के लोगों ने मुनिवर की विद्वत्ता की चर्चा अन्य लोगों से की, उससे प्रभावित होकर एक नागरिक जो प्रबुद्ध हैं और सुलझे हुये विचारों के है, मन बना बैठे कि मुनि क्षमासागरजी से कुछ प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करना है। यहाँ यह कहलाना आवश्यक है कि उस समय तक हम लोग यह नहीं समझ पाये कि वह नागरिक (श्रीपालीवाल) सही में जिज्ञासु है या परीक्षक। उनकी चर्चा मुनिवर तक गई, मुनिवर ने उन्हें समय दिया। श्री पालीवाल ने एक के बाद एक प्रश्नों के समाधान पाये वह मुनिवर से गहराई तक प्रभावित हुये जब लौटे तो लोगों ने पूछा – मिल गया समाधान? पालीवाल जी लजयाते हुये बोले – मैं चकित हूँ। मैंने पूरे प्रश्न नहीं किये, कुछ प्रश्नों में ही मैं उन्हें गहराई तक जान गया हूँ। वे उद्‌भट विद्वान् हैं आगम और समाज शास्त्र का उन्हें श्रेष्ठ ज्ञान है। उनकी चरण रज से हमारा ग्राम धन्य हुआ है।

दूसरा प्रसंग मंदिर जी का है। तीव्र ग्रीष्म में वे मंदिर के सामने वाले कक्ष में बैठे हुये पसीना-पसीना हो रहे थे। गाँव के लोग जानते थे कि यह कक्ष अधिक गरमाता है, जबकि इसी के समीप जो गलिहारा बना हुआ है, उसमें हवा के शीतल झोंके आते रहते हैं। अतः मुनिवर का कष्ट कम करने की दृष्टि से विनय पूर्वक परामर्श देने लगे – महाराज! हम एक तखत गलियारे में रख रहे हैं, कृपया आप उस पर विराजे, वहाँ कम गर्मी लगती है। परिषह जित मुनिवर श्रावक की बात पर मुस्कुराये फिर चर्या की निष्ठा के आधार पर बोले – भैया हमें सर्दी-गर्मी से मतलब नहीं है, बस हमारी क्रियायें पूरी होना चाहिये। श्रावक गण मोह बस परामर्श दे बैठे थे, मुनिवर के उत्तर से उन्हें ज्ञान हो गया कि वे पल-पल तप रत रहते हैं।

तेंदूखेड़ा के सुन्दर शिखरबन्द चैत्यालयों में वास्तुदोष दूर करने की भावना से मुनिश्री ने अपने सुझाव दिये, सुधी श्रावकों ने जी तोड़ मेहनत की सुधार करने की। उनके मार्गदर्शन में बड़े मंदिर में भगवान् बाहुवली और भगवान् शांतिनाथ की वेदी का शिलान्यास हो गया, छोटे मंदिर में भी भगवान् महावीर की भव्य वेदी का निर्माण कार्य प्रारम्भ हो गया, समय-समय पर तेंदूखेड़ा के प्रतिनिधि मुनिश्री से निर्देशन लेते रहते थे। अब ये भव्य वेदियाँ

दर्शनार्थियों को पूज्य क्षमासागर का स्मरण करा देती हैं।

वर्ष 1998, स्थान बीना, समय वर्षायोग का। मुझे वहाँ पहुँचने का शुभ संयोग मिला मैंने वहाँ देखा कि विशाल श्रावक समूह के समक्ष आदर्श ग्रन्थ रत्नकरण्डक श्रावकाचार पर कक्षा चल रही है, मुनिवर रोज एक श्लोक का अर्थ, भावार्थ, अन्वयार्थ बतलाते हुये गंभीर प्रवचन करते हैं। शैली शिक्षक की तरह। वचन दार्शनिक की तरह। मैं अभिभूत हो गई। कक्षा के बाद मैंने विनम्रता पूर्वक कहा – मुझे शुभोपयोग, अशुभोपयोग और शुद्धोपयोग के विषय में जानकारी दीजिये। विषय की गंभीरता को उन्होंने क्षण भर में समझ लिया, वे जानते थे कि ये समझाने में अतिरिक्त समय लगेगा अतः स्नेह पूर्वक बोले – अभी समय कम है इसका उत्तर मध्याह्न तीन बजे बतलाऊँगा।

हम लोग तीन बजे उनके समक्ष पहुँच गये। हमें प्रश्न नहीं दोहराना पड़ा उन्होंने उत्तर देना शुरू कर दिया। हम संतुष्ट होकर लौटे। आगम का तलस्पर्शी अध्ययन तो उन्हें है ही, आगम के वाक्य उनकी जिह्वा पर बसते हैं यह उस दिन पता चला।

मंडीबामौरा के समाज का भाग्य बीना समाज से अधिक ससक्त निकला क्योंकि मुनिवर ने सन् 1999 के चातुर्मास की स्थापना मंडीबामौरा में की। पूर्व में वर्ष 1988 में भी वे वहाँ वर्षायोग कर चुके थे, अतः अनेक शहरों के लोगों ने मंडीबामौरा को दो गुना भाग्यशाली माना।

सन् 1988 में उन्होंने जो निर्देश दिये थे, मंदिर और उसकी वेदियों के बारे में, वह तदनुरूप परिवर्तन देख रहे थे। मुनिवर को लगा – श्रावकों में मंदिर और धर्मशाला का जीर्णोद्धार ही नहीं किया है, सौंदर्यीकरण भी किया है, मन मुग्ध हो गया। उनकी प्रसन्नता को श्रावक आशीर्वाद मान रहे थे।

सच है, श्रावकों ने एक या दो नहीं अनेक वेदियों में नयनाभिराम परिवर्तन कराया था। धर्मशाला के साफ-सुथरे कक्ष और सभाकक्ष नई कहानी कह रहे थे। वहाँ मुनिवर की धारणा के अनुसार जैन पाठशाला भी चलाई जा रही थी। एक कक्ष विशाल पुस्तकालय के रूप में शोभा पाने में सफल हुआ था अनेक उपलब्धियों से भरा पूरा चातुर्मास सम्पन्न हो गया।

आचार्य श्री के परम शिष्य मंडीबामौरा से विहार कर चुके थे। वे जिस नगर में रुकते थे, वहाँ पथरिया के प्रतिनिधि पहुँच जाते और वहाँ आयोजित किये जा रहे गजरथ महोत्सव में पधारने की प्रार्थना करते। मुनिवर जिस दिशा में बढ़ रहे थे, पथरिया राह में पड़ता था अतः उन्होंने प्रतिनिधियों को मना नहीं किया दूसरे दिन उन्हें जानकारी मिली कि परम पूज्य गुरुदेव भी पथरिया पहुँच रहे हैं, अतः उनका उत्साह बढ़ गया। मन में हिलोर उठी कि गुरुदेव से पहले पहुँचकर उनकी अगवानी का पुण्य प्राप्त किया जाये। उन्होंने अनुरोध कर्त्ताओं के साथ चरण बढ़ाये और दो एक दिन में पथरिया की सीमा स्पर्श कर ली।

सीमा पर पथरिया का संपूर्ण समाज आरती के थाल, मंगल कलश, धर्म पताकायें और वाद्यदल के साथ उनकी अगवानी के लिये उपस्थित था। इतने बड़े समूह ने अगवानी की कि मुनिवर को कहना पड़ा इतने बड़े कार्यक्रम की क्या जरूरत थी? जब मुनिवर स्वागत द्वार पर पहुँचे तो चकित हो गये, वहाँ मुनिवर विरागसागर जी अपने संघ के साथ उनकी अगवानी के लिये खड़े थे। दोनों संतों में नमोऽस्तु, प्रति नमोऽस्तु हुआ। श्रावक समूह जयघोष करता रहा, कोई आरती कर रहा था, कोई पादप्रक्षालन। विशाल शोभायात्रा के साथ मुनिगण नगर में पहुँचे श्रावकों ने उन्हें पृथक्-पृथक् वस्तिकाओं में ठहरने की उचित व्यवस्था की थी।

दूसरे दिन ही आचार्य श्री का आगमन हुआ पुनः सम्पूर्ण समाज और सभी उपस्थित संतगण उनकी अगवानी के लिये नगर से एक किलोमीटर दूर तक जा पहुँचे। पूर्व की तरह आज भी वाद्ययंत्र अभिनंदन गीत निःसृत कर रहे थे। बड़ी-बड़ी पताकाएँ हवा में लहरातीं हुई गुरुवर की वंदना के लिये उत्सुक थी। कन्याओं से लेकर सुहागवती महिलाओं के शीश पर मंगल कलश शोभा बिखेर रहे थे। अनेक समाज के भक्तजन भी आरती की थाल लिये चल रहे थे, उतने ही जन पाद-प्रक्षालन की तैयारी में थे।

सामने से एक विशाल जुलूस आते दिखा जिसके आगे-आगे गुरुवर चल रहे थे। उनके पीछे समयसागरजी, उनके पीछे योगसागरजी और उनके पीछे पूरा संघ। उस दिन नगर की सीमा पर समय ने नूतन इतिहास लिखा जिसका शीर्षक था 'संत-परम्परा में संतों का वात्सल्य'। बड़ी बात यह कि

वह कागज पर नहीं लिखा गया था, पथरिया की धरती पर लिखा गया था। मुनि क्षमासागरजी, उनके पीछे मुनि विरागसागर जी और उनके पीछे उनके संघों के संत आचार्य श्री की अगवानी को तत्पर थे। श्रावक तो पीछे-पीछे जा रहे थे।

जैसे ही आचार्य श्री समीप आये क्षमासागरजी पिच्छिका घुमाते हुये उनके चरणों मे विनत हो गये। गुरुदेव ने उन्हें उठाया तो विरागसागरजी उनके चरणों में भूसात हो गये। गुरुदेव ने उन्हें भी उठाया। संत मिलन का वह दृश्य आँखों से देखा जा सकता था, पर शब्दों में वर्णित नहीं किया जा सकता।

संत स्वागत, संत समागम और फिर संत आगमन, सभी कुछ खुशी-खुशी सम्पन्न हो गया। विराट जुलूस संतों को लेकर नगर के मुख्य मंदिर में आ गया।

दूसरे दिन मुनि क्षमासागरजी ने मुनि विरागसागरजी को मुनि योगसागरजी और समयसागरजी से परिचित कराया। विरागसागरजी ने दोनों को नमोऽस्तु किया और उनके वारिष्ट्य को हृदय पूर्ण सम्मान दिया।

महोत्सव जितने दिन चला संत गण पथरिया में रुके रहे। बाद में अपने-अपने गंतव्यों की ओर विहार किया।

जब मुझे ज्ञात हुआ कि सन् 2000 का वर्षायोग मुनिवर शाहपुर में कर रहे हैं तो हमारा परिवार हर्ष विभोर हो गया क्योंकि शाहपुर हमारे ग्राम कटंगी से अधिक दूर नहीं है। मन बन गया दर्शन करने का।

हम लोग जब शाहपुर पहुँचे तो सीधे मुनिवर के दर्शन करने उनकी वसतिका में प्रवेश कर गये। उनका आशीष क्या मिला आत्मा सुखसागर में तैरने लगी। वसतिका के बाहर एक स्थान पर मुनिवर से सम्बन्धित पुस्तकें देखने मिली तब मुझे पहली बार ज्ञात हुआ कि **आत्मान्वेषी** पुस्तक लिखने में मुनिवर ने गहन चिन्तन किया था। सन् 1984 में संघ जब जबलपुर में था तभी उन्होंने उसका लेखन शुरू कर दिया था। कुछ ही प्रसंग लिखे थे कि सन् 1985 में उन्होंने श्री सुरेश जैन सरल द्वारा लिखित जीवनी '**विद्याधर से विद्यासागर**' का अवलोकन किया। उसे पढ़कर उन्होंने अपने लेखन की गति बढ़ाई और

क्रम निरन्तर रखा। संयोग ऐसा बना कि 12 वर्ष बाद सन् 1996 में आत्मान्वेषी पुस्तकाकार में आई। सन् 1980 में 'प्रवचन पारिजात' का छात्र जीवन में सम्पादन किया था। जिसमें आचार्यश्री के प्रवचन है।

'**आत्मान्वेषी**' में आचार्यश्री का जीवन दर्शन है, जिसे मुनिश्री ने संवेदनशील माँ के माध्यम से प्रस्तुत किया है, जिसमें गुरु के प्रति गहरी आस्था के दर्शन होते हैं, वहीं पूरे जैनदर्शन को भी समाहित किया है अपनी लेखनी में। तभी तो इतना लंबा समय लिखने में लगा।

पाठकों को आत्मान्वेषी बहुत अच्छी लगी। पढ़ते-पढ़ते आँखें झलक जाती हैं, शब्द-शब्द में छिपा था गुरु के प्रति समर्पण। पाठकों की माँग को देखते हुये उसके हिन्दी संस्करण तो प्रकाशित हुये ही। इंग्लिश अनुवाद भी हुआ। जैन-अजैन सभी में इसकी लोकप्रियता बढ़ती जा रही है, अब तो मराठी व तमिल अनुवाद भी हो गया है।

'आत्मान्वेषी' के साथ-साथ उनके कविता संग्रह भी पाठकों को मानवता का संदेश देते रहते हैं, जैनदर्शन की सूक्ष्म विवेचना उनकी लेखनी में छिपी रहती है। सभी भाषाओं के लोग इनकी कविताओं से लाभान्वित हों, इस भावना से इंग्लिश, मराठी आदि भाषाओं में इनका प्रकाशन हो चुका है अभी तक सात पुस्तकें अन्य भाषाओं में पाठकों के हाथ में आ चुकी हैं।

'कर्म कैसे करें' पुस्तक में कर्मसिद्धान्त की अनूठी व्याख्या सरल सहज भाषा में की गई है, पाठकों को नई दिशा देने वाली यह पुस्तक लोकप्रियता के शिखर पर पहुँच गई है। 'सोलह कारण भावना' नाम की कृति भी सोलह भावनाओं की सहज साधना की ओर पाठकों को ले जाती है। जैन दर्शन को क्लिष्ट और असहज कहने वाले जन मानस में मुनिश्री की लेखनी से अद्‌भुत परिवर्तन हुआ है उन्हें समझ में आ गया है जैनदर्शन सहज जीवन जीने का उत्तम साधन है।

'गुरुवाणी' में दशधर्मों पर प्रवचन का संकलन हैं, जयपुर में प्रकाशन हुआ था। 'गुरुवाणी' के अगले पुष्प में बारह भावना के प्रवचन समाहित किये गये हैं। तब मैंने उनकी अन्य पुस्तकों पर दृष्टि डाली तो ज्ञात हुआ कि विख्यात पुस्तक 'अकिंचित्कर' का सम्पादन और प्रकाशन सन् 1987 में नैनागिर में

सम्पन्न हुआ था। 'मुक्ति', 'मैं तुम्हारा हूँ' और 'जैन दर्शन पारिभाषिक कोश' (जैन डिक्शनरी) ऐसी कालजयी कृतियाँ हैं। हर श्रावक अधिक से अधिक समय तक मुनि के समीप बना रहना चाहता है किन्तु मुनि भक्ति के विरुद्ध उसकी गार्हस्थिक जिम्मेदारियाँ शीश उठाकर तन जाती हैं, अतः मजबूरन लौटना ही आवश्यक हो पड़ता है। यही हमारे साथ हुआ सो हम भी अपने नियत समय पर वापस हो गये।

बहुत दिन हो गये गुरु वियोग में, मुनिश्री को याद आने लगी आचार्य महाराज की। अँखियाँ तरस रहीं थी गुरुदर्शन के लिये। मुनिश्री का पुण्य जागा, शाहपुर चातुर्मास के उपरान्त विहार हुआ कुण्डलपुर की ओर। बड़े बाबा की छत्रछाया में जहाँ विराजमान थे छोटे-बाबा। उत्साहित मन लिये हुये पहुँच गये गुरु चरणों में। आचार्यश्री के दर्शन कर गद्-गद् हो गये। नमोऽस्तु कर रहे थे। साथ में अविरल अश्रुधारा बह रही थी। बहुत देर तक एक निर्ग्रन्थ श्रमण अपने गुरु के पाद-प्रक्षालन करता रहा अपने श्रद्धा घट से। अपने अश्रुजल से। मन हल्का हो गया गुरु की छत्र छाया में। मुक्त हो गये सारी जवाबदारियों से। जिस प्रकार एक बेटी अपने मायके आकर निश्ंचित हो जाती है, वैसी ही स्थिति पूज्य क्षमासागर जी की थी पर कितने दिन रह पाऊँगा वात्सल्य से पूरित? कितने दिन रहेगा यह आनंद? कारण, ग्रीष्मकाल समाप्ति की ओर है, संघस्थ मुनि आर्यिकाओं को विहार के संकेत मिलने लगे थे।

उसी समय आचार्य नेमिसागरजी जिनका जन्म कटंगी के समीप सकरा ग्राम में हुआ था। जिनके गृहस्थ जीवन का अधिकांश समय कटंगी में ही बीता था। वे अपने शिष्य वृद्ध मुनि भव्यसागरजी के साथ कुण्डलपुर पहुँच गये आचार्यश्री के दर्शन करने। परम पूज्य भव्यसागरजी आचार्य श्री के संघ में रहकर अपनी समाधि की साधना करना चाहते थे। वे पूज्य क्षमासागरजी के वात्सल्य से परिचित थे, सो भावना व्यक्त कर दी। आचार्यश्री जानते थे, भव्य सागर की उचित देखभाल और मुनिचर्या का निर्दोष पालन क्षमासागरजी करा सकते हैं, सो अनुमति प्रदान कर दी साथ में रहने की। बहुत प्रसन्न थे मुनि भव्यसागर जी।

पूज्य मुनिश्री को भी संकेत मिल गया। शिवपुरी विहार करना है

सुनकर मन उदास हो गया। अब गुरु का पुनः वियोग होगा, दो माह उनकी वात्सल्य छाया में कैसे बीत गये पता ही न चला। गुरु आज्ञा का पालन करने चल पड़े शिवपुरी की ओर।

गाँव-गाँव, शहर-शहर, डगर-डगर मुनिश्री की ज्ञानधारा प्रवाहित होती रही थी। जहाँ चरण पड़ते, पावन हो जाती वहाँ की मिट्टी। तीर्थंकरों जैसी देशना गूँजती, कोयल कूकने लगती वीरान मनों में। सिसकती मानवता को मानो मसीहा मिल जाते। बसन्त बौरा जाता कण-कण में।

बसन्त का अवीर छिड़कते हुये पहुँच गये शिवपुरी। सन् 2001 की पावन घड़ी में हो गई चातुर्मास स्थापना। शिवपुरी मानो धन्य हो गई जहाँ, शिवपुरी के अभिलाषी श्रमण ने अपनी साधना करने चातुर्मास स्थापना का मंगल कार्य किया था।

अनेक विधाओं में निष्णात थे पूज्य श्री। मंदिर और भवनों की निर्माण कला उनके पास थी तो वास्तु विद्या का समुचित ज्ञान था। आने लगे बड़े-बड़े निर्माता। आने लगे विद्यार्थी, जो अपने उज्ज्वल भविष्य की कामना में अनेक संभावनाओं से युक्त शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।

मुनिश्री के मार्गदर्शन में वे पहुँच गये उन्नति के शिखर पर। बन गये बड़े-बड़े डाक्टर्स, इंजीनियर्स, चार्टर एकाउन्टेड और उद्योगपति। उनको मिले थे मुनिश्री के संस्कार, उन्होंने बोये थे संस्कृति के बीज।

ऐसे सुसंस्कृत वर्ग को देखकर मुनिश्री की खुशी का पार न था। उन्होंने महसूस किया हमारे समाज में प्रतिभायें साधनों के अभाव में कुण्ठित हो जाती हैं, श्रेष्ठ मार्गदर्शन के अभाव में भटक जाती हैं। उनको लगा कि उनका एक वर्ग ऐसा हो जो निरपेक्ष भाव से, उन छात्रों को आलम्बन दे सकता है, जो आर्थिक अभाव से जूझ रहे हैं। उन्होंने चर्चा की सेवाभावी सज्जनों से। वे उत्सुक ही थे - शुभ कार्य के लिये। कहा भी है - पुण्य कार्य करने की प्रतीक्षा बहुत लोग करते हैं, पर एक आगे आने वाला होना चाहिये। अच्छे कार्य का साथ सभी देते हैं। मुनिश्री की भावना साकार होती चली गई। बहुत सारे भक्त उनकी भावना को मूर्त रूप देने आगे आये और मैत्री समूह के रूप में बंध गये

नव सृजन के लिये। प्राणीमात्र की कल्याण की कामना ही मैत्री समूह का लक्ष्य है।

यह एक ऐसी अनोखी संस्था है, जिसका न कोई अध्यक्ष है, न सचिव। बस जिसके मन में सेवा से जुड़ने की चाह है वही मैत्री समूह का सदस्य बन जाता है। छात्रों को आर्थिक सहयोग देना, मार्गदर्शन देना, जहाँ क्षमता है पर साधनों का अभाव है, उनको साधन जुटाना इस समूह का उद्देश्य है।

मैत्री समूह के माध्यम से पहली बार 'यंग जैना अवार्ड' का गौरवशाली कार्यक्रम सम्पन्न हो गया शिवपुरी में। महाराजजी के कुशल निर्देशन ने स्फूर्ति भर दी उस कार्यक्रम में। आर्थिक अभाव से ग्रसित छात्रों को आर्थिक संबल मिला। उनको मुनिश्री ने निर्देश दिया जब तुम स्वावलम्बी हो जाओगे तो यह राशि दूसरे छात्रों को प्रदान कर देना और भी अपनी क्षमता के अनुसार यंग जैना अवार्ड कार्यक्रम में सहयोग देना ताकि यह ज्ञान दान का यज्ञ चलता रहे वर्षों तक, युगों-युगों तक। जो छात्र सम्पन्न थे, लेकिन जानकारी के अभाव में सही दिशा में नहीं बढ़ पा रहे थे, उनकी क्षमता, लगन, सामर्थ्य के अनुसार मुनिश्री ने सोच समझकर निर्देशन दिया फलतः वे बड़े-बड़े पदों पर सुशोभित हो सके।

मुनिश्री अतिशयक्षेत्र महावीर के टीले वाले बाबा के दर्शन करना चाहते थे। गुरु आज्ञा भी मिल गई, महावीरजी की ओर विहार हो गया। राजस्थान की मरुभूमि में मुनिश्री की वाणी की अद्भुत वर्षा होने लगी, रेत में सहृदयता की फसल लगने लगी, जहाँ चरण पड़ते, पलक पाँवड़े बिछ जाते मुनिश्री की अगवानी में। न्यौछावर हो जाते सुधी श्रावक उनके चरणों में। सामायिक हो या वंदना, स्वाध्याय हो या प्रतिक्रमण। सभी कुछ तो निराला था, उत्कृष्ट और पावन। ध्यान की मुद्रा तो महावीर की मुद्रा का अवलोकन करा देती थी। देखते रहते निरन्तर, एकटक, अनिमेष पलकों से श्रावक।

दया और परोपकार की अलख जगाते पहुँच गये महावीरजी। टीले वाले बाबा के दर्शन किये। लगा, इनसे तो मेरा नाता कई जन्मों से है। अतः अपने गुरु के शब्द लेकर गुनगुनाये -

नीर निधी से धीर हो, वीर बने गंभीर।
पूर्ण तैर कर पा लिया, भवसागर का तीर॥
अधीर हूँ मुझे धीरे दो, सहन करूँ सब पीर।
चीर चीर कर चिर लखूँ, अन्तर की तस्वीर।

उस दिन सभी ने जाना भगवान् से बात भी कर सकते हैं। सभी ने देखा कि इनका मौन संवाद चल रहा है, मुनिश्री की मुद्रा कर रही थी रहस्यमयी बातें। लम्बा संवाद चला भगवान् और भक्त का। कहते हैं भक्त और भगवान् के बीच गहरा सम्बन्ध जुड़ जाये तो मूर्ति में मूर्तिमान के दर्शन हो जाते हैं। ऐसा ही हुआ उस दिन।

होने लगी साधना, महावीर प्रभु के दरबार में। दर्शन करते और उनके चरणों में ध्यान करते। समय पंख लगाकर उड़ रहा था, पता ही न चला, डेढ़ माह बीत गये। आदेश याद था गुरुवर का सो महावीरजी से विहार करने का विचार किया।

कितनी शांति है वीर प्रभु के दरबार में? उनसे दूर जाने का मन नहीं हो रहा था, पर जाना तो था गुरु महाराज के संकेत पर।

आ गई विदाई की बेला। पहुँच गये बाबा से विदाई लेने, आँसुओं का सैलाब रुक ही न रहा था, बाबा के चरणों का अभिषेक हो रहा था, अमूल्य मुक्ता कणों से। बोले–भगवन्! अब आपके दर्शन कब होंगे? आपकी निर्मल छाया पुनः कब प्राप्त होगी? भगवान् की मुद्रा कह रही थी – मैं तो हमेशा साथ हूँ। मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है, गुरु आज्ञा का पालन करो, अपने पथ पर आगे बढ़ो। गुरु आज्ञा का पालन करने विहार कर दिया। श्री महावीरजी क्षेत्र से विदा लेकर चल पड़े जयपुर की ओर।

मई का महीना था, राजस्थान की तपती रेत में चल रहे थे महायोगी। पैरों में फफोले आ गये थे, पर उनको अपने शरीर की पीड़ाओं से कोई सरोकार न था। वे तो बस, वीर प्रभु के साथ बिताये क्षणों की कल्पना कर रहे थे। न किसी से बोलते थे न मुस्कुराते थे। सभी को चिंता हुई क्या महाराज जी नाराज हैं?

साथ चल रहे श्रावक ने बड़ी हिम्मत जुटा कर पूछ लिया – महाराज जी! हमसे कोई गलती हो गई है? हम क्षमा चाहते हैं। उत्तर दे दिया क्षमा के सिन्धु ने – आप लोगों से कोई त्रुटि नहीं हुई है मुझे वीर प्रभु याद आ रहे हैं। उनके साथ बिताये क्षण याद आ रहे हैं और कोई बात नहीं है।

राजस्थान की मरुभूमि में अपनी देशना से अमृत वर्षा करते आ गये जयपुर। वीरों की भूमि गुलाबी शहर। उत्कृष्ट चर्या के धनी श्रमण की उपस्थिति ने गुलाबी शहर में धूम मचा दी। आने लगे सारे शहर और सुदूरवर्ती इलाकों से श्रोता। मुग्ध हो जाते दिव्य देशना से, प्रवचन के समय शांति छा जाती हाल में। जिनवाणी के अमृत की एक–एक बूँद हृदय की गागर में समेटने आतुर थे जयपुर वासी।

सन् 2002 का वर्षायोग जौहरी बाजार में स्थापित किया गया। रत्नों की नगरी में बहुत सारे जौहरी आते थे रत्न लेने। अनोखे कोहिनूर की चर्चा सुदूर तक फैल गई, अमूल्य कोहिनूर की चमक देखने जौहरियों की भीड़ लगने लगी। रत्नों और मूर्तियों की खरीद तो तंग गलियों में भी हो सकती है, लेकिन चेतन रत्न को पाने, समझने और सुनने ऐसा जन सैलाब उमड़ा कि गलियाँ और मंदिर छोटे पड़ने लगे।

जयपुरवासी भरपूर लाभ लें मुनिश्री की वाणी का, मुनिश्री के सान्निध्य का। ऐसा विचार कर सुधी श्रावकों ने पर्युषण पर्व के लिये भट्टारक की नसियाॅं प्रांगण में सान्निध्य देने आग्रह किया, आशीर्वाद मिल गया। नसियाॅं के पिछवाड़े में बहुत बड़े प्रांगण में सामूहिक पूजन की व्यवस्था की गई। करीब 900 श्रावक–श्राविकाएँ मुनिश्री के सान्निध्य में दस धर्मों की आराधना करने लगे। सामूहिक पूजन होती थी रोज।

एक दिन साज बाज के साथ चल रही थी पूजन, तभी मुनिश्री ने पांडाल में प्रवेश किया। महावीर पूजन के अर्घ चढ़ रहे थे। कहने लगे साज की तीव्रता में हम मुख्य उद्देश्य को नहीं समझ पाते, साज की ध्वनि पूजन के भाव में बाधक न बने, वही सार्थक संगीत है। देव–शास्त्र–गुरु की पूजन तो हमें समता और शांति दिलाती है, फिल्मी धुनों के संगीत भावों को लुप्त कर देते हैं।

सभी श्रोता उनकी इस बात से प्रभावित हुए।

जयमाला होनी थी। श्रीमुख से ज्योंही जयमाला प्रारम्भ हुई, साथ ही हल्के संगीत का साथ था गूंज उठा पांडाल। झूम उठे श्रोता। करने लगे नृत्य। ऐसी पूजा न कभी सुनी थी न देखने का मौका मिला था। मैंने भी देखा यह मनमोहक दृश्य। मुनिवर का सान्निध्य पाने, जयपुर गई थी। पर्युषण पर्व में रात्रि में महावीरनगर में मेरे प्रवचन होते थे और दिन में मुनिश्री का कार्यक्रम देखती थी। मन भावन और अर्थवान हो गई थी, उनके कंठ की गूंज। रोज मुनिवर जैसी पूजन करने लगे भक्तगण।

पूजन के पश्चात् दस धर्मों पर प्रवचन होते थे। सोनगढ़ वाले, तेरापंथी, बीसपंथी, जैनेतर तथा श्वेताम्बर समाज ने भी उनका समागम पाकर अपने आपको धन्य माना था। मुनिश्री की वाणी एवं चर्या सभी को समन्वय की धारा से जोड़ने वाली थी। सभी सहमत थे मुनिश्री के विचारों से। उनकी चर्या से, उनकी चर्चा से।

ऐसा अभूतपूर्व समन्वय जयपुर समाज ने अनेक वर्षों बाद देखा था। दोपहर में तोतूका हाल में होता था तत्त्वार्थसूत्र का अर्थ और शंका समाधान। अध्ययन की मिठास सभी के प्रश्नों का समीचीन समाधान दे देती। तभी तो पच्चीस-तीस किलोमीटर से लोग दौड़े आते थे श्री चरणों में और अमूल्य अमृत कणों को अपने हृदय में संचित करते जाते थे।

रास्ते चलते लोग भी खड़े हो जाते प्रवचन सुनकर। वाणी का चमत्कार और त्याग का प्रताप सबको अपना बना लेता। एक व्यक्ति जो जाति का पटैल था, गुजर रहा था वहाँ से। प्रभावी स्वर सुनकर पग रुक गये। देखा मंदिर के प्रांगण से यह आवाज ध्वनित हो रही है। यह मधुर आवाज किसकी है? जिनके वचन इतने प्रिय हैं उसे देखना चाहिये। खोज रहा था प्रवेश द्वार। श्वेत परिधान वाले ब्रह्मचारी भैया दिखे, पूछा भैया! हम प्रवचन सुन सकते हैं? भैया ने कहा – क्यों नहीं सुन सकते? भैया! अंदर कहाँ से जाना है? भैया ने संकेत कर दिया।

अंदर जाकर देखता है दिगम्बर वेश में दो महामानव विराजमान हैं सोचने लगा – अरे! ये तो साक्षात् भगवान् के अवतार हैं। माथा टेक दिया श्री

चरणों में। बड़ा प्रभावित हुआ उनके वचनों से और उनकी वीतराग मुद्रा से।

घर लौटकर उसने देखा वह कई दिनों से बहुत बड़ी समस्या से परेशान था। वर्षों से व्यन्तर बाधा ने घेर रखा था। उसकी व्यन्तर बाधा दूर हो गई थी। वह स्वस्थ हो गया। घर से समय निकाल कर करने लगा सेवा और भक्ति नित्य-नित्य। घर तो अब वह बहुत कम रहने लगा, अधिकतर समय मुनिश्री की सेवा में ही रहता। उसकी भक्ति भावना देख पूछ लिया एक यात्री ने। भैया-आप इतनी सेवा करते हैं महाराज जी की। क्या मिलेगा सेवा से? आत्मविश्वास से उत्तर दिया जो इनकी सेवा करेगा, भवसागर तर जायेगा। तब से भगवान् मानने लगा मुनिश्री को।

वर्षायोग की समाप्ति पर आचार्यश्री का संकेत मिला, कोटा पहुँचना है। चाँदखेड़ी के आदिनाथ भगवान् के दर्शन किये। ऐसी मनोहारी प्रतिमा की छत्रछाया में साधना अबाधता की ओर बढ़ती गई, अब कोटा की ओर पग बढ़ गये।

कोटा पी.एस.सी., आई.आई.टी, आई.एस. आदि की कोचिंग का बहुत बड़ा केन्द्र है। देश भर से हर प्रांत के छात्र छात्रायें आते हैं, उज्ज्वल भविष्य के सपने लेकर। छात्रों ने सुना ऐसे मुनिराज आये हैं, जिनको शिक्षा एवं शिक्षार्थियों से बड़ा लगाव है। आने लगे छात्रों के समूह, जैन-जैनेतर। सभी को मुनिश्री से आशीर्वाद और मार्गदर्शन लेना था।

कुछ छात्र तो वास्तव में अपने कैरियर के बारे में उत्साहित थे और कुछ ऐसे थे जो भाग्य आजमाने चले आये थे। मुनिश्री ने दिग्भ्रमित अंधी दौड़ में भागने वाले विद्यार्थियों को समझाया – यदि तुम वास्तव में मेहनत कर सकते हो, तुम्हें विश्वास हो, हम सफल हो सकते हैं, तब तो तुम्हारा यहाँ रहना उचित है और यदि तुम्हें अपने आप पर भरोसा नहीं, तो समय और पैसा बरबाद करने से कोई प्रयोजन नहीं है। तुम्हें अपनी योग्यता और रुचि के आधार पर, नौकरी या व्यवसाय चुन लेना चाहिये।

छात्रों को लगा मुनिश्री का कहना उचित है उन्होंने मुनिश्री के निर्देशन में जीवन में बहुत कुछ हासिल कर लिया। जितने दिन मुनिराज वहाँ रुके लाभ लेते रहे छात्रगण। भक्त बन गये तन से मन से।

कोटा में श्रुतपंचमी के दिन श्रावकों ने मुनिश्री के सान्निध्य में श्रुत-आराधना की, मुनिश्री के प्रवचनों का लाभ मिला।

श्री एस.एल. जैन भी मुनिश्री के दर्शन करने कोटा पधारे। उनका अनुभव उन्हीं के शब्दों में पाठकों के समक्ष रख रहे हैं -

5 जून को मुनिश्री कोटा में थे। मैंने अणुव्रत 1997 में भोपाल में ग्रहण कर लिये थे प्रतिमा धारण करने का मन था निवेदन करने पर मुनिश्री ने कहा - आचार्यश्री से प्रतिमा दिला देंगे। मैंने निवेदन किया - यदि मैं आचार्यश्री से प्रतिमा लेता हूँ तो प्रायश्चित आदि के लिये उनके पास जाना पड़ेगा। मैं अधिक समय आपके नजदीक रहता हूँ अतः आप ही मुझे प्रतिमा प्रदान करें अन्यथा मैं बिना व्रत लिये उनका पालन करता रहूँगा।

उसी बीच एक अजीब घटना घटी मेरे कमरे के बाहर आँगन में शौचालय और स्नानगृह थे जब चार बजे मैं शौचालय में गया अनायास आँगन में वर्षा होने लगी और कहीं भी वर्षा नहीं हो रही थी दूसरे दिन भी ऐसा ही हुआ।

उस दिन प्रतिष्ठाचार्य जी किसी प्रतिष्ठित मूर्ति में सूर्यमंत्र देने के सम्बन्ध में चर्चा कर रहे थे मुनिश्री ने कहा - इस स्थान पर कई घटनायें हो रही हैं, मैं इस सम्बन्ध में न तो कोई परामर्श दूँगा और न ही आशीर्वाद दूँगा।

उस चर्चा को सुनकर मैंने दोपहर में एकान्त समय में आँगन में लगातार दो दिन से निश्चित समय पर बूँदा-बाँदी वाली बात मुनिश्री से बताई और कहा - यह प्राकृतिक नहीं है मुनिश्री ने कहा - यह किसी भावी घटना का संकेत है इष्ट या अनिष्ट कुछ भी हो सकता है इसलिये हमें सजग और सावधान होकर रहना होगा। कल अष्टमी के दिन यह घटना नहीं होनी चाहिये यदि हो तो मुझे बताना।

दूसरे दिन प्रातः यह घटना नहीं हुई पर मेरा मन अशान्त था। पूजा, प्रवचन में मन नहीं लगा बार-बार प्रतिमा ग्रहण के भाव हो रहे थे। आहारोपरांत मुनिश्री से निवेदन किया। उन्होंने कहा - रामगंजमंडी में सात प्रतिमायें देंगे, लेकिन उनका पालन अभी से करने लगो, मैं प्रसन्न था और रामगंजमंडी के

पर्युषण पर्व के शुभ मुहूर्त की प्रतीक्षा कर रहा था। जब मेरी भावना पूर्ण होगी।

सन् 2003 का वर्षायोग रामगंजमंडी के भाग्य का सुयोग्य अवसर था जहाँ चरण पड़ते तीर्थ बन जाता वहाँ। उनकी सुकीर्ति भारत की वसुन्धरा को लांघकर सात समुद्रों को पार करने आतुर रहती।

चार माह मेला लगा रहा रामगंजमंडी में। दर्शनार्थियों का, साधकों का, विद्वानों और उद्योगपतियों का। सभी परोपकार के महायज्ञ में आहुति देने चले आ रहे थे जयकारों के साथ। आते तो सभी खाली थे पर उनकी झोली भर जाती थी, सुकून और शांति के अमूल्य रत्नों से। रत्नों की वर्षा जो हो रही थी संयम के कुबेर के द्वारा।

पर्युषण पर्व आ गये धर्म की कोयल कूकने लगी, आ गये दूर-दूर से श्रावक गण। एस. एल. जैन भी प्रतिमा लेने की भावना से रामगंजमंडी आये उनको मुनिश्री ने दो प्रतिमा के व्रत ही दिये। उन्होंने बहुत आग्रह किया कि मुझे पाँच प्रतिमाओं के व्रत प्राप्त हों। महाराजजी ने कहा - बाकी प्रतिमायें किसी तीर्थस्थान पर देंगे। आज दो प्रतिमा के व्रत ही धारण करो।

उनका मन उदास था भगवान् के सामने चिन्तन करने पर लगा कि मोक्षमार्ग में धीरे-धीरे बढ़ना ही ठीक है। महाराजजी के आशीर्वाद और मार्गदर्शन में ही मुझे कदम बढ़ाना है।

चातुर्मास निष्ठापन के दिन दीपावली को एस.एल.जैन पाँच प्रतिमा के धारी बन गये।

चातुर्मास पूर्ण हो गया, पता ही न चला भक्तों को। योगी कब कहाँ ठहरते हैं वे तो सरिता की भाँति सभी की तृषा शांत करते हुये बहते जाते हैं बढ़ते जाते हैं अविरल/अनवरत/निरन्तर।

छोटे-छोटे कस्बों को अपनी अमृत धारा से सराबोर करते हुये, गुरु के संकेतों पर बढ़ते जा रहे हैं आगे, बहुत आगे। झालरापाटन तीर्थ के दर्शन किये चरणों में श्रावक झुक गये। विनम्र निवेदन किया - महाराजजी हमें सेवा का मौका दीजिये।

झालरापाटन होते हुए चाँदखेड़ी पहुँच गये, चाँदखेड़ी में भगवान्

आदिनाथ के दरबार में खूब साधना हुई, खूब विशुद्धि बढ़ी। एस.एल. जैन का भाग्य जागा उन्होंने जो चाहा मुनिवर ने दिया। 17 दिसम्बर, 2003 को वह भव्य श्रावक सात प्रतिमाओं से शोभित हो गया, धन्य-धन्य कह बैठा अपने भाग्य को और गुरुवर के आशीष को।

झालावाड़ को भी मिला गुरुवर का सान्निध्य। भवानीमंडी में करीब डेढ़ माह श्रावक, गुरु की चरण रज लेते रहे, वैय्यावृत्ति करते रहे। धन्य हो गये सभी। सुसनेर होते हुये उज्जैन पहुँच गये।

उज्जैन में महाकुम्भ का आयोजन था, दूर-दूर से साधु महात्मा दर्शक आये थे, पुण्य सलिला क्षिप्रा में स्नान करने। आयोजकों को पता चला धारावाहित शांति का उद्घोष करने वाले महाश्रमण का आगमन हुआ है कुम्भनगरी में। महाराजजी के पास निवेदन करने आये - महाराजश्री! महाकुम्भ मेले में हम सभी आपके प्रवचन का लाभ लेना चाहते हैं। आप हमें स्वीकृति दीजिये, हमें सेवा का अवसर दीजिये। मुनिवर ने कहा - गुरु आज्ञा के बिना मैं कोई भी कार्य नहीं करता। उत्तर सुनकर आयोजकों को लगा - लोकेषणा से दूर रहने वाले ये साधक साधारण मानव नहीं हैं, ये असाधारण महामानव हैं, चरण वंदन कर चले गये। चले तो गये पर मन भीग गया था, मुनिचर्या और चर्चा की क्षिप्रा में।

आचार्यश्री ने सन् 2004 का चातुर्मास अशोकनगर में करने को कहा - सुनकर स्तब्ध रह गये, समय कम है तीन सौ किलोमीटर दूर विहार कैसे करेंगे? शारीरिक कमजोरी भी महसूस कर रहे थे। आचार्यश्री ने कहा - धीरे-धीरे चलो। चिन्ता न करो, मेरा आशीर्वाद तुम्हारे साथ है। गुरु के आशीर्वाद ने ऊर्जा प्रदान कर दी। चल पड़े अशोकनगर की ओर।

अशोकनगर वाले उत्साहित थे। वे उनकी अनुशासित चर्या और प्रभावना के तरीके से परिचित थे। भव्य त्रिकाल चौबीसी के ध्वजों से सुसज्जित नगरी ने अभिनन्दन किया साधु द्वय का।

गंज मंदिर के सामने विशाल पांडाल में होते उपदेश चतुर्थ काल का स्मरण दिलाती थी। दो मुनिराजों को लग रहे थे पचास-पचास चौके।

विशाल शिक्षण शिविर का सफल आयोजन श्रेष्ठ विधानाचार्य एवं प्रवचन मनीषी ब्र. संजीव भैया के निर्देशन में सम्पन्न हुआ, मैंने भी शिक्षिका की हैसियत से मुनिश्री की शिक्षण पद्धति देखी। करीब 2200 शिविरार्थियों ने शिविर में भाग लेकर संस्कार ग्रहण किये। गुरुकुल के संस्कार और विद्यालय के लौकिक ज्ञान का अनूठा समन्वय था। यह सब उन योगीराज की सूझ-बूझ का परिणाम था।

रमता योगी बहता पानी की कहावत को चरितार्थ करते बढ़ते जाते थे गुरु के संकेतों पर। लोग उनकी चर्या से समय का अंदाज लगाते थे। घड़ी की सुई कदाचिद् धोखा दे जाये पर मुनिश्री की व्यवस्थित चर्या का एक-एक घटक सारे भारत का समय निर्धारित करने की क्षमता रखता था। प्रतिवर्ष की भाँति अशोकनगर में भी **'यंग जैना अवार्ड'** का बहुत विशाल आयोजन किया। 600 छात्र-छात्राओं को सम्मानित किया गया। अनुभव के क्षण याद आते हैं मेरी बेटी शालिनी सिंघई को। वह भी दसवीं में योग्यता प्राप्त करने के कारण 'यंग जैना अवार्ड' का पुरस्कार प्राप्त करने गई थी।

वह कहती है - अशोकनगर पहुँचते ही स्टेशन पर छात्र-छात्राओं का अभिनंदन हुआ, बड़े स्नेह से उन्हें ठहराया गया। सुबह होते ही जैसे स्नान से हम लोग निवृत्त हुये स्वयं सेवकों ने सुन्दर द्रव्य सामग्री सभी के हाथों में थमा दी। सभी ने मुनिश्री के दर्शन किये और सामूहिक पूजन की। बड़े-बड़े प्रतिष्ठित स्वयंसेवक-सेविकायें सारी जरूरतें पूरी कर रही थीं। पूजन के उपरान्त सभी छात्र-छात्राओं को शुद्ध वस्त्र उपलब्ध कराये गये थे। पंक्तिबद्ध होकर सभी छात्र-छात्राओं ने मुनिश्री को आहार दिये। कोई वंचित न रह जाये, आहार-दान से, इस बात का मुनिश्री ध्यान रख रहे थे।

दोपहर को नियत समय पर कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ, मेरा नाम छूट रहा था, मुनिश्री ने कहा - कटंगी वाली बिटिया का नाम लेना है। मैं सुनकर गद्गद् हो गई। कितना ध्यान है महाराज जी को सभी का।

प्रत्यक्ष रूप से भी मुनिश्री सभी से मिले, सभी की समस्यायें सुनी, सभी का समाधान किया। जिनको जरूरत थी उनको आर्थिक मदद मिली। ऐसे-ऐसे प्रान्तों से अवार्डी आये थे, जिन्होंने कभी मुनियों को देखा ही न था, बड़े

आश्चर्य से वे मुनिचर्या देख रहे थे। सभी ने कुछ न कुछ नियम लिये।

विदाई के क्षण आ गये, आँखों में आँसू लिये गुहाटी, डीमापुर आदि स्थानों के अवार्डी चले गये स्मृतियाँ लेकर।

पूज्य मुनिश्री की ख्याति ऐसी फैली। सभी प्रयत्न करते हमें वर्षायोग मिल जाए, हमें ग्रीष्मकाल ही मिल जाये। मुरैना वासियों ने ऐसा ही प्रयास किया सन् 2005 का वर्षायोग उनके इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में अंकित हो गया, सभी ने खूब लाभ लिया, खूब सुना।

मुरैना के ब्रह्मचारी संजय भैया को भी मुनिवर का आशीष मिला था। संजय भैया ने प्रथम बार श्रीमहावीरजी में मुनिश्री के दर्शन किये थे, वह संकोची स्वभाव के हैं, अतः दूर से ही मुनिश्री की वाणी और चर्या से प्रभावित होते रहे। वह बहुत अच्छे विधानाचार्य, प्रवचनकार और ओजस्वी व्यक्तित्व के धनी हैं तथा लौकिक पढ़ाई में भी वे Computer में PG एवं जैनदर्शन में भी PG डिग्री लिए हैं। रामगंजमंडी और अशोकनगर के शिविर में वह महाराज जी के परम भक्त बन गये। मुरैना चातुर्मास में सारे कार्यक्रमों का भार मुनिश्री भैया के ऊपर डालते थे। भैया भी पूरी जिम्मेदारी से सारा कार्य करते एवं मुनिश्री की पूरे समर्पण के साथ वैय्यावृत्ति करते थे।

मुरैना में भी विगत वर्षों की भाँति मैत्री समूह के द्वारा मुनिश्री के सान्निध्य में 'यंग जैना अवार्ड' का विशाल कार्यक्रम आयोजित हुआ। देश के कोने-कोने से आ गये प्रतिभाशाली छात्र-छात्राओं के समूह। समुचित व्यवस्थायें मुनिश्री की दूरदर्शिता और अनुशासित चर्या का हिस्सा बन गई थीं। विशाल पांडाल में जन सैलाब उमड़ रहा था। सब कुछ पूर्व नियोजित, व्यवस्थित और शालीनता से पूर्ण था।

कार्यक्रम के दौरान संचालक महोदय की छोटी-सी भूल को मुनिश्री की मधुर वाणी ने नया रूप दिया था।

मंगलाचरण और गुरुवंदन से कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ कार्यक्रम संचालन में दक्ष थे संचालक महोदय। अवार्डियों की लिस्ट थी संचालक महोदय के हाथ में। मुनिश्री भी अपनी लिस्ट में क्रमबद्धता का ध्यान बनाये हुये थे।

प्रतिभावान विद्यार्थी पुरस्कार लेने से वंचित न रह जायें इसका उन्हें पूरा ध्यान था।

आमंत्रित किया जा रहा था विजयी छात्रों (अवार्डियों) को। वे आते और पुरस्कार प्राप्त कर नमोऽस्तु करते हुये बैठते जा रहे थे। सहसा क्रमांक 125 छूट गया संचालक जी से। लिस्ट बहुत बड़ी थी, कभी-कभी ऐसा हो जाता है। मुनिश्री ने मधुर वाणी में कहा - लगता है संचालक जी को मेरे सहयोग की आवश्यकता है। पहले फलां छात्र को बुलाना है उसके बाद फलां छात्र को बुलाना है। संचालक जी को अपनी भूल का एहसास हुआ। सभी ने समझा कितनी सरल और भद्र वाणी में कार्यक्रम की क्रमबद्धता को सम्हाल लिया। ऐसे उदार योगी के आसपास प्रतिकूलतायें, समस्यायें टिक न पाती थीं। वे अनुकूलता और समाधान बनकर विनत भाव से झुक जाया करती थीं।

मुरैना का 'यंग जैना अवार्ड' का कार्यक्रम सर्वोत्तम भव्यता को प्राप्त हुआ था। कारण पाँच वर्ष पूरे हो चुके थे। जिन अवार्डियों ने निरन्तर सफलतायें प्राप्त कर, 'यंग जैना अवार्ड' में पुरस्कार प्राप्त किये थे, उनको डिग्री की पूर्णता पर दीक्षान्त समारोह के साथ एक विशेष पोशाक (कनवोकेशन गाउन) पहिनाकर सम्मानित किया गया। अनेक अवार्डी जो बड़े-बड़े पदों पर सुशोभित हो चुके थे या होने को थे, उन्हें देखकर मुनिश्री के हर्ष का ठिकाना न था। जिस बीज को उन्होंने प्रोत्साहन की नमी, मार्गदर्शन की ऊर्जा प्रदान की थी आज उसमें सफलता की फसल लहलहा रही थी, उस फसल ने नये बीजों की संरचना और वृद्धि करने का संकल्प लिया और साथ में लिया मुनिश्री का आशीर्वाद।

कुछ दिनों के बाद पिच्छी परिवर्तन का कार्यक्रम भी भव्यता के साथ सम्पन्न हुआ। चातुर्मास पूर्ण हो गया। अध्यात्म और शांति के बीज बोते-बोते ग्वालियर की ओर विहार कर दिया।

ग्वालियर में उन दिनों उपाध्याय ज्ञानसागरजी विराजमान थे। वे अनोखे व्यक्तित्व के धनी मुनि क्षमासागरजी से मिलना चाहते थे। भिन्न-भिन्न आचार्यों के शिष्य ये दोनों महाराज जी। उस दिन दो अलग बहती धाराओं का मिलन देखा श्रावकों ने। वंदन प्रतिवंदन हो रहा था दोनों ओर से। साधर्मी वात्सल्य से आँखें नम हो गईं थीं गुरुओं की और दृश्य देखते श्रावकों की। एक दूसरे को

महत्त्व दे रहे थे। बड़प्पन तो वही कहलाता है, जो स्वयं में क्षमता होते हुये अपने को लघु माना जाये।

ग्वालियर वासियों को सन् 1994 में भी मुनिश्री का ग्रीष्म प्रवास प्राप्त हुआ था, वे उनके व्यक्तित्व से परिचित थे। समागम पाकर बहुत प्रसन्न थे श्रावक।

नया बाजार स्थित दिगम्बर जैन मंदिर में सरल भाषा में बहुत सारी ज्ञान की बातें सुनने को मिलती थीं सभी को। दूर-दूर से श्रोता गण मुनिश्री की वाणी सुनने आते थे।

आचार्यश्री का संदेश मिला शिवपुरी विहार करना है। शारीरिक क्षमता घट रही थी दिनों दिन। श्रावकों ने कहा - डोली से विहार करायेंगे। मुनिश्री निर्दोष मुनिचर्या का निर्वाह करना जानते थे, सो स्पष्ट शब्दों में मना कर दिया।

शिवपुरी पहुँचकर स्वास्थ्य में गिरावट आने लगी। कुछ दिन के शिवपुरी प्रवास के बाद गुना आ गये। आचार्यश्री ने जब मुनिश्री की कमजोरी एवं स्वास्थ्य का हाल सुना तो वे चिन्तित हो गये। उनकी उचित देखभाल हेतु पूज्य मुनि श्री अभयसागरजी एवं मुनि श्री श्रेयांससागरजी को गुना भेज दिया। मुनि द्वय उनकी आहार व्यवस्था एवं औषधि का ध्यान रखते थे। पूज्य अभयसागर जी उनके मन की प्रशस्तता को बरकरार रखने की कोशिश करते थे।

आवाज रुँधने लगी। कमजोरी बढ़ने लगी। गुना से 35 किलोमीटर दूर आरोन में सन् 2006 की चातुर्मास स्थापना हो गई। शांति के साथ चातुर्मास सम्पन्न हुआ। स्वास्थ्य में विशेष परिवर्तन न था।

झाँसी की ओर विहार करना है। चाहे प्राण चले जायें आगमानुसार चर्या करना है। गुरु आज्ञा से चलना है। गुरुवर की पाती थी अपने शिष्य के नाम। आचार्यश्री के पत्र को नमन कर लगा लिया हृदय से। गुरु ने दिया था आशीर्वाद। उस आशीर्वाद में मिल गया संबल, मानसिक और शारीरिक। बिना सहारे के खड़े हो गये। श्रावक अवाक् रह गये। यह थी गुरु भक्ति। गुरु के प्रति सच्ची श्रद्धा। इतनी अस्वस्थता में भी सभी आवश्यकों का निर्दोष पालन करते हैं। चर्या में दोष न लग जाये, प्रमाद न हो इसका बहुत ध्यान रखते हैं। गुरु का

स्मरण करते-करते पहुँच गये झाँसी।

अतिशय क्षेत्र करगुवाँजी (झाँसी) में श्रावकों से जो बन सका उपचार और वैयावृत्ति की। आचार्यश्री शिवनगर (जबलपुर) का पंचकल्याणक सम्पन्न कराकर सागर भाग्योदय तीर्थ में विराजमान हो गये। पूज्य मुनिश्री को आदेश मिला सागर आने का। गुरु दर्शन की ललक थी। मन में जल रहे थे दीप। पूज्य गुरुवर के दर्शन की ललक लिए हुए मुनि श्री अभयसागरजी के निर्देशन एवं ब्र. संजय भैया, ब्र. सचिन भैया के सहयोग से ललितपुर होते हुये बढ़ने लगे चारों मुनिराज एक साथ सागर की ओर। तन अस्वस्थ था पर मन में उत्साह था।

सागर पंचकल्याणक में ज्ञानकल्याणक का दिन था। आचार्यश्री के प्रवचन हो रहे थे। हवा की तरह समाचार सभी मुनिराजों को मिल गया कि पूज्य क्षमासागर, सागर आने वाले हैं। समयसागरजी एवं योगसागरजी के साथ पचास मुनि और बहत्तर आर्यिकाओं के समूह ने आगवानी करने विहार किया। करीब एक किलोमीटर यह साधकों का अपूर्व समूह था, जो एक श्रमण की प्रतीक्षा में मन में नई उम्मीदों को लिये जा रहा था।

सामने से आ रहे थे पूज्य क्षमासागरजी। भरत और राम का मिलन हुआ था, वही दृश्य आज दिखाई दे रहा था। बहुत दिनों से मिलने की अभिलाषा थी। आँखें भर आईं भ्रातृवत् स्नेह से। एक तरफ योगसागरजी ने अपने हाथ का सहारा दिया, दूसरी ओर पूज्य समयसागरजी उनको हाथ दिये हुये थे। सभी मुनि लालायित थे सहारा देने के लिये। कुशल क्षेम पूछते जा रहे थे, आगे बढ़ते जा रहे थे। जब किसी की प्रतीक्षा हो तो सुई की घड़ियाँ रुकती प्रतीत होती हैं। बहुत लम्बा सफर लग रहा था मुनिश्री को। कारण आचार्यश्री के दर्शन को मन व्याकुल हो रहा था।

ग्रीष्मऋतु में अमृत जल को प्राप्त करने जा रहे थे गुरु के चरणों में। केवलज्ञान प्राप्त करने की भावना से जा रहे थे गुरु के चरणों में। ज्ञान कल्याणक के दिन मन ही मन बातें कर रहे थे गुरुवर से। प्रतीक्षा पूर्ण हुई गुरु के आलोकित मुख कमल के दर्शन हो गये मन भ्रमर उनके चरणों की पराग पीने लगा अपने षट् पदों से। कभी मन में विराजमान करते। कभी हाथों से स्पर्श करते। कभी नयनों में कैद कर लेते गुरुवर को। तीन परिक्रमा की गुरुवर की,

फिर चरणों में समर्पित हो गये। पखार दिये गुरु के चरण श्रद्धा के अश्रु जल से।

आचार्यश्री ने क्षमासागरजी की शारीरिक क्षमता कम होने के बाद उत्कृष्ट साधना करने की सराहना की। करीब पन्द्रह मिनिट तक आचार्यश्री बोलते रहे एक साधक की साधना के बारे में। एक श्रमण के आत्मबल के बारे में। एक मुनि की निस्पृहवृत्ति के बारे में। परीषहजयी साधु के बारे में।

श्री चरणों में बार-बार नमन करते थे। ऐसा लगा मुझे मंजिल मिल गई गुरु चरण मिल गये, गुरु शरण मिल गई, सारी थकान दूर हो गई, सारी परेशानियाँ दूर हो गई गुरु चरणों में।

पूज्य भव्यसागर ने कहा - ये परीषहजयी साधु हैं। गुरु के प्रति महान् समर्पण का भाव है। न इन्हें यश की चाह है न लाभ की। हँसते-हँसते परेशानियों को सहते जाते हैं।

संध्याकालीन आचार्य भक्ति एवं प्रतिक्रमण के पश्चात् पुनः पहुँच गये आचार्यश्री के कक्ष में। जमीन में बैठकर चरण वंदना की और शारीरिक क्षीणता की परवाह न करते हुये वैय्यावृत्ति करने लगे गुरुवर की। आचार्यश्री ने कहा - पाटे पर बैठने के लिये। आचार्यश्री के कहने पर एक छोटे से पाटे पर बैठ गये। वैय्यावृत्ति करते-करते सुना रहे थे संस्मरण। यात्रा का वृतान्त बता रहे थे अपने आराध्य को। विहार के समय आने वाली परेशानियों को बता रहे थे। खास तौर से देवरी के पास बहुत घने बादल छा गये थे। सुबह 8-9 बजे भी अंधेरा छा गया था, बिजली तड़क रही थी, बादल गरज रहे थे, वर्षा भी प्रारम्भ हो गई थी, समझ मे नहीं आ रहा था क्या करें ?

आचार्यश्री ने कहा - मैं भी उस समय सोच रहा था जब स्वस्थ साधु को ऐसे मौसम में चलने में परेशानी हो रही है तो क्षमासागर कैसे विहार कर रहे होंगे। मैं चिन्तित था।

तब क्षमासागरजी के साथ बैठे भक्तों ने कहा - आचार्यश्री हम लोग घबरा रहे थे, महाराजजी आपका स्मरण कर रहे थे। आपके आशीर्वाद से संचार विभाग का एक कंपार्ट हमें दिख गया हम महाराजजी के साथ मौसम

अनुकूल होने तक वहीं रुके रहे।

लोग सोच रहे थे महाराजजी 200 किलोमीटर की यात्रा करके आये हैं, अस्वस्थ भी हैं उनकी वैय्यावृत्ति होना चाहिये पर वे तो आचार्यश्री की वैय्यावृत्ति कर रहे थे और आचार्यश्री भी वैय्यावृत्ति करा रहे हैं।

लोगों को यह मालूम न था वे वैय्यावृत्ति करते-करते बहुत सारे चुम्बकीय गुणों को प्राप्त कर रहे हैं, आचार्यश्री के पावन तन से चमत्कारी ऊर्जा प्राप्त कर रहे हैं, उनकी पावन काया का स्पर्श उन्हें आत्मबल दे रहा है, कर्मों से लड़ने की शक्ति दे रहा है। वर्षों के छूटे गुरु और शिष्य का वार्तालाप चलता रहा, लगा बहुत शक्ति मिल गई है। सब कुछ समर्पित कर दिया गुरु चरणों में।

गुरु के सान्निध्य ने उनको आधार दिया, संबल दिया और शिष्य को एहसास करा दिया कि घबराने की बात नहीं है, डरने की बात नहीं है मैं तुम्हारे साथ हूँ। हिम्मत से काम लो सब ठीक हो जायेगा। प्रशस्तता दिखने लगी चेहरे पर।

उनको लगा आचार्य महाराज खड़े होने के लिये जमीन देते हैं पैर नहीं देते। खड़े तो अपने पैरों पर ही होना होगा। वे चलने के लिये सहारा देते हैं। साथ होने का एहसास देते हैं लेकिन चलना तो साधक को स्वयं ही होगा। आत्मबल मजबूत हो गया, पैरों में मजबूती आ गई।

गुरु का सान्निध्य कम समय को मिला। गुरुदेव विहार कर गए और मुनिश्री को संकेत कर गए मोराजी में कुछ दिन स्वास्थ्य लाभ लेने के लिए।

अभयसागरजी के साथ विहार हो रहा था सागर के गौरव का। सागर का एक-एक कण अभिनंदन कर रहा था अपने सुपुत्र का। बुधुव्या जैन मंदिर के दर्शन किये, पूज्य अभयसागरजी पूछ रहे थे, आप पूजन किस वेदी से करते थे? आप स्वाध्याय कहाँ से करते थे? आपकी पाठशाला कहाँ चलती थी?

सभी स्थानों का स्मरण था उन्हें। सारे प्रश्नों के सही जवाब, सभी स्थानों की जानकारी दे रहे थे। अभयसागरजी ने कहा - अब कहाँ से चलना है? संकेत दे दिया मोराजी के पास वाले रास्ते का।

सिंघईजी ने परीषहजयी, गौरवशाली साधक की सपरिवार आरती उतारी अश्रुजल से चरण प्रक्षालन किया, पर वे तो मुनि थे अर्घावतारण असि प्रहारण, कनक और काँच, सुख और दुख में समता का पाठ पढ़ने वाले, कथनी और करनी के भेद को दूर करने वाले। तीन चार किलोमीटर का रास्ता बातों-बातों में तय हो गया मोराजी आ गये।

मोराजी के ग्रीष्मकाल में दर्शनार्थियों का आना जाना लगा रहता था। उनकी मौन मुद्रा भक्तों को समता और साधना का संदेश देती थी। अधर मौन थे पर आँखें बहुत कुछ कह देती थीं। सभी चिन्तित थे मुनिवर की अस्वस्थता से। सामूहिक भक्तामरपाठ, णमोकार चिन्तन, विधान आदि के आयोजन होने लगे।

चातुर्मास का समय निकट था। आचार्यश्री ने शाहपुर चातुर्मास की आज्ञा प्रदान कर दी। साथ में थे पूज्य अभयसागरजी, श्रेयांससागरजी और भव्यसागरजी। मुनिश्री साधु के आवश्यकों का पालन उत्साह सहित करते थे और सभी परीषहों को समता से सहने अद्‌भुत क्षमता थी। सन् 2007 का चातुर्मास शाहपुर में सम्पन्न हो गया। धीरे-धीरे विहार करते हुये गढ़ाकोटा को मुनिश्री के समागम का सौभाग्य प्राप्त हो गया।

ब्र. संजय भैया (मुरैना) निरन्तर मुनिश्री की सेवा वैयावृत्ति में अपने समय का सदुपयोग करते हुए मुनिश्री स्वस्थ हो जायें, ऐसी भावना भाते रहते हैं। स्वास्थानुकूल आहार की व्यवस्था और स्वाध्याय कराते हैं तथा स्वयं भी तप त्याग की ओर बढ़ रहे हैं, वे भी मुनि श्री की चर्या को जीवन में उतारने का प्रयास करते रहते हैं।

अस्वस्थता होने पर भी मुनिश्री का मनन-चिन्तन जारी रहता था उनकी लेखनी अब बोलने लगी थी। उनके अथक श्रम से जैनदर्शन पारिभाषिक शब्दकोश तैयार हो रहा था, जिसमें ब्र. संजय भैया सहयोग कर रहे थे। समय-समय पर विद्वान् भी उनके लेखन को गति प्रदान करते थे।

गढ़ाकोटा वासियों को सन् 2008 का चातुर्मास प्राप्त हो गया था। यहाँ का यह तृतीय चातुर्मास था। समय का सदुपयोग करने के लिये मुनिश्री

की कवित्व लेखनी भी चल उठी और उन्होंने इस अस्वस्थ अवस्था में भी लगभग 35 नई कविताओं का लेखन किया। सभी आश्चर्य करते हैं कि इतनी अस्वस्थता के बाद भी मुनिश्री की कवितायें संवेदना और उत्साह से भरी हुई हैं। उनकी एक कविता 'मेरी माँ' माँ के प्रति समर्पण का भाव दर्शाती है यथा -

मेरी माँ अनपढ़ है
नहीं जानती गणित
पर आधी रोटी कहने पर
या आधा रसगुल्ला
कहने पर
ठीक-ठीक जानती है।
मेरी माँ अनपढ़ है;
नहीं जानती विज्ञान
पर मुझे सूखे में सुलाकर
खुद गीले में सोती है
आर्द्रता का सिद्धान्त
उसे मालूम है।
मेरी माँ अनपढ़ है;
नहीं जानती धर्मशास्त्रों
की भाषा
पर सब जीवों से अच्छा
व्यवहार करना जानती है।
मेरी माँ अनपढ़ है;
नहीं जानती कम्प्यूटर
पर उसकी अपनी मेमोरी में
बहुत कुछ फीड है

रिश्तों की याद हमेशा रहती है।

मेरी माँ अनपढ़ है;

नहीं जानती पक्षियों की भाषा

पर चिड़ियों को

दाना चुगाना नहीं भूलती।

मेरी माँ अनपढ़ होकर भी

पढ़ी-लिखी मालूम पड़ती है।

गढ़ाकोटा चातुर्मास में संयम की विशेष आराधना हुई, वीतराग मुद्रा का प्रभाव ही ऐसा होता है कि असंयमी व्यक्ति भी संयम को धारण करने की भावना बनाने लगता है फिर संयमी की तो बात ही क्या?

सप्तम प्रतिमाधारी एस.एल.जैन मुनिश्री के दर्शन करने गढ़ाकोटा पधारे, मुरैना में उन्होंने आठवीं प्रतिमा के व्रत लेने की चर्चा मुनिवर से की थी मुनिश्री ने कहा था - आठवीं प्रतिमा के व्रत आचार्यश्री से चर्चा करने पर देंगे।

चातुर्मास स्थापना के दिन वे सुभाषजी बीना के साथ गढ़ाकोटा पहुँचे। मुनिश्री ने उन्हें देखते ही कहा - कल तुम्हें आठवीं प्रतिमा के व्रत दिये जायेंगे। और सुभाषजी जिनकी 5 प्रतिमायें थी उनको सात प्रतिमा के व्रत देंगे।

16 जुलाई को चातुर्मास स्थापना का भव्य कार्यक्रम हुआ और 17 जुलाई को श्री एस. एल.जैन आठवीं प्रतिमा के धारी बन गये और श्री सुभाष जी ने सप्तम प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। प्रतिमाएँ धारण कर एस. एल. जैन रामटेक पहुँचे, आचार्यश्री से सारी चर्चा की, आचार्यश्री ने कहा - मुझे आभास था।

एस. एल. जैन को पेंशन मिलती है, उसमें प्रत्यक्ष दोष नहीं है, पर अप्रत्यक्ष दोष होगा, कारण सरकार दोषपूर्ण रूप से धन अर्जन करती है, दोष निवारण के लिये उन्होंने आचार्यश्री के समक्ष मीठे का आजीवन त्याग कर दिया।

अनेक उपलब्धियों के साथ चातुर्मास समाप्त हो गया। शीतकाल का

प्रवास दमोह को प्राप्त हुआ, दिसम्बर माह में विहार का आदेश मिला जबलपुर आने के लिये, फिर बढ़ चले धीमे-धीमे कदमों से संस्कारधानी।

गुरु दर्शन के तीव्र लालसा थी, वे शीतपरिषह को सहन करते हुए बढ़ते जा रहे थे। पता चला गुरुवर मढ़िया जी आने वाले हैं, पिसनहारी मढ़िया में गजरथ महोत्सव का बृहद् आयोजन था। गुरु दर्शन की लालसा से पैरों में गति आ गई। शीतकाल की वेदना भी उनके पैरों को रोक न पाई। वह भी झुक गई मुनिश्री के चरणों में। शीतऋतु के दिवाकर ने अपने रश्मियों की ऊर्जा उनके चरणों में अर्पित कर दी। बढ़ते-बढ़ते आ ही गए जबलपुर।

मढ़िया प्रांगण में कोयल जैसी कूक गूँजने लगी। आने लगे भक्तगण। जिन्होंने उनकी वाणी का रसपान किया था, जिन्होंने साहित्य या कैसिट के माध्यम से मुनिश्री का व्यक्तित्व जाना था, वे आते थे उनके दर्शन करने। जिनकी आवाज ने जीना सिखा दिया, देखें तो उनका रूप कैसा है? जिनकी वाणी में गीता के छंद और वेद-पुराण के वाक्य शोभा पाते हैं, उस वाणी के प्रस्तोता का रूप कैसा है?

आकर देखा - वे वीतरागी मुद्रा के धारी, करुणाधारी क्षमासागर हैं। आत्मबल के सामने कर्म काँपने लगते हैं। मौन रहकर भी उनकी देशना भक्तों को संबल देती है उनकी मुस्कुराहट कहती है बहुत कह दिया, बहुत सुन लिया, बहुत सुना दिया अब तो 'कर्म कैसे करें' (उनकी कृति) पर अमल करना है। मेरी परीक्षा की घड़ी है, मैं अपनी चर्या में कितना अडिग रह पाऊँगा। एक-एक पल को कितनी प्रशस्तता से बिताऊँगा। यही चिन्तन और मनन चलता रहता है हर पल, हर क्षण।

गुरु दर्शन के लिए एक-एक दिन बड़ी मुश्किल से कट रहा था। इंतजार के क्षण समाप्त हो गए। समाचार मिला आचार्यश्री तीन दिन में दयोदय (तिलवाराघाट) पधारने वाले हैं। तीन दिन पहले ही गुरु की अगवानी करने पहुँच गए दयोदय।

आचार्यश्री बढ़ रहे थे दयोदय की ओर और क्षमासागरजी बढ़ रहे थे दर्शन करने तिलवारा पुल की ओर। पुण्य सलिला नर्मदा के ठीक बीचों-बीच

गुरु और शिष्य का मिलन हुआ। नर्मदा की लहरें युगों-युगों तक इस मिलन की साक्षी रहेंगी। मुनिश्री ने नर्मदा की गोद में अपने अश्रु जल से आचार्यश्री का पाद-प्रक्षालन किया। गुरु ने भी अपना वात्सल्य भरा हाथ शिष्य के सिर पर रख दिया।

मुनिश्री योगसागरजी ने अपने अनुज का हाथ थामा और संघ सहित सभी आ गए दयोदय। प्रतिभास्थली में प्रतिभाओं के धनी क्षमासागरजी ने गुरु की तीन परिक्रमायें कीं। गुरु ने कुशलक्षेम पूछी और खूब आशीर्वाद दिया।

22 फरवरी से 1 मार्च तक पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का कार्यक्रम था। मुनिश्री ने सभी कार्यक्रमों में अपनी सहभागिता बनाई और गजरथ फेरी की तीन परिक्रमायें सम्पन्न कीं, जबकि परिक्रमा स्थल बहुत लम्बा था। सभी आश्चर्यचकित थे कि इतनी लम्बी परिक्रमा कैसे सम्पन्न कर लीं। यह कठिन कार्य गुरु के आशीर्वाद और उनके अंदर आत्मबल के कारण सहज ही सम्पन्न हो गया, क्योंकि गुरु का आशीष उनको हमेशा ऊर्जा प्रदान करता है। लगभग एक माह उनको गुरु का सान्निध्य मिला।

गुरु का विहार हो गया और क्षमासागरजी का 2009 का चातुर्मास श्री वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल को प्राप्त हुआ। अमरकंटक में विराजे आचार्यश्री उनके स्वास्थ्य सुधार हेतु मार्गदर्शन देते रहते थे। बहुत सारे कार्यक्रम मुनिश्री के सान्निध्य में सम्पन्न होते थे।

20 अगस्त को मुनिश्री का दीक्षा दिवस बड़ी भव्यता के साथ मनाया गया। बाहर से पधारे विद्वानों और कवियों ने मुनिश्री के पावन गुणों को उजागर किया। उसी दिन 'जैन दर्शन पारिभाषिक शब्दकोश' का विमोचन हुआ। इस शब्दकोश में उपयोगी लगभग 5000 शब्दों की व्याख्या अर्थ और संदर्भ सहित की गई है। यह जैन डिक्शनरी स्वाध्याय प्रेमियों की बहुत सारी शंकाओं का समाधान करेगी। अस्वस्थ अवस्था में सिद्धान्त पर कितना मनन-चिंतन किया होगा? मौन रहकर कितना लिखा होगा, कितना श्रम किया होगा? देखकर लगता है यह कोई साधारण मुनि नहीं असाधारण व्यक्तित्व के धनी संत हैं।

दीपावली के दिन चातुर्मास निष्ठापन का कार्यक्रम आयोजित था। 25

अक्टूबर को पूज्य मुनिश्री का पिच्छिका परिवर्तन समारोह सम्पन्न हुआ। कार्यक्रम में सभी प्रान्तों से मुनिभक्त पधारे थे पांडाल-छोटा पड़ गया था। पूरा जबलपुर उमड़ पड़ा था संयम दिवस देखने।

ब्र. संजय भैया के कुशल संचालन में यंग जैन आर्केस्ट्रा झाँसी के द्वारा मधुर ध्वनि में मंगलाचरण हुआ, ज्ञात हो यह आर्केस्ट्रा मुनि श्री के झाँसी चातुर्मास में गठित हुआ था तभी से हर चातुर्मास के पिच्छिका परिवर्तन में यह अपनी प्रस्तुति निःशुल्क देते हैं। राजेन्द्रकुमार ने अपने णमोकार पाठ के संगीतमय ध्वनि में वातावरण को धर्ममय बनाया।

वर्णी जैन दिगम्बर गुरुकुल के अधिष्ठाता ब्र. जिनेश भैया ने कहा - मुनिश्री में परिषहों को सहने की अपूर्व क्षमता है। ग्रीष्मकाल में भी इन्होंने अपने आवश्यकों का पालन बड़ी सावधानी से किया। उन मुनिवर की सेवा करने का मुझे सौभाग्य मिला है।

सागर का पानी खारा होता है पर सागर में रत्न भी मिलते हैं उनकी पुरानी पिच्छिका प्राप्त करने का सौभाग्य श्री राकेश जैन एवं श्रीमती अनीता को प्राप्त हुआ, जो पण्डित पन्नालालजी साहित्याचार्य के पुत्र एवं पुत्रवधु हैं, मुझे भी नवीन पिच्छिका देने का अवसर मिला। यह समारोह बड़ी शालीनता से सम्पन्न हुआ। उस दिन मुनिश्री की वाणी में ओंकार ध्वनि और विद्यासागरजी की जय सुनकर श्रोताओं ने गद्‌गद्‌ होकर तालियाँ बजाईं और जयकारों से सारा आकाश गुंजायमान कर दिया।

योगी एक स्थान पर स्थायी नहीं रह सकते अतः अस्वस्थ होते हुये भी मुनिश्री का विहार हो गया। विहार की सारी व्यवस्था ब्र. संजय भैया के कुशल निर्देशन में हो रही थी। विदाई देने बड़ी संख्या में श्रावक आये। तेरह माह से सेवा में रहने वाले संजय सखी साड़ी वाले और सभी श्रावक श्राविकाओं की आँखें विरह की कहानी कह रहीं थी। सम्मेदगिरी की वंदना कर बहोरीबंद में शांतिनाथ भगवान् के दर्शन किये। वहाँ से कुण्डलपुर पहुँच गये जहाँ बड़े बाबा की शीतल छाँव में छोटे बाबा विराजमान थे, पर गुरुवर का सान्निध्य तीन दिन ही मिल पाया। आचार्यश्री का विहार हो गया दमोह की ओर।

शाहपुर के सेवाभावी श्रावक बार-बार मुनिश्री से शाहपुर चलने का निवेदन कर रहे थे। कुछ दिन कुण्डलपुर रहने के बाद शाहपुर की ओर विहार हो गया। इसके पूर्व भी सन् 2000 और 2007 का चातुर्मास लाभ भी शाहपुर वासी ले चुके थे। दो चातुर्मासों की देशना उनके अंतस् में आज भी गूँज रही थी तभी तो सभी मुनिवर की सेवा का सौभाग्य प्राप्त करना चाहते थे। सन् 2010 का चातुर्मास शाहपुर के निःस्वार्थ श्रावकों को मिल गया।

सभी श्रावकों ने निर्विचिकित्सा अंग का पालन कर सामूहिक रूप से प्रशस्त पुण्य अर्जित किया है।

सन् 2007 से मुनिश्री ने 'कौशल्या के राम' पद्मपुराण पर आधारित का लेखन किया था, महावीर निर्वाण महोत्सव के दिन, चातुर्मास निष्ठापन और पिच्छी परिवर्तन के पावन अवसर पर विमोचन बड़े ही उत्साह पूर्वक किया गया।

सन् 2011 का चातुर्मास भी मुनिश्री ने शाहपुर के सुधी, वैय्यावृत्ति में निष्णात् श्रावकों के बीच बड़ी शांति और आनन्द के साथ सम्पन्न किया। धन्य हैं, वहाँ के सुधी श्रावक और वहाँ की मातायें जो समय-समय पर उचित आहार, औषधि और वैय्यावृत्ति में अपना जीवन सफल बना रहे हैं।

हे भगवान्! वे शीघ्र स्वस्थ हो जाये उनकी वाणी पुनः हमें सुनने मिले, उनकी वाणी और चर्या से सभी का कल्याण हो। ऐसी सभी भक्तों की सद्भावना है।

संस्मरण

करीब 28 चातुर्मास, ग्रीष्मकाल, शीतकाल मुनिश्री ने भिन्न-भिन्न स्थानों में सम्पन्न किये, वहाँ के श्रावकों ने क्या पाया? क्या अनुभूत किया? उनके विचार उन्हीं की भाषा में यहाँ प्रस्तुत कर रहे हैं।

रंजना कहती है कि -

मुनिश्री के लिए अपनी कल्पना के छोटे से फलक पर विभिन्न छवियों को अंकित करने का संकल्प लिया है। फिर भी मेरे भावों की तूलिका यदि कहीं विस्तार को असीम व अथाह न दिखा पाई हो तो इसे मेरी विवशता जानकर अपनी सहानुभूति देने से इंकार मत करिएगा।

युवा पीढ़ी में जैनधर्म के प्रति श्रद्धा लाने हेतु उन्होंने शुभ-संकल्प लिया है और यह सिर्फ मुनिश्री जैसे चिंतक के हाथों ही संभव था। उन्होंने व्यक्ति के भीतर बंद पड़े कपाट पर जबरदस्त दस्तक दी है, जिससे वे सफलतम यात्रा कर सकें।

मेरे लिए वे हमेशा प्रेरणा स्रोत ही रहे हैं। उन्होंने हमेशा कहा - "Be Practical" संसार में रहना है, परिस्थितियों से समझौता करो, औरों को सुख देकर ही सुख पा सकती हो। रहने दो, आगम पुराण, शास्त्रों की बातें, जो सामने है, जो सच है, उसे ग्रहण करो और सामंजस्य बनाकर चलो। सच, उस समय से मेरे जीवन का दृष्टिकोण ही बदल गया, कभी निराशा हाथ ही नहीं आई, किसी से कोई अपेक्षा ही नहीं की तो उपेक्षित होने का प्रश्न ही नहीं।

जब उनकी वाणी से झरते अमृत वचन सुनने मिलते हैं, हृदय भर आता

है, आँख आँसुओं से भीग जाती है। परन्तु उन आत्मीय क्षणों की स्मृति मुझे सहारा व प्रेरणा देती है।

आज भी उनसे दूर रहकर उन्हें अपने समीप पाती हूँ, कभी इस दूरी का अहसास नहीं होता सचमुच आत्मा के निकट रहना ही सच्चा सामीप्य है।

श्री एस. एल. जैन ने बताया कि -

सन् 2001 का ग्रीष्मकाल गंजबासौदा को प्राप्त हुआ मुनि भव्यसागरजी भी साथ में थे। सप्ताह में एक दिन मैं मुनिश्री के दर्शन करने जाता था, वे उस समय मुझे तत्त्वार्थसूत्र पढ़ा रहे थे।

करीब 11 बजे आहारचर्या के बाद मुनिश्री की नजर मेरे ऊपर पड़ी उन्होंने मेरा प्रोग्राम पूछा।

दोपहर में तत्त्वार्थसूत्र की क्लास प्रारम्भ हो गई, मैं करीब 50 श्रावकों के साथ में बैठा अध्ययन कर रहा था। 4:45 बजे हम दोनों उठे, मुनिश्री ने देखकर कहा - क्यों खड़े हो गये? मैंने कहा - मेरी ट्रेन का समय हो रहा है, जाना चाहता हूँ। उन्होंने कहा बैठ जाओ, अभी आपकी ट्रेन बहुत दूर है। मैं बैठ गया आश्चर्य करते हुए। लगभग 5:30 बजे मुनिश्री ने कहा अब आप जाइए आपकी ट्रेन आने वाली है। सभी श्रावक यह सुनकर हँसने लगे। आश्चर्य से एक-दूसरे को देखने लगे।

मैं अपनी पत्नी के साथ धर्मशाला से बाहर आया और एक रिक्शा लेकर स्टेशन पहुँचा। जैसे ही मैंने टिकट खरीदा, गाड़ी स्टेशन पर आई। बहुत भीड़ थी, ऐसा लग रहा था कि शायद हम लोग उस ट्रेन से वापस न जा सकेंगे। इतने में एक आर्मी के आफीसर ने, जो अपने डिब्बे से नीचे उतर रहा था, मुझसे पूछा कि आप कहाँ जा रहे हैं? मैंने कहा - भोपाल तक। उसने कहा - आप निश्चिन्त होकर मेरी सीट पर बैठें, मैं Dining Car में जा रहा हूँ, भोपाल में ही आऊँगा। हम लोग अच्छी प्रकार भोपाल वापस आ गये। घर पहुँचने के कुछ समय बाद भैयाजी का फोन आया कि क्या हमें ट्रेन मिल गई थी। मैंने उन्हें पूरी घटना बताई। मुनिश्री के निमित्तज्ञान के ऐसे कई उदाहरण हैं।

जया के हृदय की आवाज

श्रद्धा, आस्था और विश्वास की रत्नमाला के एक-एक मणि में समाहित है, परम श्रद्धेय मुनि श्री क्षमासागरजी की क्षमा, मृदुता और आत्मानुशासन व आत्मज्ञान।

अप्रैल 1994, मुनि श्री क्षमासागरजी के प्रथम बार पावन दर्शन करने का मुझे सौभाग्य मिला। वह मेरे जीवन का अद्‌भुत क्षण था। मैंने शोध कार्य हेतु **'जैन धर्म में प्रतीक का कलात्मक पक्ष एक अध्ययन'** विषय चुना था व कार्य की शुरुआत भी कर दी थी। परन्तु इस विषय पर अलग से पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो पा रही थीं। उसी जिज्ञासावश मैं साहस कर मुनिश्री के सम्मुख पहुँच गई। मैंने शोध विषय में आने वाली कठिनाइयों के बारे में उनसे पूछा। मैंने सोचा भी नहीं था कि वह इतनी सहजता और सरलता से मेरी बात सुनेंगे और अपने अमूल्य समय में से समय निकालकर मुझे देंगे। यह समय पाकर मेरा मन आनन्द-विभोर हो उठा।

उन्होंने गंभीरता पूर्वक मेरे शोध विषय के बारे में विस्तार से चर्चा की। उनकी ज्ञान बोधक चर्चा ने मेरी जिज्ञासाओं का समाधान ढूँढ़ निकाला व सही दिशा दी।

एक दिन मुझे पता चला कि महाराजजी विहार करने वाले हैं। मैं अचंभित-सी रह गई। मैंने कहा कि यदि आप यहाँ से विहार कर जाएँगे तो मेरा शोधकार्य कैसे पूरा होगा? मुस्कुराते हुए उन्होंने कहा कि विहार तो करना ही था। मैंने जब आपका शोध कार्य प्रारम्भ करवाया है तो पूर्ण भी मैं ही करवाऊँगा।

गुना, मंडीबामौरा, बीना, झाँसी, ओरछा आदि स्थानों पर जाकर मुझे उनके पावन दर्शन का अवसर भी मिला साथ ही शोधकार्य में आने वाली समस्याओं का समाधान भी। उनके अथक प्रयासों से मेरा शोधकार्य अक्टूबर 1998 में पूर्ण हो सका था। शोधकार्य के निमित्त से मुझे 'मुनिश्री क्षमासागरजी' के रूप में परम श्रद्धेय गुरुवर मिले, वह मेरे जीवन की अमूल्य निधि है।

अरुणा की अनुभूति कहती है कि

फूल खुशबूदार होना चाहिए
खुद व खुद हवा सरपे उठाकर ले जायेगी।

खुशबूदार फूल यह नहीं कहता कि ऐ हवा! मेरी खुशबू को उठाकर चारों ओर फैला दो। पुष्प यदि सुगन्धित है तो उसकी महक स्वतः ही सर्वत्र फैल जायेगी। ऐसे ही जिस व्यक्तित्व के पास गुण हैं, विद्वत्ता है, संवेदनशीलता है, आत्मीयता है तो उसकी आभा दूर और पास बैठे हुए हर इंसान को अपना स्पर्श देगी ही।

ऐसे ही आत्मीयता और अनूठे व्यक्तित्व के धनी हैं पूज्य श्री क्षमासागर जी महाराज। उन्हीं के शब्दों में . .

जो हमें समीप लाए
क्षणभर भी
दूरी का एहसास न होने दे
अलग और अकेलापन न होने दे
दुनिया का हर दुख दर्द
सहने का साहस दे
कभी रुलाए
कभी हँसाए
और
रूठने मनाने का
अधिकार दे
समझना वह आत्मीयता है
और सच्ची है।

सच तो यह है कि शब्द इनसे पनाह माँगते हैं और ये उदारता पूर्वक उन्हें आकाश देते हैं।

सागर से निकली बूँद स्वयं सागर में समाकर सागर बन गई। पूज्य मुनिवर क्षमासागरजी की यह यात्रा छात्र-छात्राओं को वरदान बन गई।

मुनिवर के सान्निध्य में प्रतिभावान बच्चों का सम्मान-समारोह अपने आप में अद्‌भुत व सराहनीय काम है, बगीचे में पौधे रोपने जैसा। इसका शुभारम्भ सन् 2001 में शिवपुरी चातुर्मास में हुआ था। फिर क्रमशः जयपुर, रामगंजमंडी, अशोकनगर और मुरैना में इस समारोह का आयोजन किया गया मुनिश्री के सान्निध्य में और हजारों दर्शकों व श्रोताओं की उपस्थिति में।

देश के विभिन्न प्रांतों से अपनी प्रतिभा की खुशबू बिखेरने बच्चे आते हैं, उनकी इस खुशबू में चाहत होती है आत्मविश्वास पाने की, मुनिवर के आशीष समेटने की, उनकी प्रेरणा पाने की। सचमुच बच्चे यह सब भरकर ही तो जाते हैं संतोष के साथ, आत्मविश्वास के साथ, मुनिवर के आशीषों की सम्पदा के साथ।

इस समारोह में विशेष भूमिका है अनुशासन की, गतिशीलता की और क्रमबद्धता तथा परस्पर प्रेम और सौहार्द्र के प्रतीक मैत्री समूह के कार्यकर्ता जो मुनिश्री के मार्गदर्शन और दूरदर्शिता में इतना अच्छा कार्यक्रम सम्पन्न करते हैं दर्शक और श्रोता भी इस प्रतिभावान बच्चों के सम्मान समारोह की उपलब्धि को विस्मृत नहीं कर पाते।

विनीता का बदलाव

पूज्य क्षमासागरजी महाराज के चरणों में शत-शत वन्दन।

महाराज श्री के शब्दों में कि -

''ना सही भगवान
एक बेहतर
इंसान तो बन जाएँ''

18 वह जनवरी, 2004 में मैंने पहली बार अजमेर में महाराजश्री के दर्शन किए। उनके प्रवचन सुने और प्रेरणा पाई कि हम अच्छा जीवन कैसे जी सकते हैं, अपनी जीवन-दिशा कैसे बदल सकते हैं। इसके पूर्व मैं भौतिक चकाचौंध में उलझी थी। मेरे जीवन जीने का अन्दाज अलग था। अध्यात्म से

कहीं कोई पहचान नहीं थी। सारी सुख-सुविधाओं के बावजूद मैं मन से सुखी नहीं थी।

लेकिन गुरुवर के दर्शन से उनके सामीप्य से जो अनुभूति हुई उससे मेरे जीवन में सन्तुलन आ गया। उन्होंने मुझे जीवन की राह दी। इन चरणों में आकर व्यक्ति को कुछ छोड़ना नहीं पड़ता स्वतः छूट जाता है। मेरे क्रोध की अति छूटी, अशान्ति छूटी और अब हर परिस्थिति से समझौता करने की शक्ति मुझे मिली।

अब मुझे लगता है कि अन्तस् की विशुद्धि के लिए जीवन में अध्यात्म से जुड़े रहना जरूरी है।

महेन्द्र जैन भगतजी की भक्ति

आचार्य श्री विद्यासागरजी से दीक्षा लेकर आप परिग्रह से अपरिग्रह, असार से सार की ओर, संसार से मोक्षमार्ग की यात्रा के उच्चकोटि के साधक यात्री बन गये। युवावस्था में उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद वैराग्य, संयम, त्याग, आत्मज्ञान और आत्मसाधना का ऐसा अनुपम उदाहरण मिलना बड़ा कठिन है।

पूज्य मुनिवर ने अपने ओजस्वी प्रवचन में कहा - यदि मनुष्य अपने जीवन की लगाम अपने हाथों में रखे तो वह स्वयं का मालिक बन सकता है और अपनी स्वतंत्रता की सुरक्षा कर सकता है।

आकाश से बरसने वाले बादल तो केवल हमारे शरीर को गीला करते हैं, जबकि संतों के प्रवचनों की बरसात तो हमारे दिल और दिमाग को भिगोती है और हमें स्वयं की अंतरंग की अथाह शक्ति का बोध कराती है। हम सभी उनके वचनों के नीर से भींग गये अंदर तक।

पूज्य मुनिश्री का जीवन क्रांति का श्लोक है, मुक्ति का दिव्य छंद और मानवीय मूल्यों की वंदना है, गुरुवर आप वीतराग साधना के पथिक, निरामय निर्ग्रन्थ दर्शन ज्ञान चारित्र की त्रिवेणी हैं। भगवान् महावीर की देशना को गौरव मंडित कर रहे हैं।

बार-बार नमोऽस्तु।

योगेन्द्र जी के मार्गदर्शक

एक बार मैं भावनात्मक रूप से बहुत डगमगा रहा था। मुंबई की दूरियाँ और माहौल मुझे अपने गुरुवर से दूर रखे हुए था। घबराकर मैंने गुरुश्री से दिशा-निर्देश की प्रार्थना की। आपातकालीन स्थिति समझकर गुरुश्री ने मुझे दिशा-निर्देश दिया कि -''अनुभव से सीखें। पोथी इशारा कर देती है पर चलना, गिरना और संभल जाना हमें स्वयं सीखना होगा।''

पहली बार गुरुश्री के दर्शन से एकलव्य बनने के भाव आए थे और आज जब गुरुश्री की अंगुली धीरे-धीरे फिसल रही है, तब वही पुरानी एकलव्य वाली भावना प्रबल हो रही है। कहीं भी रहूँ पास या दूर गुरुश्री की मूर्ति मन में प्रतिष्ठित रहे, पूजता रहूँ, उससे प्रेरणा लेता रहूँ, बातें करता रहूँ, गलत काम करते समय उनसे डरता रहूँ।

उन्होंने एक बार कहा था कि अच्छा गुरु वही होता है जो अपने अनुयायियों से अनुकरण नहीं करवाता वरन् उन्हें आत्म निर्भर बनाता है।

मैं उनकी उस राह में सीखें बटोर रहा हूँ और उन्हें बाँटने का प्रयास कर रहा हूँ। गुरु के चरणों में शत-शत नमन।

गुलाबचन्द्र सिंघई के प्रणेता

वर्ष 1997 में मुनिश्री दिगम्बर जैन मंदिर चौक में वर्षायोग कर रहे थे, आहारचर्या के उपरान्त कुछ समय जिज्ञासुओं से चर्चा के लिए निकालते थे। एक महिला ने जिज्ञासा की कि - ''जो मनुष्य आज बुरे कामों यथा चोरी, कालाबाजारी, गुण्डागर्दी या उसी तरह के अन्य निषिद्ध कार्यों में लगे हैं उनके पास धन दौलत एवं अन्य सुख सुविधाएँ भरपूर हैं'', ऐसा क्यों? जिज्ञासु बहिन का कथन समाप्त होने पर मुनिश्री ने पूछा - पहले यह बताओ कि ऐसे मनुष्यों का मूल्यांकन कौन कर रहा है कि वे सुखी हैं ? निषिद्ध कार्यों में लगे हैं, वह ही जानता है कि वह किस स्थिति में है। यह हमें सोचना है कि जो गलत कार्यों में लगा है, वह सुखी कैसे रह सकता है? दूसरी बात धन-पैसा तो पूर्व जन्म के पुण्य का फल है। जिस दिन जिसका पुण्य क्षीण होता है, उसी समय से धन दौलत समाप्त होना प्रारम्भ हो जाती है।

हम संसार में अपनी-अपनी करनी का फल भोग रहे हैं। कोई धनवान है, कोई निर्धन, कोई ज्ञानवान है, कोई कम ज्ञानवान, कोई स्वस्थ्य है, कोई अस्वस्थ्य आदि-आदि। कर्म सिद्धान्त की सुन्दर व्याख्या सुनकर सभी श्रोताओं को समीचीन समाधान मिल गया। मुनिश्री के चरणों में त्रिकाल नमोऽस्तु।

नरेन्द्र सुधा के विचार

''शशि से कहीं अधिक शीतल

दीप्तिमान रवि से बढ़कर''

मुरैना चातुर्मास के बाद विहार करते हुए मुनिवर का ग्वालियर नगर नया बाजार मंदिर में प्रवेश हुआ। मुझे चरण पखारने का सुअवसर मिला। प्रवचन से पूर्व धर्मसभा में मैंने महाराजजी से निवेदन किया कि आप मुरैना जाते समय नया बाजार मंदिर में नहीं रुके, आप हमेशा यहाँ रुकते थे। इससे पूरे समाज को पीड़ा हुई। हमसे कहीं त्रुटि तो नहीं हो गई मुनिवर? यह सुनकर अपनी बाल-सुलभ मुस्कुराहट बिखेरते हुए उन्होंने कहा कि आप सबकी पीड़ा मेरी पीड़ा है।

मुनिवर से पूरा समाज धर्म लाभ लेता रहा। विहार का समय आ गया। विदाई की बेला में मैंने महाराजजी से निवेदन किया कि थोड़े समय यहीं और रुकते तो अच्छा था। उन्होंने उत्तर दिया कि हम तो मुक्ति पथ पर चलने के लिए निकल पड़े हैं, यदि आप चलना चाहो तो चलो हमारे साथ। मन उनके प्रति श्रद्धा से भर उठा। ऐसे विराट व्यक्तित्व के चरणों में कोटि-कोटि नमन।

चेतराम बड़कुलजी की भावना

मुनि क्षमासागरजी चलते-फिरते तीर्थ हैं। जिसने उनका आशीर्वाद पा लिया वह धन्य हो जाता है। सन् 1990 का चातुर्मास शहपुरा को प्राप्त हुआ उनकी अमृत वाणी से जैन तो जैन अजैन भी बहुत प्रभावित हुये। अनेक अजैनों ने शाकाहार को अपना लिया।

उनकी गुरु भक्ति एकलव्य जैसी अनुकरणीय है। सरलता और वात्सल्य माँ से प्राप्त हुआ है गले की मिठास उनकी दादी की मीठी आवाज से प्राप्त की है।

छात्र-छात्राओं को दिशा निर्देश देने का तो मानों उन्होंने संकल्प लिया है, उनके प्रवचन मानव के दिल और दिमाग को नई दिशा देने में प्रेरणा स्रोत बने हैं। अनेकान्त और स्याद्वाद के सिद्धान्त को अपने आचरण में उतारने वाले वे अनोखे संत हैं। उनके चरणों में बारम्बार नमोऽस्तु।

राकेशजी के कॉलेज साथी

श्रीमान् वीरेन्द्रजी एवं मैं सागर विश्वविद्यालय में एम. टेक. (भूगर्भ विज्ञान) के समकालीन विद्यार्थी रहे। जब मैं अंतिम वर्ष की कक्षा में था तब वे द्वितीय वर्ष में अध्ययनरत थे। विद्यार्थी जीवन में ही उनका धर्म के प्रति असीम अनुराग रहा है। वर्णी भवन मोराजी, सागर में साधुओं के प्रवास/वर्षायोग अधिकांशतः हुआ करते थे। सन्मतिसागरजी महाराज के सान्निध्य एवं पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य के कुलपतित्व में एक बार विशाल स्याद्वाद शिक्षण शिविर का आयोजन ग्रीष्मकाल में हुआ था। छहढाला का अध्ययन युवा पीढ़ी को कराया गया था। तब आपने इस शिविर में सक्रिय भूमिका का निर्वाह किया था।

दीक्षा के एक दिवस पूर्व तक वीरेन्द्रजी विश्वविद्यालय की कक्षाओं में उपस्थित रहे। इसी दिन शाम को मेरे से अध्ययन सम्बन्धी चर्चा भी करते रहे। मैंने यह कल्पना भी नहीं की कि वह कल क्षुल्लक दीक्षा धारण करेंगे।

दीक्षा के उपरांत इनका नाम क्षुल्लक श्री 105 क्षमासागरजी रखा गया। आपमें साधुता, सरलता एवं विद्वत्ता का अपूर्व संगम है। आप कवि हृदय भी हैं। वाणी से माधुर्य झरता है। आपकी कवितायें हृदयस्पर्शी हैं। छात्र-छात्राओं में इन्होंने क्रांतिकारी परिवर्तन किया है।

राजेन्द्र पटोरिया जी की बात

लोहिया अध्ययन केन्द्र में एक भव्य कार्यक्रम था, उसमें विभिन्न विद्वानों को आमंत्रित किया गया था मैं भी वहाँ गया था। आमंत्रित विद्वानों में श्री अटलबहादुर सिंह भी पधारे थे, ये दो बार नागपुर के महापौर रह चुके हैं।

मंच पर उनको ससम्मान आमंत्रित किया उन्होंने मंच पर आते ही कहा - मैंने एक बुक स्टाल पर भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित 'अपना घर'

किताब देखी। वह मुनि क्षमासागर के द्वारा लिखी गई थी।

सारी कवितायें बहुत अच्छी लगीं, मार्मिक और दिशाबोध देने वाली। आज तक मैंने इतनी अच्छी कवितायें नहीं पढ़ीं, अतः आज के कार्यक्रम का शुभारम्भ मैं उसी एक कविता से करूँगा। इतना कहकर उन्होंने काव्यपाठ शुरू किया।

श्रोता गद्गद् हो गये और मैं तो गौरव से निहाल हो गया कारण मैंने पूज्य क्षमासागर का बचपन देखा था। बचपन का वह मुन्ना, वीरेन्द्र बन कर क्षमासागर बन गया। उन मुनिवर को शत-शत प्रणाम।

प्रमोद की भावना

मुझ छोटे से मानव को पूज्य क्षमासागरजी के दर्शन झाँसी चातुर्मास में मिले। उनके प्रवचन अंदर तक चले गये अभी तक मैं धर्म पर विश्वास नहीं करता था, उनके प्रवचन का प्रभाव पड़ा मैं देव-शास्त्र-गुरु पर विश्वास करने लगा।

मेरा समर्पण मुनिवर के प्रति हुआ उनके प्रवचन की सहजता, सरलता श्रावक को कर्त्तव्यबोध की ओर प्रेरित करती है। शिवपुरी चातुर्मास में मुझे सेवा करने का सौभाग्य मिला। शिवपुरी वासियों के लिए यह चातुर्मास एक स्वर्णिम यादगार बन गया।

महाराजजी के आशीर्वाद और मार्गदर्शन में मैत्री समूह द्वारा पहली बार 'यंग जैना अवार्ड' 26 अक्टूबर को सम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम की भव्यता का अनुभव उसमें सम्मिलित होने वाला और देखने वाला ही कर सकता है, लिखने या कहने से उसका बखान नहीं हो सकता।

केवल चन्द्र जी का जीवन बदल गया

हमारे यहाँ सन् 1994 में मुनिराज का चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ उनकी पिच्छी भी हमें प्राप्त हुई।

हमने सीखा समझा - ''यदि बिच्छु अपना स्वभाव छोड़ने तत्पर न हो तो ज्ञानी को भी अपना स्वभाव नहीं छोड़ना चाहिये''।

उनका एक उदाहरण हमें भव सुधारक साबित हुआ। मुनिश्री ने कहा

- एक मैदा की बोरी में प्रतिदिन 1000 जीवाणु जन्म लेते हैं, उनमें से मरता एक भी नहीं है।

उन दिनों हमारा आटा, मैदा, रवा का थोक व्यापार चल रहा था मुनिश्री के वचनों ने मुझे अंदर से हिला दिया हमने मुनिश्री के गमन के बाद ही 'सजावट' के नाम से नया व्यापार शुरू कर दिया। उनके मार्मिक उद्बोधन ने हमारा जीवन बदल दिया।

कुछ लोगों की कुछ बातों में बस इतना ही अंतर है - ''कुछ दिल में उतर जाते हैं, कुछ दिल से उतर जाते हैं''।

पुनः उनके चरणों में नमोऽस्तु

असंयम से संयम की ओर : पं. नेमिचन्द्र जी

सन् 1984 में आचार्यश्री का चातुर्मास मढ़ियाजी में हुआ था। मेरी सहधर्मिणी (श्रीमती सुषमाजी) ने चौका लगाया था, भाग्य की बात चौथे दिन और पुनः एक सप्ताह बाद आचार्यश्री की आहार चर्या हमारे चौके में सम्पन्न हुई थी।

एक दिन एक लम्बे से दुबले-पतले मुनिराज के निरन्तराय आहार सम्पन्न हुये थे, वे थे मुनि क्षमासागर। मैं उनका कमण्डलु लेकर गुरुकुल पहुँचाने गया, मुनिश्री से चर्चा हुई। उन्हीं की कृपा से मैं असंयम से संयम में प्रवृत्त हुआ। मैंने नित्य देवदर्शन और पूजन करने का नियम ले लिया।

सन् 1990 में पूज्य क्षमासागरजी का चौमासा शहपुरा (भिटौनी) में हुआ, वहाँ मंदिरजी और धर्मशाला का पुराना विवाद महाराजजी के प्रयास से सुलझ गया, वहाँ मैंने और मेरी पत्नि ने आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत लेकर उनकी पिच्छी ग्रहण करने का सौभाग्य पाया।

उनके द्वारा प्रतिभाशाली छात्रों के लिये प्रतिभा सम्मान का कार्यक्रम बहुत उपयोगी है। जयपुर चातुर्मास में मैंने देखा दूसरे संघों के मुनियों की अगवानी और उनको सम्मान देना। यह उनकी अनूठी पहल है।

मुनिश्री स्वस्थ और दीर्घजीवी हों

उनके चरणों में शत्-शत् नमन।

वंदना ने बताया

यह प्रसंग ग्वालियर का है। मुरैना चातुर्मास के बाद मुनिश्री शिवपुरी जा रहे थे, करीब 15 दिन का समय ग्वालियर को प्राप्त हुआ था। कोटा निवासी बड़जात्याजी श्रीराम फर्टिलाईजर के मालिक थे। वे कोटा प्रवास के समय मुनिश्री से बहुत प्रभावित हुये थे। बहुत सारे नियम उन्होंने और उनके परिवार वालों ने मुनिश्री के समक्ष धारण किये थे।

मुनिश्री की वाणी से प्रभावित होकर उन्होंने एक बहुत बड़ी अस्पताल की योजना बनाई थी, उस योजना को कार्य रूप में परिणत करने हेतु वे चर्चा करने मुनिश्री के पास आते थे।

उन्हीं दिनों बिटिया का सम्बन्ध तय हो गया, कुछ दिनों बाद शादी थी, सो वह कार्ड लेकर मुनिवर से आशीर्वाद लेने आये, धर्म चर्चा भी हुई, दान सम्बन्धी विचार भी किया।

मुनिश्री से आशीर्वाद लेकर वे कमरे से बाहर निकले ही थे कि सीढ़ी पर ही इनको हृदयघात हुआ और वे स्वर्गवासी हो गये, महाराजजी के सान्निध्य से वे निश्चित ही शुभ गति को प्राप्त हुये होंगे।

संतों की अमृत वाणी धर्मध्यान पूर्वक मरण कराती है।

सरोजकुमारजी की बात

यह बात तब की है, जब मुनि श्री क्षमासागरजी इंदौर में चातुर्मास कर रहे थे, यानि 1996 की। कंचनबाग के समवसरण परिसर में श्राविकाओं के लिए बने भवन की पहली मंजिल पर उनका अस्थायी पड़ाव था। वहीं एक बड़े कक्ष में दोपहर बाद उनसे मिलने और बात करने काफी लोग प्रायः पहुँचते थे। ऐसी ही एक शाम, कक्ष लगभग भरा हुआ था। विभिन्न चर्चाएँ हो रही थीं, कि एक तेरह–चौदह वर्ष का किशोर कक्ष में प्रविष्ट हुआ। उसे इतने शिष्टाचार के लिए भी अवकाश नहीं था कि वह दीवार के पास से जगह बनाते हुए मुनिश्री के निकट पहुँचे। वह सबके बीच से ही लोगों को ठेलता, धकियाता आगे बढ़ता हुआ मुनिश्री के सामने हाथ जोड़ नमोऽस्तु कहते हुए रुका। उसकी यह अभद्रता लोगों को समझ में नहीं आई, क्योंकि वह दिखने में सुंदर,

स्वस्थ और अपने परिधान में किसी अच्छे घर का लग रहा था। मुनिश्री ने उसे आशीर्वाद दिया और वह किशोर एक दम बोला, मेरी एक जिज्ञासा है। मुनिश्री ने उससे जिज्ञासा प्रकट करने के लिए कहा। उसने कहा – मैं यह जानना चाहता हूँ कि अगर मुँह में टॉफी हो और मैं उसे खा रहा हूँ, ऐसे समय यदि णमोकारमंत्र पढ़ने की भावना हो जाए तो मुझे क्या करना चाहिए? क्या मुझे तत्काल टॉफी थूक देना चाहिए? यदि थूकने का स्थल न हो, तो क्या मुझे ऐसे स्थान पर जाना चाहिए, जहाँ मैं उसे मुँह से निकाल कर फेंक सकूँ? क्या मुझे उसे खाते रहना चाहिए कि जब वह समाप्त हो जाए तब मैं कुल्ला करने के बाद णमोकार मंत्र पढ़ूँ ?

किशोर का यह प्रश्न सुनकर सभी उपस्थित लोग अवाक् रह गए। सभी को लगा कि यह तो इस किशोर ने ऐसा प्रश्न उपस्थित कर दिया है, जिसका उत्तर सभी को चाहिए। किसी ने फुसफुसाया, टॉफी मुँह में रखे णमोकार मंत्र पढ़ना तो पाप होगा। किसी ने कहा – बिना कुल्ला किए कोई कैसे णमोकार मंत्र पढ़ सकता है? किसी ने कहा – टॉफी–प्रेमी को णमोकार मंत्र की याद ही कैसे आएगी? पर सब मुनिश्री की ओर देख रहे थे और सभी को उत्सुकता थी, यह जानने की कि मुनिश्री क्या समाधान व्यक्त करते हैं?

मुनिश्री ने उस किशोर से कहा – देखो णमोकार मंत्र पढ़ने में कभी कोई रुकावट नहीं है। अगर टॉफी मुँह में है और णमोकार मंत्र पढ़ने का मन हो रहा है और अगर उस समय तुमने नहीं पढ़ा और टॉफी खत्म करने की प्रतीक्षा की और फिर कुल्ला करने के लिए पानी खोजने निकले, तब तक हो सकता है, कि णमोकार पढ़ने का जो मन हो रहा है, वह बदल जाए। जो भावना णमोकार मंत्र पढ़ने की पैदा हुई है, वह इतने समय में समाप्त ही हो जाए। इसलिए उचित यही होगा कि टॉफी खाते हुए भी यदि णमोकार मंत्र पढ़ने का मन हो आए तो जरूर पढ़ लेना चाहिए। पर एक बात जरूर ध्यान रखना कि कहीं ऐसा न हो कि तुम कभी णमोकार मंत्र पढ़ रहे हो, उस समय तुम्हारा मन टॉफी खाने का हो जाए। जीवन की किसी भी गतिविधि के बीच णमोकार मंत्र का स्वागत है, लेकिन णमोकार मंत्र से भरे हुए क्षणों में जीवन की ऐसी–वैसी गतिविधि के लिए अवसर नहीं होना चाहिए। ऐसा समाधान सुनकर सभी

उपस्थित लोगों को लगा कि इस समाधान ने तो उनकी भी अनेक जिज्ञासाओं का शमन कर दिया है। यह भी लगा कि चाहे उन्हें इस किशोर के आने और मुनिश्री तक जाने की शैली आपत्तिजनक लगी हो, पर उसका प्रश्न सटीक था, और अपने प्रश्न को पूछने का साहस प्रशंसनीय।

हेमन्तकुमार की जुबनी वीरेन्द्र की बाल कहानी

मैं और वीरेन्द्र (मुनि क्षमासागरजी) सागर विश्वविद्यालय में सहपाठी थे। एम.टेक. डिग्री कोर्स में हम 18 छात्र थे वीरेन्द्र को हम सभी पक्का जैनी कहते थे। फील्ड केम्प में वीरेन्द्र पानी छानने हेतु कपड़ा रखते थे, आलू, प्याज और अभक्ष्य का तो त्याग ही था। वहाँ भी जिनदर्शन और पूजा करते थे।

एक बार चूलगिरि क्षेत्र दर्शन हेतु गये, वहाँ उन्होंने सीढ़ियों के नीचे ही जूते उतार दिये मैंने समझाया और कहा – यहाँ जूते चोरी हो जायेंगे। जूते पहन कर ऊपर तक चलो पर वह नहीं माने। वंदना करने के बाद देखा जूते चोरी हो गये थे।

अजमेर में सोनीजी की नसिया में दर्शन करना थे, वहाँ चौकीदार को जैन होने का प्रमाण देना था णमोकार मंत्र सुनाकर। वीरेन्द्र ने णमोकार मंत्र सुना दिया सभी मित्र जैन नहीं थे, पर मैंने सभी को णमोकार मंत्र की एक लाइन याद करा दी सभी को दर्शन मिल गये। वीरेन्द्र ने मुझसे कहा – यह कार्य तुम्हारा अनुचित है मैंने कहा – कम से कम दर्शन की भावना से इन लोगों ने णमोकार मंत्र याद तो कर लिया।

हम सभी आगरा गये मंदिर का पता लगाया और चौकीदार से कहा – हम लोग 5 बजे दर्शन करने आयेंगे गेट खोल देना कारण वीरेन्द्र दर्शन पूजन के बिना भोजन नहीं करते थे।

सुबह हम दोनों मंदिर पहुँचे बहुत आवाजें दीं पर चौकीदार नहीं उठा, तब मैंने कुछ पत्थर फेंके तब उसकी नींद खुली। वीरेन्द्र ने मुझे गलत ठहराया किन्तु उनके दर्शन पूजन का नियम पूर्ण होने से मुझे संतुष्टि मिली।

मेरा यह परम सौभाग्य है कि ऐसे आध्यात्मिक संत के साथ मुझे पढ़ने का सुअवसर मिला। 25.10.09 को मुनिश्री के पिच्छिका परिवर्तन समारोह में

सम्मिलित होने का अनायास ही संयोग मिला। वे स्वस्थ और दीर्घजीवी हों।

सुनील का समर्पण

दिल्ली निवासी सुनीलकुमार जैन ने सान्निध्य पाया था मुनिश्री का। विवाद चल रहा था भाइयों के बीच। प्रवचन में सुना था – ''हमारा पुण्य होता है तो सब मन का सोचा हुआ होता है, जब पुण्य नहीं होता तब कोई हमारा साथ नहीं देता। लेकिन दोनों स्थितियों में हमें धर्म का साथ नहीं छोड़ना चाहिये।''

बड़े भाई ने बहुत बड़ा मकान था कह दिया मैं लूंगा। एक भाई ने अच्छी चलने वाली दुकान ले ली। पत्नी कह रही है – आप कुछ बोलते क्यों नहीं? आप कुछ क्यों नहीं करते? सुनील जी को याद है महाराज जी के वचन। उन्हें विश्वास है मुनिश्री पर।

आ गये परम पूज्य गुरुवर के पास। कहने लगे – महाराज जी! ऐसा...ऐसा हो रहा है, मुझे तो आपकी वाणी पर पूरा विश्वास है, ऐसे में क्या करें ? संतोषी सदा सुखी रहता है। तुम जो चाहते हो वही होगा। सुनीलकुमार घर पहुँच गये।

भाई जिसने दुकान ली थी सोचने लगे दुकान तो मैंने ले ली है पर हो सकता है मैं दुकान न चला पाऊँ। सुनील दुकान चलाने में निपुण है, मिलकर सँभाल लेंगे।

रात्रि में फोन आ गया – भैया! हम मिलकर दुकान चलाऐंगे। हाँ कह दिया सुनील ने।

रजिस्ट्री कराने पहुँचे सभी भाई। बड़ा भाई कहने लगा – सुनील! जो बड़ा वाला मकान है उसमें तुम रहना, मैं उस छोटे वाले मकान में रहूँगा। सारी घटनायें आश्चर्यजनक तरीके से हो रही थीं।

वास्तव में गुरु वचनों पर आस्था व गुरु के प्रति समर्पण रखने से सब कुछ ठीक हो जाता है। संतोषी सदा सुखी।

राजेश को मिला मुनि श्री का सान्निध्य

मैं वहीं पैदा हुआ
पला, बढ़ा
फिर छोड़ता चला आया
उन सुनहरे दिनों को
जो मेरे अस्तित्व में शामिल हैं
एक सशक्त अतीत
जिसकी यादें सागर सी गहरी अथाह हैं
मेरी नींद सपनों और विचारों में प्रवेश करते हुए
वक्त की हवा और रोशनी के साथ
हमेशा दस्तक देते हैं आप
आपकी दिशायें तय थीं
सारे रास्ते आपको मालूम थे
मैं तो पता नहीं किस इत्तिफाक से आपके संग हो लिया
मालूम है रख छोड़े हैं मैंने
वाङ्मय के कुछेक अच्छे शब्द
एक मालकौस राग
और अपने तीर्थंकरों में से एक तीर्थंकर
अनवरत प्रार्थना करता हूँ
अबकी बार जन्म लूँ
फिर आपका साथ हो
गौरव हैं मुझे
धन्य हूँ मैं! 'सान्निध्य'
थोड़े ही समय सही
आपका सान्निध्य तो पाया मैंने. . . ।

हे ज्ञान दिवाकर शीलतपोनिधि
गुरुवर तुमको है वंदन
रत्नत्रय के धारक हो गुरु
महावीर के लघुनंदन
ज्ञानसागर से गुरु को पाकर
हो गये आप तो धन्य श्रमण
विद्यासागर जी आचार्य प्रभु को
मेरा बारम्बार नमन !